आदर्श महिला

श्रीनयनचन्द्र मुखोपाध्याय-रचित बँगला 'आदर्श महिला'

का

हिन्दी अनुवाद

[प्रथम खण्ड]

वैदिक और पौराणिक युग

अनुवादक

पण्डित जनार्दन झा

—:०:—

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

—:०:—

१९२५

चतुर्थ संस्करण]

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

निवेदन

—:o:—

भारतवर्ष में इस समय स्त्री-शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। स्त्री-शिक्षा के अभाव से देश की जो हानि हो रही है, इस पर लोग पहले ध्यान नहीं देते थे। अब कुछ दिन से लोगों का ध्यान स्त्री-शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ है, और स्त्री-शिक्षा के प्रचार से जो लाभ होगा उसे कुछ-कुछ समझने लगे हैं। ऐसे अवसर में विज्ञवर श्रीनयनचन्द्र मुखोपाध्याय ने यह 'आदर्श महिला' ग्रन्थ वङ्गभाषा में लिखकर, देश का बड़ा उपकार किया है। इसके साथ ही इण्डियन प्रेस के स्वामी श्रीयुक्त बाबू चिन्तामणि घोष इसे हिन्दी-पाठकों के मनोविनोदार्थ, हिन्दी में, प्रकाशित करके विशेष धन्यवाद के भागी हुए हैं। स्त्री-पाठ्य पुस्तकों में यह पुस्तक आदर्श-स्वरूप है। इस पुस्तक के पढ़ने से स्त्रियाँ तो लाभ उठावेंगी ही, किन्तु पुरुष भी विशेष लाभ उठावेंगे। हम प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि कैसे ही बुरे मिज़ाज की स्त्री क्यों न हो, जो इस पुस्तक में वर्णित आदर्श स्त्री-रत्नों के जीवनचरितों को एक बार पढ़ेगी या सुनेगी वह अपने निन्दित चरित्र को सुधारने का प्रयत्न अवश्य करेगी। पुरुष के लिए भी ऐसा ही समझिए। हम आशा करते हैं, पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुष इस पुस्तक का अवश्य आदर करेंगे और घर-घर में इसके प्रचार का पूरा प्रयत्न करेंगे।

जनार्दन झा

प्रस्तावना

यह प्रसिद्ध धर्म-प्रधान भारतवर्ष विधाता की अपरिमित दया से चिरपवित्र है। भारत का ज्ञान-विज्ञान, भारत का काव्य-कलाप, भारत की पुराण-संहिता अब तक सारे संसार को धर्म की शिक्षा दे रही है। भारत की प्रधानता का विचार करते हुए एक बार उसकी भौगोलिक अवस्था की ओर दृष्टि दीजिए; देखिए, उत्तर दिशा में तुषार-रूपी स्वच्छ किरीटधारी हिमालय पहाड़ समस्त भूमण्डल से ऊपर सिर उठाकर भारत की प्रधानता की घोषणा कर रहा है। मानव-प्रीति की निदर्शन-स्वरूप सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, गङ्गा और यमुना आदि पवित्र नद-नदियाँ हिमालय से प्रवाहित होकर भारतवर्ष की भूमि को उपजाऊ और शस्य-श्यामल कर रही हैं। दक्षिण-तुङ्ग-तरङ्ग-निनादित रत्नराजि-राजित महासागर कुमारिका* देवी के मन्दिर की सीढ़ियों को निरन्तर पवित्र जल से धो रहा है। पूर्व और पश्चिम भाग में भी समुद्र की विस्तृत शाखाएँ और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। इस कारण भारतवर्ष पहाड़ और खाई से घिरा हुआ, प्रकृति का, एक मज़बूत क़िला है। इसी से भारतवासियों ने चिरकाल तक शान्ति-सुख का बेखटके उपभोग किया है; निःशङ्कभाव से धर्म की आलोचना की है और संकोचरहित हो पृथिवी में ज्ञानोपदेशक गुरुदेव का आसन ग्रहण करके प्राच्य सामाजिक जीवन की नींव डाली है। कोई जाति क्यों न हो, जब उन्नत हुई है तब धर्म की उन्नति से ही उन्नत हुई है। भारतवर्ष भी धर्म के पथ में विचरण करके जातीय उन्नति के सिद्धक्षेत्र में

---

* कुमारिका देवी के नाम से ही कुमारी-अन्तरीप प्रसिद्ध है।

प्राप्त हुआ था। इसी से कितने ही साधु, महात्मा और तपस्वी निर्जन गिरि-गुफाओं में और घोर जंगलों में तपस्या करके ब्रह्मज्ञान के उच्च आसन पर जा विराजे थे। छाया-शीतल सहस्रों तपोवनों से निकल कर यज्ञों के धुएँ ने देवता और मनुष्य के सम्बन्ध को अत्यन्त निकट कर दिया था।

भारतवासियों का लक्ष्य बहुत काल से उच्च था, और उनका आदर्श भी उन्नत था। इसी से वे लोग मनोराज्य के अनेक अज्ञात सिद्धान्तों के आविष्कार करने में समर्थ हुए थे। कर्तव्यों और सुव्यवस्था ने उनके सामाजिक जीवन को सुखमय और शान्ति-पूर्ण कर दिया था। इस प्रकार, मानव-सभ्यता का पहला सिद्ध-स्थान भारत जगत् का चिरवन्दनीय हो रहा था। इच्छाशक्ति की सजीवता ने ही कर्तव्य-पथ में आगे बढ़ा कर उसे सफल-प्रयत्न और धन्य किया था। जगत् के इतिहास की आलोचना करने से ज्ञात होता है कि, जब जिस जाति की वासना पूर्ण हुई है तब वह जाति शुरू-शुरू में दुर्बल और निरीह अवस्था में ही रही है। किन्तु जहाँ अभिलाष उच्च है और जहाँ आदर्श बड़ा है, वहाँ उन्नति अवश्य होती है। इसी कारण, प्राचीन भारत क्रमशः उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़ने में समर्थ हुआ था। जब-जब भारत का गगन-चुम्बी गौरव-किरीट निश्चेष्टता के कुहरे अथवा लुटेरों और विद्रोहियों के विचित्र नरताण्डव की धूलि-राशि से ढका है, तब-तब युग-युग में यह कर्मवीर और ज्ञानवीर के अभ्युदय से एक नई आशा की किरणों से देदीप्यमान हो उठा है; तब-तब रुद्र गुरूपदिष्ट भारत तुङ्ग-तरङ्ग-भीषण कर्म-समुद्र को लाँघकर साधन के किनारे लगने में समर्थ हुआ है। किन्तु उसकी इस समुद्र-यात्रा में कर्णधार कौन है? कर्म-संग्राम में उसको अग्रसर कर किसने उसका साथ दिया? किसने उसको उत्साहित किया?—उसकी दुर्निवार ऊँची आकांक्षा ने।

इस संसार में ऐकान्तिक शुभाभिलाष की उत्तेजना से कर्तव्य के मार्ग में जो घूमते हैं, उनके पुरोवर्ती आदर्श-पुरुषों की पंक्ति क्रमशः दूर खिसक कर कर्मक्षेत्र की विपुलता और प्रकृति की विविध विचित्रता दिखाकर उन्हें अपनी ओर खींचती है; तब उनकी गति अबाध और बे-रोक होती है। ऊँची आकांक्षा ही जातीय जीवन का मूलसूत्र है और सामाजिक उत्साह ही दौर्बल्य-रोग का महौषध है। जिस जाति में प्रबल आकांक्षा नहीं वह जड़ और मृतकतुल्य है। जातीय जीवन की जड़, यह उन्नति की आकांक्षा, क्रमशः धर्म की उन्नति में परिणत होकर जातीय जीवन को उन्नत और मङ्गलमय बनाती है। इसलिए जहाँ आकांक्षा ऊँची है, जहाँ सत्य से अनुप्रेरित प्रवृत्ति अनुकूल है—आदर्श सामने मौजूद है, इच्छा-शक्ति जहाँ दुर्निवार्य है—वहाँ सिद्धि अवश्यम्भावी है। किन्तु सिद्धि का द्वार साधना ही है। उद्देश्य महान् और लक्ष्य उच्च होने से मनुष्य साधन-क्षेत्र में सिद्धि पाता है। यह जो सत्य की प्रेरणा है; यह जो वासना की अदम्य तीव्रता है, यही सामाजिक शक्ति के प्राण हैं; यही पूर्व-पुरुषों की चिता-भस्म से शक्ति का नया अंकुर उत्पन्न करती है। इस प्रकार, भारत पुरानी अभिज्ञता से भविष्यत् जीवन के उपयुक्त शान्ति और नियम की निष्पत्ति के लिए उद्देश्य की सृष्टि करता है।

इस साधन के लिए भारत में कितने ही आदर्श-चरित्र स्त्री-पुरुषों ने जन्म ले करके उसे धन्य और चिर-पवित्र किया है। पूर्वकाल में भारतवासी लोग मनसा, वाचा, कर्मणा उन-सब आदर्श-चरित्रों का अनुसरण करते थे। सच तो यह है कि कर्म-जीवन में आदर्श का प्रभाव असीम है। आदर्श उच्च होने से चेष्टा भी उत्कृष्ट होती है। आदर्श-चरित्र का पूरी रीति से अनुकरण न होने पर भी उसका स्मरण मनुष्य को धन्य और सार्थक करता है, हृदय को बलिष्ठ करता है। आदर्श

कर्म के रणक्षेत्र में उत्साहित करके मनुष्य को विजय के गौरव-किरीट से विभूषित करता है। आदर्श मनुष्य-जीवन में विचित्र सृष्टि का सम्पादक है; आदर्श पाकर राक्षस भी मनुष्य हो जा सकता है। जिस समाज में आदर्श नहीं, वह समाज समाज ही नहीं। आदर्श के अभाव से मनुष्य की जीवन-नौका नाना प्रकार की कुरीतियों के भँवर में पड़कर चक्कर खाती रहती है।

अच्छा, यह आदर्श चरित्र क्या है? जिस चरित्र में बुद्धि-वृत्ति के साथ कार्य्यक्षमता और कर्तव्यपरायणता सम्पूर्ण रूप से पाई जाय वही आदर्श चरित्र है। पार्थिव जीवन में मनुष्य को अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के घात-प्रतिघात से निरन्तर दुःखित होना पड़ता है। इस घोर द्वन्द्व में जगदीश्वर की सृष्टि का रहस्य समझकर जो कर्त्तव्यपथ में अग्रसर हो सकते हैं वही धन्य हैं; उन्हीं के चरणों में उत्तर-कालीन स्त्री-पुरुष भक्तिभाव से अर्घ डालते हैं। ऐसा जीवन ही आदर्श जीवन है। आदर्श जीवन का सहज अनुभव होने पर भी उसका अनुकरण करना बड़ा कठिन है। घोर विपत्ति में पड़कर मनुष्य जब चञ्चल हो जाता है, तब आदर्श अपनी स्नेह से भरी मधुर अभय वाणी सुनाकर उसको सच्चे शुभ कार्य्य के मार्ग में अग्रसर कर देता है। पैंट्समैन जैसे लाल झण्डी दिखाकर रेलगाड़ी की गति को रोक देता है, वैसे ही आदर्श अपने जीवन के विविध दुःखों और विडम्बनाओं का चित्र दिखाकर मनुष्य को सावधान कर देता है। सांसारिक मोह से जब हमारी दृष्टि धुँधली हो जाती है तब आदर्श का कल्याण-अञ्जन उसे स्वच्छ कर देता है। इस तरह आदर्श, मनुष्य-जीवन में देवता की भाँति वास्तविक कल्याण को विकसित करने के लिए सतत प्रयत्नशील बना रहता है। संसार के विषम मार्ग में हमें इस बात को अच्छी तरह समझ-बूझकर चलना चाहिए।

कालचक्र के परिवर्तन से हम लोग बहुत दूर नीचे जा गिरे हैं। सच्चरित्र श्रीरामचन्द्रजी, प्रेम-रूपी सत्यवान्, पुण्यश्लोक नल, दान-वीर हरिश्चन्द्र, कर्त्तव्यपरायण श्रीवत्स जिस देश में पुरुष जाति के आदर्श-स्थल हैं; और जिस देश में पवित्रता-मयी सीता देवी, सती-शिरोमणि सावित्री, पतिभक्तिपरायणा प्रेम-कुशला दमयन्ती, करुणा-रूपिणी शैव्या, तत्त्वज्ञानवती चिन्ता आदि रमणी-रत्नों ने जन्म ग्रहण किया है, उस देश के स्त्री-पुरुष आदर्श के अभाव से भिन्न पथ का अव-लम्बन करें—इसका स्मरण होने से भी कष्ट होता है।

स्त्री-जाति ही समाज-शक्ति का प्राण है; और रमणी का पवित्र जीवन ही प्रेम है। उसका यह प्रेम माँ-बाप के प्रति भक्तिरूप में स्वामी के प्रति निष्ठारूप में, सन्तान के प्रति स्नेहरूप में, दुखियों के प्रति करुणा-रूप में और वैरी के प्रति क्षमा-रूप में तथा संसार के प्रति जगद्धात्रीरूप में नित्य प्रकाशित है। जो प्रेम-मयी रमणी संसार के कार्य्य में आत्म-समर्पण करके कर्त्तव्य और स्नेह के भीतर अपने को विलीन कर दे सकती हैं वे ही आदर्श रमणी हैं। उनका पवित्र वृत्तान्त चिर-व्यापी काल के ललाट में स्वर्णाक्षर से सदा अङ्कित रहता है और संसार उन शक्तिमयी जगद्धात्रियों के चरणों में प्रणत होता है। उन सती पतिव्रताओं के चरणों से निकली हुई अक्षय्य अमृत-धारा देशवासियों को अनन्त काल तक शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान करती है। इन सब महोदारचरिता महिलाओं के पवित्र जीवन की पुण्य-कथा भारत की रमणियों को धर्म में, कर्त्तव्य और पातिव्रत में सदा उत्साहित करे—यही हमारी जगदीश्वर से प्रार्थना है।

ग्रन्थकर्त्ता

दूसरे संस्करण की भूमिका

—:❀:—

इस अनुवाद के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में कई पाठकों ने हमें यह सूचना दी थी कि इसकी भाषा कुछ कठिन है। अतएव इस संस्करण में हमने पुस्तक की भाषा बहुत ही सरल करा दी है। इसके साथ ही सीता-जन्म की कथा, जो अद्भुत रामायण के आधार पर लिखी गई थी, कई लोगों की सम्मति से इस संस्करण में से निकाल दी गई है, क्योंकि वे लोग अद्भुत रामायण को प्रामाणिक नहीं मानते। अतएव यह संशोधित संस्करण है।

प्रकाशक

सूची

—:०:—

चित्र-सूची

———

पहला आख्यान

सीता



अशोक वृक्ष के नीचे सीता। ७२

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

आदर्श महिला

पहला आख्यान

सीता

[१]

आजकल जिस स्थान का नाम तिरहुत (तीरभुक्ति) है वह, पहले समय में, मिथिला या विदेह नाम से पुकारा जाता था। वहाँ सीरध्वज और कुशध्वज नाम के दो राजकुमारों ने जन्म लिया। जेठे भाई सीरध्वज राजसिंहासन पर बैठकर, पुत्र की भाँति, प्रजा का पालन करने लगे। राज-पाट के साथ-साथ उनके चरित्र और हृदय की उन्नति भी ख़ूब हुई थी। अधिक धर्म-विश्वास और हृदय की उन्नति से वे राजा होकर भी ऋषियों की बराबरी के हो गये थे। उनके प्रेम-पूर्ण हृदय की ममता पाकर प्रजा ख़ूब प्रसन्न रहती थी। राजा सीरध्वज प्रजा के पिता-समान थे। इससे वे "जनक" के साथ राजर्षि की पदवी पाकर 'राजर्षि जनक'* कहलाते थे।

---

* वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के बाद की २२वीं पीढ़ी। इनके पिता का नाम ह्रस्वरोमा था। विष्णुपुराण ४वाँ अध्याय।

राज-काज में लगे रहने पर भी जनक धर्मशास्त्र की चर्चा करते थे। उनका दरबार केवल विचार-कार्य और प्रजा की नालिश-फ़र्याद का फ़ैसला करने में ही अपने कर्तव्य की समाप्ति नहीं समझता था। राजा जनक की धर्म-पिपासा मिटाने के लिए बहुतसे शास्त्र-ज्ञानी ऋषि सभासदरूप से राज-दरबार की शोभा बढ़ाते थे। उनका दरबार एक ओर विचारालय और दूसरी ओर धर्म-मन्दिर के समान समझा जाता था। उस दरबार में बहुतसे ऋषि-मुनि आकर राजा जनक के साथ धर्म-चर्चा और ब्रह्म-मीमांसा करने में पवित्र आनन्द का अनुभव करते थे।

सीता राजर्षि जनक की लड़की थी। एक बार राजर्षि जनक ने कुरुक्षेत्र में आकर कुरु-जांगल में एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। पहले, राजा लोग यज्ञ-भूमि को हल से इस कारण जोतते थे कि यज्ञानल में पृथ्वी के भीतर के दूषित पदार्थ आदि जलकर यज्ञाग्नि की पवित्रता को कहीं नष्ट न कर दें। इसलिए राजा जनक सोने के हल से वहाँ की ज़मीन जोतने लगे। अचानक हल के सामने एक बहुत सुन्दर कन्या दीख पड़ी। उस समय हल जोतने से निकली हुई कन्या पर फूलों की वर्षा होने लगी। इस असम्भव घटना को देखकर राजर्षि जनक विस्मय से सोच ही रहे थे, इतने में आकाश-वाणी हुई—'हे राजा! तुम इस कन्या को लेकर बेटी की तरह पालो-पोसो। इस अपूर्व सुन्दरी कन्या से तुम्हारा मङ्गल होगा; इससे जगत् का विशेष कल्याण होगा; इससे तुम्हारा कुछ विघ्न नहीं होगा। तुम इस कन्या-रत्न को देवता का प्रसाद—अपने भविष्य-मङ्गल की पूर्व-सूचना—समझना।' राजा जनक ने बड़े आदर से उस कन्या को लिया और हल से उत्पन्न हुई कन्या का नाम सीता रक्खा। (अद्भुत रामायण, आठवाँ सर्ग)

राजर्षि जनक के स्नेह से वह कुमारी द्वौज के चन्द्रमा की तरह

दिन-दिन बढ़ने लगी। बालिका की उस हृष्ट-पुष्ट देह में रमणी-स्वभाव-सुलभ नम्रता इस तरह चमकने लगी जैसे वर्षा के बादल में बिजली चमकती है। बेटी के कोमल शरीर में मानो किसी अशरीरी देवता की झलक देखकर राजा जनक ने प्रण किया—मेरे घर में रक्खे हुए शिव-धनुष पर जो वीर प्रत्यञ्चा चढ़ा सकेगा उसी को मैं यह कन्या-रत्न दान करूँगा।

उस शिव-धनुष के विषय में एक इतिहास है—एक बार प्रजापति दक्ष ने बड़ा भारी यज्ञ ठाना। वे अपने दामाद महादेव से प्रसन्न नहीं थे। इससे उस यज्ञ में उन्होंने महादेव को न्यौता नहीं दिया। एक तरह से महादेव का अपमान करना ही, उनके ठाने हुए, उस यज्ञ का मुख्य मतलब था। दक्ष की बेटी सती, न्यौता न आने पर भी, पिता के यज्ञ में गईं। वहाँ पिता के मुँह से स्वामी की निन्दा सुनकर उसने शरीर-त्याग किया। देवता लोग इस शिव-रहित यज्ञ में गये थे। इस कारण शिव क्रोधाग्नि से एक धनुष बनाकर देवताओं को मारने पर उद्यत हुए। क्रुद्ध महादेव की विकट मूर्त्ति देखकर देवता लोग डर के मारे, उनको शान्त करने के लिए, जब स्तुति करने लगे तब महादेव ने सन्तुष्ट होकर वह विशाल धनुष देवताओं को दे दिया। देवताओं से उस धनुष को मिथिलापति राजा जनक के पूर्वपुरुष देवरात ने* पाया था। तब से वह मिथिलापति की राजधानी में ही रक्खा था।

सीताजी बड़ी ही रूपवती थीं। उनके रूप पर मुग्ध होकर बहुतेरे राजपुत्र जनक के घर आते थे। किन्तु प्रायः सभी राजा जनक की भीषण प्रतिज्ञा से अपमानित होकर लौट जाते थे; नाना दारुण भाग्य उन लोगों को व्यङ्ग करके बिदा कर देता था। लङ्का-

* इक्ष्वाकु के बाद ७ वीं पीढ़ी।

प्रति रावण भी एक दिन सीता के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर, उन्हें पाने की इच्छा से, आया था; किन्तु धनुष को चढ़ाने जाकर हास्यास्पद हुआ। रावण अपने भाग्य की इस हँसी को नहीं समझ सका। सीता की मोहिनी मूर्ति उसके मानस-नेत्र के सामने नाचने लगी मानो सर्व-नाश कोई सुन्दर मूर्ति धरकर उसकी आँखों के सामने चमकने लगा।

[२]

अयोध्या-नरेश राजा दशरथ एक दिन दरबार में बैठे थे, इतने में महर्षि विश्वामित्र ने वहाँ आकर राजा को आशीर्वाद दिया। महाराज के प्रणाम करने पर विश्वामित्र ने कहा—राजन्! तपोवन में राक्षस-राक्षसियों के उत्पात से मुनियों को निर्विघ्न यज्ञ करना कठिन हो गया है। महाराज! मैंने एक यज्ञ करने का संकल्प किया है; किन्तु राक्षस-राक्षसियों का उत्पात सोचकर उसकी सफलता में मुझे सन्देह होता है। आप क्षत्रिय राजा हैं। दुखी का दुख दूर करके राज-धर्म का पालन कीजिए।

महाराज ने पूछा—"इस विषय में महर्षि की क्या आज्ञा है?" विश्वामित्र ने कहा—आपके दो पुत्र, राम और लक्ष्मण, धनुर्विद्या में बहुत निपुण हैं मानो साक्षात् धनुर्वेद ने राम-लक्ष्मण रूप से अवतार लिया है। इसलिए आप राक्षस-राक्षसियों के उपद्रव से यज्ञ की रक्षा करने के लिए राम और लक्ष्मण को मेरे साथ कर दीजिए। यज्ञ पूरा होते ही वे राजधानी को लौट आवेंगे।

राजा दशरथ ने दुःखित मन से राम-लक्ष्मण को जाने दिया।

रामचन्द्र और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ निबिड़ वन से होकर जाते थे। इतने में देखा कि ताड़का नाम की राक्षसी मुँह

फैलाकर उन्हें खाने के लिए आकाश-मार्ग से आ रही है। राम ने विश्वामित्र की आज्ञा से उसको मार डाला। इस प्रकार बहुतसे राक्षसों को मारकर रामचन्द्र ने विश्वामित्र का यज्ञ पूरा किया।

महर्षि विश्वामित्र ने राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनी थी। वे मन ही मन समझते थे कि जनक की कन्या इन वीर-श्रेष्ठ रामचन्द्र के ही योग्य है। इससे वे राम-लक्ष्मण को साथ लेकर राजा जनक के यहाँ पहुँचे। रामचन्द्र ने राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनकर उस धनुष को देखने की इच्छा प्रकट की। विश्वामित्र ने उन्हें धनुष दिखा दिया। रामचन्द्र ने उस धनुष को बाँयें हाथ से उठाकर उस पर गुण चढ़ाया। फिर तीर लगाकर छोड़ते समय गुण खींचकर उसे तोड़ डाला। यह देख दर्शकगण रामचन्द्र की बारम्बार प्रशंसा करने लगे। वधू के वेष में सीता ने मुसकुराते हुए रामचन्द्र के गले में जयमाल डाल दी। उनके उस मिलन के पवित्र मुहूर्त में अमरावती का आनन्द बिजली की तरह खेल गया; मानो नन्दनकानन के पारिजात-कुसुम के निर्मल हास्य के साथ, उनके हास्य का बदलौअल हो गया। नील-समुद्र में स्वच्छ-सलिला नदी आ मिली।

राजा दशरथ राजर्षि जनक की सादर अभ्यर्थना से, भरत और शत्रुघ्न सहित, मिथिला में आये। राजा जनक ने सीता के साथ रामचन्द्र का, उर्मिला के साथ लक्ष्मण का और भाई कुशध्वज की दो लड़कियों—माण्डवी और श्रुतकीर्ति—से भरत और शत्रुघ्न का व्याह कर दिया।

•

महाराज दशरथ बड़े आदर-मान के साथ राजा जनक के यहाँ कई दिन रहकर पुत्र और पुत्र-बधुओं सहित अयोध्या को लौट रहे थे कि परशुराम ने उन लोगों का रास्ता रोककर कहा—"राम! तुमने हमारे गुरु महादेव का धनुष तोड़कर घमण्ड प्रकट किया है,

इसलिए मैं तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेना चाहता हूँ।" रामचन्द्र ने बाण चलाकर जब परशुराम के हाथ के कुठार को व्यर्थ कर दिया तब परशुराम लज्जित होकर महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गये।

[३]

महाराज दशरथ पुत्र और पुत्र-वधुओं को साथ लेकर अयोध्या लौट आये। राजधानी में आनन्द की धारा बह चली, मानो प्रकृति देवी ने आनन्द में मग्न होकर सैकड़ों धाराओं में आनन्द का स्रोत बहाया हो। राज-पुत्रगण विवाह के पवित्र आमोद में समय बिताने लगे। युवराज रामचन्द्र, सब विषयों में, प्रजा के अधिकतर प्यारे हो चले। उनके सद्व्यवहार, मधुर वचन और अपूर्व ममता ने प्रजा को मंत्र की तरह मोह लिया।

महाराज दशरथ ने बुढ़ापे में योग्य पुत्र रामचन्द्र को, युवराज-पद पर अभिषिक्त करने की इच्छा से, उसकी तैयारी की। अभिषेक का दिन नियत हुआ। प्राणप्यारे रामचन्द्र के राजा बनने की बात सोचकर प्रजा मन ही मन प्रसन्न होकर राजतिलक के दिन की बाट जोहने लगी। सारी राजधानी में मंगल-पताकाएँ फहराने क्या लगीं, मानो हवा से बातें करके सर्वत्र राज्याभिषेक की ख़बर फैलाने लगीं। शहनाई की सुन्दर रागिनी मानो राज-महल में आनन्द की मन्दाकिनी-धारा बहा रही थी। किन्तु विधाता के चक्र से शहनाई के गीत ने अचानक शोकयुक्त सुर अलापकर अयोध्या-वासियों को शोकाकुल कर दिया।

सम्बरासुर से युद्ध करने में महाराज दशरथ बाण से घायल होकर मरने के बराबर हो गये थे। मँझली रानी कैकेयी की सेवा-शुश्रूषा से स्वस्थ होकर वे उसे दो वर देने को तैयार हुए। कैकेयी ने

कहा—"जब आपके ऐसा पति, रामचन्द्र के ऐसा पुत्र और ऐसी राज-भक्त प्रजा है तब मुझे और क्या चाहिए?" दशरथ के आग्रह करने पर कैकेयी ने कहा—"अच्छा, यह मेरी थाती रहे; जब ज़रूरत होगी, माँग लूँगी।" राजा इसी से सन्तुष्ट हो गये।

आज युवराज रामचन्द्र के राज्याभिषेक के संवाद से नागरिक प्रजा के आनन्द की सीमा नहीं है। राज-महल तो आनन्द की लहरों से एक ऐश्वर्य्यमय नाटक-घर के समान शोभा पा रहा है। सर्वत्र आनन्द उमड़ सा रहा है। ऐसे समय एक कुब्जा दासी के जी में इतनी जलन क्यों है? सर्वत्र आनन्द और तृप्ति पूर्ण-भाव से बह रही है किन्तु इस अभागिनी का हृदय दुःख और अतृप्ति की आग में क्यों जल रहा है? वह और कोई नहीं, कैकेयी के नैहर की दासी कूबरी मन्थरा थी।

कूट-बुद्धि और ओछे मन के मनुष्य जगत् के किसी भले काम को अच्छी नज़र से नहीं देख सकते। कूबरी दासी मन्थरा भी राम-चन्द्र के राज्याभिषेक में न जाने कितना अनर्थ देखने लगी! उसने सोचा कि राम राजा होंगे तो कैकेयी को राज-माता के अधीन होना पड़ेगा। भरत राजा के भाई रहकर उदासी से दिन काटेंगे। इतने दिन से जिसको रानियों में सिरमौर देखती हूँ, उसको अब राजा की सौतेली माँ के रूप में कैसे देखूँगी। यह सोचकर उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था। उसने झटपट कैकेयी के पास जाकर कहा—"अजी भोलीभाली रानी! कुछ सोचा भी है कि आगे तुम्हारा क्या हाल होगा?" सीधी-सादी कैकेयी, दासी की इस बात का मतलब न समझकर, उसका मुँह ताकने लगी। मन्थरा बोली—"राम राजा होते हैं।" सुनते ही कैकेयी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने गले का, मोतियों का, हार उतारकर उसे पारितोषिक दिया। मन्थरा ने कैकेयी का

बहुत तिरस्कार करके वह हार दूर फेंक दिया। कैकेयी धीरे-धीरे गहरे सन्देह में डूबने लगी। वह सोचने लगी कि मामला क्या है।

कैकेयी का स्वभाव बड़ा सरल और सुन्दर था, किन्तु शायद बुद्धि स्वभाव के समान नहीं थी। इसलिए वह सहज ही कुटिल मन्थरा के हाथ की कठपुतली बन गई। उसने अपनी मर्यादा का विचार न कर दासी के बहकाने से रानीपन छोड़ दिया। मन्थरा की सलाह से उसके सरल स्वभाव में गरल घुस गया। कैकेयी ने सोचा कि सच तो है, राम से मेरा भरत किस बात में घट कर है? सात-पाँच सोचकर रानी राजा से थाती-स्वरूप दो वर लेने की इच्छा से सँभल-कर बैठ गई। मन्थरा ने सलाह दी कि इस तरह राजा का मन हाथ न आवेगा। आँसू टपकाना, भूमि पर लोटना और ज़ेवर उतार फेंकना ही स्वामी को सीधे रास्ते लाने का बढ़िया उपाय है। कैकेयी प्रफुल्ल-मुख को आँसुओं से भिगोकर और ज़ेवर उतारकर लेटने के कमरे में धरती पर लोट गई। मन्थरा 'तीर लगा है' समझकर वहाँ से हँसी-ख़ुशी से चली गई।

तिलक की सब व्यवस्था करने के बाद महाराज दशरथ ने, महल में जाकर देखा कि कौशल्या, पुत्र के कल्याण के लिए पूजा कर रही है और कैकेयी के कमरे में जाकर देखा कि वह, हवा से गिरे हुए केले के पेड़ की तरह, धरती पर पड़ी हुई है। आज, इस आनन्द के दिन प्यारी रानियों के बदन पर आनन्द की झलक देखकर राजा प्रसन्न होने की बात सोचते थे, किन्तु यह क्या! यह क्या बला आई, सोच-कर, रह-रहकर, बूढ़े का दम फूलने लगा।

बहुत मनाने पर कैकेयी ने कहा—महाराज! आप सत्यव्रत हैं। आपने बहुत दिनों से मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। मैं आज वह वर लेना चाहती हूँ।

महाराज दशरथ ने कहा—"इसी के लिए इतनी रूठी हो? तुम जो माँगोगी वही दूँगा।" राजा को क्या पता था कि सुगन्धित फूलों के भीतर ऐसा प्राणहारी विषधर सर्प छिपा बैठा है।

कैकेयी ने कहा—

"सुनहु प्राणपति भावत जी का। देहु एक वर भरतहि टीका॥
दूसर वर माँगों कर जोरी। पुरवहु नाथ कामना मोरी॥
तापस वेश विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी॥

राजा दशरथ सुनते ही मूर्च्छित हो गये। बड़े कष्ट से होश-हवास सँभालकर वे कहने लगे—"दुष्टे! तुम कोई दूसरा वर माँगो। जो राम जगत् को प्यारे हैं, जो भरत से भी तुम पर अधिक भक्ति दिखलाते हैं और जो राम सब सद्‌गुणों के भूषणस्वरूप हैं उन लोकाभिराम रामचन्द्र ने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है? तुम उनका सर्वनाश चाहती हो। राजा ने कैकेयी को बहुत कुछ समझाया। कभी विनय-वचन से, कभी सादर वाक्य से और कभी तिरस्कार करके उसे अपनी इच्छा त्यागने के लिए कहा। किन्तु कैकेयी ने, किसी तरह, अपना हठ नहीं छोड़ा। दशरथ ने सोचा कि कैकेयी का हृदय रेगिस्तान है, वह समवेदना के आँसू से भला क्यों तर होगा? वह तो उसमें सूख ही जायगा। यह सोचकर राजा रह-रहकर मूर्च्छित होने लगे।

धीरे-धीरे सब बातें राम के कानों तक पहुँचीं। वे पिता की प्रतिज्ञा पालने को तैयार हुए। वन जाने की इच्छा प्रकट करके वे माता का दर्शन करने चले। दासी ने कहा कि रानी पूजा घर में हैं। रामचन्द्र ने पूजा-घर में जाकर माता के चरण छुए। देवता की ओर ध्यान लगाये हुए कौशल्या ने, विशेष आनन्द प्रकट करके, रामचन्द्र को आशीर्वाद दिया।

राम ने कहा—माता ! तुमको अभी मालूम नहीं है कि आज की ख़ुशी रंज में बदल गई। मैं आज राज-सिंहासन पाने के बदले और एक कठिन परीक्षा में पड़ा हूँ। इस परीक्षा में स्वार्थ की आहुति देकर परार्थ को ऊँचा आसन देना होगा। तुम्हारी पवित्र चरण-रज मेरे जीवन की ग्लानि दूर करके मेरे हृदय को बलवान् बनावे, तुम्हारा स्नेह-कवच मुझे आज कर्म्म के युद्ध में जय दे; ऐसा आशीर्वाद दो।

कौशल्या ने कुछ नहीं समझा। रामचन्द्र ने माता को सब हाल सुना दिया। सुनकर कौशल्या, पागल की तरह, हाहाकार करती हुई बेहोश हो गईं।

बड़ी-बड़ी कोशिशों से राम-लक्ष्मण ने उन्हें चेत कराया। कौशल्या रामचन्द्र को वन जाने से मना करने लगीं। किन्तु रामचन्द्र ने कहा—माता ! मैं राज्य छोड़कर वन नहीं जाऊँगा तो पिता का वचन न रहेगा। पिता का मान रखना, और सत्य पालना, पुत्र का अवश्य कर्तव्य है। मेरे वन न जाने से पिता का सत्य-भङ्ग होगा। माँ ! मैं तुम्हारे पवित्र गर्भ से जन्म लेकर क्या ऐसा नीच हूँगा ? तुच्छ वनवास का इतनासा क्लेश क्या सहन न कर सकूँगा ? माँ ! हमारे पिता तुम्हारे भी गुरु हैं, इसलिए तुम भी इस विषय को ज़रा सोच-समझ लो।

रामचन्द्र की ये बातें सुनकर कौशल्या आँसुओं की धारा बहाने लगीं। वे किसी तरह ऐसे कठोर विषय में सम्मति न दे सकीं।

रामचन्द्र ने समझा-बुझाकर कौशल्या को ढाढ़स दिया। अन्त में वे माता की आज्ञा लेकर प्रियतमा सीता के पास गये।

सीता ने सब हाल सुनकर रामचन्द्र के साथ वन जाने की इच्छा प्रकट की। रामचन्द्र सीता को, किसी तरह, साथ नहीं

ले जाना चाहते थे। इससे सीता ने उनसे कहा—आर्यपुत्र ! आप पण्डित हैं, शूर हैं, वीरवर हैं; आप मुझे राजधानी में रहने के लिए जो कुछ कहते हैं, सो सब प्रेम की अन्धी दृष्टि से। जो-जो दुर्घटनायें देखते हैं, वे कभी आपके योग्य नहीं। आपका यह उपदेश मेरे अनुकूल कर्तव्य नहीं है। आपके साथ, छाया की तरह, वन में जाना ही मेरा काम है। दम्पति में एक के सुख-दुःख में दूसरे का सुख-दुःख ऐसा मिला हुआ है जो अलग नहीं हो सकता। जहाँ इसमें कसर है वहाँ दाम्पत्य-धर्म सराहने योग्य है कि नहीं, इसका विचार आप ही के ऊपर है। स्वामी ही स्त्री का सर्वस्व है—स्वामी का सुख-दुःख ही स्त्री का सुख-दुःख है। फिर स्त्री सन्तप्त स्वामी के लिए छाया है, प्यासे स्वामी के लिए ठण्ढा जल है। क्या आप मुझे ऐसी ओछी समझते हैं कि मैं आपके केवल सुख की संगिनी हूँ ? दुःख के समय क्या मैं आपके दुख को स्वीकार कर आपको प्रसन्न नहीं कर सकती ? स्वामी का साथ ही स्त्री के लिए राजपद है। क्या आप मुझको ऐसे गौरव के स्थान से हटाना चाहते हैं ?

रामचन्द्र ने सीता से प्रेम-पूर्वक कहा—प्राणप्यारी ! तुमने मेरे सामने जो दाम्पत्य-धर्म कहा, उसे मैं जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि स्त्री ही स्वामी के, तपे हुए जीवन में शीतल-मंद-सुगन्ध वायु की तरह, सब कष्ट मिटा देती है। किन्तु लावण्य-लतिके ! वनवास के कठिन क्लेश से जब तुम्हारी देह धूल में मुरझाई हुई लता की तरह कुम्हला जायगी, जब तुम्हारे ये महावर से रँगे हुए सुकोमल चरण कुश के गड़ने से व्यथित होंगे, जब वन में घूमनेवाले राक्षसों के डर से तुम्हारा—खिले हुए कमल के समान—मुँह सूख जायगा तब यह शोक उपजानेवाला दृश्य मुझसे देखा न जायगा। प्रियतमे ! तुम्हारा यह प्रेम-पवित्र मुँह मेरे जीवन-आकाश का पूर्ण चन्द्र है, दुर्भाग्य-

राहु-द्वारा उसके ग्रसे जाने पर मुझे जो कष्ट होगा उसकी कल्पना करने से भी मुझे भय होता है। मैं अपनी इच्छा से अपना कलेजा निकालकर फेंक दे सकता हूँ किन्तु तुम्हारा कोई कष्ट मैं नहीं देख सकता। इसी से कहता हूँ कि तुम माताजी के पास, उनकी हताशा में आशा की तरह, रहकर मेरा आनन्द बढ़ाओ।

सीता ने सुनकर मान से कहा—आर्य-पुत्र! आपने क्या मुझे विलास की ही चीज़ समझा है? यह समझा है कि मैं आपके जीवन में सुख की ही संगिनी हूँ? क्या आप मुझे दुःख में संगिनी नहीं देखना चाहते? क्या आप नहीं जानते कि स्त्री का जन्म स्वामी के सुख-दुःख से मिला हुआ होता है? स्वामी साथ हो तो जंगली जानवरों से भरा हुआ वन ही साध्वी स्त्री के लिए नन्दन-वन है; आपसे आप उपजे हुए वन-फल ही उसके लिए राजभोग हैं; शीतल नदी-नीर ही उसके लिए सुवासित पीने की सामग्री है; घास ही उसके लिए अनमोल कोमल शय्या और जंगली फूलों की सुगन्ध ही उसके लिए विलास-सामग्री है। आपकी सेवा करने से मुझे जो तृप्ति होगी वैसी तृप्ति राजधानी का अपार सुख भोगकर भी न होगी। इसलिए आप मुझे अपने साथ ले चलें। आप ही साक्षात् राजश्री हैं। आपके वन में जाने से वह वन ही आपके तेज से स्वर्ग-समान हो जायगा और यह राजधानी, भयंकर प्रेतपुरी की तरह, मेरे लिए अशान्तिदायक हो जायगी। आपका मधुर मिलन ही मेरे लिए स्वर्ग-सुख है, और आपकी विरह-यन्त्रणा मेरे लिए हलाहल विष है। आप मुझे छोड़कर वन को न जाइए। नाथ! मैं आपके साथ वन को चलकर आपके क्लेश का कारण नहीं हूँगी। आपका पवित्र संग ही मेरे जीवन की कामना है। यदि मैं आपके साथ वन में घूमते-घूमते सूर्य की तेज़ किरणों से थक जाऊँगी तो आपका यह प्रेम-पवित्र मुँह

देखकर तृप्त हूँगी। आपको देखकर मैं सारा कष्ट भूल जाऊँगी। प्रभो ! आप मुझे छोड़कर वन को न जायँ।

रामचन्द्र ने, वन जाने को तैयार, सीता देवी को वनचर राक्षस आदि के उपद्रव की बातें बताकर रोकना चाहा; किन्तु यह नहीं सोचा कि सीता क्षत्राणी हैं, वे राजाओं के भयदायक शिव-धनुष तोड़नेवाले की सहधर्मिणी हैं, वे ताड़का को मारनेवाले की वीर-पत्नी हैं, वे क्षत्रिय-विध्वंसी परशुराम का गर्व हरनेवाले की धर्म-पत्नी हैं।

सीता ने कहा—प्राणनाथ ! आपने वीरता के प्रण में जयी होकर मुझे पाया है। आज आपके मुँह से भीरुता की ऐसी-ऐसी बातें क्यों निकलती हैं ? आप वीर हैं, पुरुष हैं, शास्त्रों के जाननेवाले हैं,—क्या आप मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे ? आप मुझे राक्षसों का डर क्यों दिखाते हैं ? आप ही ने तो, कुमार अवस्था में, ताड़का आदि का नाश करके विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण कराया था ! आप ही ने तो शिव-धनुष तोड़कर मुझे प्राप्त किया था ! आप ही ने तो गर्वीले परशुराम का कुठार व्यर्थ किया था ! मैं राक्षस से डरूँगी ? हे पुरुष-रत्न मुझे यह डर मत दिखाओ। स्त्री की रक्षा करना स्वामी का मुख्य कर्तव्य है, यह भूल मत जाओ।

अब रामचन्द्र सीता को साथ लेने में आना-कानी नहीं कर सके। भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण भी रामचन्द्र के साथ वन जाने को तैयार हुए। सुमित्राजी लक्ष्मण के वन जाने का समाचार सुनकर तनिक भी दुखित नहीं हुईं। उन्होंने राम के हाथ में लक्ष्मण को सौंपकर कहा—बेटा लक्ष्मण ! राम को पिता-तुल्य, सीता देवी को मेरे समान और घोर वन-भूमि को अयोध्या समझना।*

* रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

राम-लक्ष्मण ने वन के योग्य वेष धारण किया। रामचन्द्र के जिस मस्तक पर बड़े मोल का राज-मुकुट शोभा पाता उसी मस्तक पर आज जटाजूट है! जो पवित्र शरीर रोली-चन्दन की सुगन्ध से स्निग्ध और बहुमूल्य वस्त्र तथा गहनों से सुशोभित होता उसी पर आज चीर-वस्त्र है! राजकुमार ने आज सत्य के सामने सब विलास-सामग्री को बलि देकर वैराग्य लिया; केवल सीता देवी ने सास के अनुरोध से रानी का वेष नहीं छोड़ा। इसके बाद वे लोग पिता और माताओं के पैर छूकर और दूसरे गुरुजनों को प्रणाम करके राजधानी से निकल पड़े। आगे राम, बीच में सीता और पीछे लक्ष्मण चलते थे; उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो राज्य के मङ्गल और शान्ति के पीछे-पीछे साक्षात् धनुर्वेद भी जा रहा है।

आज वन के रास्ते में ये तीनों यात्री कैसे हैं? मानो भविष्य में मनुष्य-जाति को त्याग और संयम सिखाने के लिए इन तीन श्रेष्ठ मूर्त्तियों ने, भविष्य आशा को हृदय में रखकर, पृथ्वी के सारे दुःखों को अङ्गीकार किया है। जन्म से ही सुख में पले हुए सूर्यवंश के गौरव-पुञ्ज दोनों राजकुमार और सती सुकुमारी सीता देवी दीन वेष में वन को जा रही हैं! दोनों राजकुमार कसरत और लड़ाई में दुःख की कठोर मूर्त्ति से अपरिचित नहीं हैं किन्तु जो सीता देवी पिता के स्नेह में पलीं, जिन राजवधू ने अयोध्या में कभी पलँग से नीचे पैर नहीं रक्खा, जो वीर स्वामी की शान्ति हैं, वही कुसुम-समान कोमल सीताजी आज वन को जा रही हैं! उनके सुन्दर चरण आज धूल से लिपट रहे हैं। आज वे रामचन्द्र की बाहु के सहारे धीरे-धीरे चल रही हैं।

धीरे-धीरे वे लोग गङ्गा-किनारे पहुँचे। गङ्गा-तट के विशाल वन में प्रकृति देवी मानो सौन्दर्य की सैकड़ों भेंटें लेकर सत्य की धुन के

पक्के रामचन्द्र के कर्तव्यपरायण हृदय को प्रीति के शान्त शीतल जल से सींचने के लिए तत्पर हुई। सीता और लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र वनवास का क्लेश भूलकर प्रकृति का खुला सौन्दर्य देख पुलकित हुए। वनदेवी भौंरों से गुञ्जायमान पुष्पों से शोभित हरे-हरे पत्ते हिलाकर रामचन्द्र की अभ्यर्थना करने लगी। रामचन्द्र गङ्गा का सुन्दर दृश्य देखकर पुलकित हो गये।

वहाँ से वे चित्रकूट गये। पत्थर के शरीरवाला चित्रकूट मानो सूर्यवंश-कमलिनी सीता देवी को ढाढ़स देने के लिए तैयार हुआ। वह अपने शिखर के जङ्गल-वृक्षों का श्यामल सौन्दर्य, वन-लता की कमनीयता और सिर चूमनेवाली मेघमाला का मोहक दृश्य लेकर मानो उन लोगों का स्वागत करने लगा।

चित्रकूट के ऊपर से बहनेवाले झरने मधुर कलरव से सीता देवी को सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे। सीताजी चित्रकूट पर रामचन्द्र का आदर और प्यार पाकर मानो सारे दुःखों को भूल गईं। रामचन्द्र के साहचर्य, लक्ष्मण की भक्ति और प्रकृति के इस बिना माँगे हुए उपहार को पाकर सीता देवी अयोध्या का सुख भूल गईं।

[४]

इधर रामचन्द्र आदि के वन जाने से अयोध्यावासी बहुत दुःखित हुए। राजा दशरथ ने तो पुत्र-शोक से प्राण ही छोड़ दिया। इस समय भरत राजधानी में न थे। वे भाई शत्रुघ्न के साथ ननिहाल गये थे। पिता के मरने का समाचार पाकर भरत अयोध्या में आये। वे पिता का क्रिया-कर्म करके रामचन्द्र को लौटा लाने के लिए राजधानी से रवाना हुए।

उस समय रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण-सहित, चित्रकूट पर थे। भरत रामचन्द्रजी के पैरों में गिरकर, माता के इस ओछे काम

के लिए, क्षमा माँगने लगे। भरतजी, यह सोचकर कि मेरी माता ने ओछी बुद्धि के कारण ऐसा अनर्थ किया है, बहुत लज्जित होते हुए रामचन्द्र को अयोध्या लौटा ले जाने का उपाय करने लगे। किन्तु रामचन्द्र ने किसी तरह लौटना मंज़ूर नहीं किया। लाचार भरत रामचन्द्रजी की खड़ाऊँ सिरपर रखकर के लौटे और अयोध्या के बाहर नन्दीग्राम में खड़ाऊँ को राजसिंहासन पर थापकर राज-काज चलाने लगे।

भरत के लौट जाने पर रामचन्द्र दण्डक वन को गये। सती-शिरोमणि सीता निराश प्राणपति को ढाढ़स देने के लिए वन-फूलों से अपना सिंगार करतीं। आखेट से थके हुए रामचन्द्र का पसीना सीता के डुलाये हुए पंखे से सूख जाता। कलकल शब्द करनेवाली नदी के दोनों किनारे, प्रकृति के भोलेभाले बच्चे की तरह, विचरा करते। कभी-कभी स्वामी की सोहागिनी अपना जूड़ा जंगली फूलों से सजाकर जब वनदेवी के समान शोभा पातीं तब ऐसा जान पड़ता कि अयोध्या की राजलक्ष्मी ने दण्डक वन में एक नया राज्य फैलाया है। लक्ष्मण ने वहाँ, रहने-योग्य एक स्थान चुनकर, कुटी बनाई। सीता देवी स्वामी के साथ उसी में रहने लगीं। लक्ष्मण रात को उस कुटी के सामने पहरा दिया करते थे।

सीता, प्रकृति के लाड़ले शिशु की तरह, सीधे स्वभाव की थीं। गोदावरी का तट उनकी क्रीड़ा का आँगन हो गया। उनकी कुटी के चारों ओर बहुतसे जङ्गली फूल खिलकर उस स्थान को सुगन्धित कर देते थे। कोयल की कुहुक सुनकर सीता की नींद टूटती। जंगली जानवर उनकी सखी बन गये थे। ओस से भीगे हुए पुष्प-दल शस्य के झुके हुए गुच्छे, काँस के फूलों से शोभायमान गोदावरी-तट सीता देवी को अनेक प्रकार से तृप्त करते थे।

इस प्रकार, सीता ने प्रकृति के साथ हेलमेल कर लिया। प्रकृति देवी ने भी, मानो सुन्दरता के सैकड़ों उपहार देकर, सीता देवी के सुख की गृहस्थी सजा दी। सीता वन में विचरनेवाली हरिणियों का आदर करतीं; मीठी बोलीवाले कितने ही पक्षी उनकी कुटी के पास वृक्ष की डालियों पर बैठकर चहकते; सौन्दर्य में भूली हुई सीता अपनापा भुलाकर उनके गले से अपना गला मिलाकर गीत गाने लगतीं। वन-देवी की वन-वीणा का स्वर, मानो किसी अनिश्चित माया-लोक से आकर, सीता को पुलकित कर देता। सीता कभी गोदावरी के कमल-वन में देवाङ्गनाओं की जल-केलि देखतीं; कभी स्वामी के साथ पहाड़ पर बैठकर कितनी ही कहानियाँ सुनतीं; कभी लताओं में भौरों की गुञ्जार सुनकर पुलकित होतीं और कभी मुनि-कन्याओं के साथ गप-शप किया करतीं। इस प्रकार उन्होंने एक सुख की गृहस्थी बना ली।

इस नई गृहस्थी में आकर सीता देवी अयोध्या का राज-सुख भूल गईं। क्यों न भूल जातीं? सैकड़ों प्रकार की खटपट से भरा हुआ, तरह-तरह के स्वार्थों से दूषित, सीमा-बद्ध राज-महल क्या सदा शान्तिमय उदार असीम वनभूमि से घटिया नहीं है? सुगन्ध-पूर्ण सुन्दर जंगली फूल, प्रकृति से शिक्षा पाये हुए पक्षियों के कलरव और पवित्र स्वभाववाली तापस-कुमारियों के बहनपा ने उनको वन-वास का क्लेश भुला दिया।

किन्तु सीता का यह सुख बहुत दिनों तक नहीं रहा। विनोद के इस रङ्ग-मञ्च पर दुःख का दृश्य अचानक आ जमा।

रावण की बहन शूर्पनखा दण्डक वन में रहती थी। खर-दूषण के अधीन चौदह हज़ार राक्षस भी वहाँ निवास करते थे। एक दिन शूर्पनखा वन में घूमती हुई रामचन्द्र के आश्रम के पास आ पहुँची

और रामचन्द्र का मोहन रूप देखकर लट्टू हो गई। जब रामचन्द्र ने पापिनी की ब्याह-कामना पूरी नहीं की तब वह क्रूरा शूर्पनखा सीता देवी को ही, रामचन्द्र का प्रेम पाने में, बाधक समझकर उन्हें खाने दौड़ी। राक्षसी का यह भाव देखकर सीता डर गईं। उनका खिले हुए कमल सा मुँह सूख गया। लक्ष्मण ने पापिनी को उचित दण्ड दिया—उन्होंने उस अभागिनी के नाक-कान काट लिये।

अभागिनी के अपमान से खर और दूषण ने रामचन्द्र पर चढ़ाई की परन्तु सेना-सहित दोनों मारे गये। अब रामचन्द्र दण्डकारण्य में राक्षसों के लिए भयानक काल के समान बनकर रहने लगे।

नाक-कान कटी पापिनी शूर्पनखा ने प्रतिहिंसा की आग में जल-भुनकर रावण के पास जा अपनी दुर्दशा की बात कही। रावण, बहन के इस अपमान से, घी पाकर धधकती हुई आग की तरह जलने लगा और यह सोचकर वह क्रोध के मारे काँपने लगा कि उस तुच्छ आदमी ने त्रिलोकी को जीतनेवाले रावण की बहन का ऐसा अपमान किया। शूर्पनखा ने रावण से कहा—महाराज! मैंने वन में घूमते-घूमते, राम के पास, एक बड़ी सुन्दर स्त्री को देखकर सोचा कि यह मनुष्य राम के योग्य नहीं; किन्तु यह तो देवता और असुरों पर हुकूमत करनेवाले त्रिलोक-प्रसिद्ध मेरे भाई रावण की गोद में ही शोभा पाने योग्य है। खिले हुए फूल को देवता के चरणों पर कौन नहीं चढ़ाता? मैं इसी मतलब से वहाँ गई थी कि उस स्त्री को लाकर तुम्हें सौंपूँ। बस, इसी से पापी राम ने मेरी यह दुर्गति कर डाली। मेरे साथी खर और दूषण मेरी सहायता करने गये थे, वे मारे गये। तुम अपने को तीनों लोकों का जीतनेवाला समझकर गर्व तो करते हो; किन्तु अब दण्डक वन तुम्हारे अधिकार में नहीं। तुम्हारी एक-मात्र बहन का इस प्रकार अपमान हुआ है। मैं



पंचवटी में सीता, राम और लक्ष्मण, और पास ही मायामृग —पृ० १४

बदला लेना चाहती हूँ; बदला लेने के लिए मेरी छाती जल रही है। तुम तुच्छ राम-लक्ष्मण को मारकर इस सुन्दरी सीता को ले आओ। सीता तुम्हारे विलास-वन में, खिले हुए स्थल-कमल की तरह, शोभा देगी।

अभिमानी रावण आज बदहवास है। एक ओर बहन का अपमान और दूसरी ओर पाप-वासना। अभागा आज दो धाराओं में डूब रहा है। रावण अपनी मर्यादा को भूलकर रूप-अग्नि के आकर्षण से पतंग की तरह दौड़ा।

मायावी मारीच को साथ ले, आकाश में उड़नेवाले अपने पुष्पक विमान पर चढ़कर, रावण तुरन्त दण्डक वन में पहुँचा। दुर्बुद्धि रावण आत्म-शक्ति को भूलकर चोरी से अपनी पापवासना पूर्ण करने पर तैयार हुआ। रावण के हुक्म से मारीच एक सुनहरे मृग का रूप धरकर रामचन्द्र के आश्रम के पास फिरने लगा।

सुनहरे मृग को देखकर सीता ने रामचन्द्र से कहा—"नाथ! आप इस सुन्दर मृग को जीता पकड़ लावें, तो मैं इसको आश्रम में रखकर पालूँगी। अगर जीता न आ सके तो मार कर ही लावें। उसका सुन्दर चमड़ा हम लोगों के आश्रम में रहेगा।

आज रामचन्द्र की बुद्धि भी गड़बड़ा गई। वे देवताओं के पूज्य होकर आज धोखे में आ गये। उनकी आँखों में धूल पड़ गई। हाथ में धनुष लेकर रामचन्द्र, लक्ष्मण को सीता की रखवाली का भार देकर, आश्रम से निकल पड़े।

रामचन्द्र ने ज्योंही स्वर्ण-मृग का पीछा किया त्योंही वह अचानक ग़ायब हो गया। रामचन्द्र इस माया को नहीं समझ सके। वे मृग के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। दुर्भाग्यरूपी रात जैसे आफ़त में पड़े हुए बटोही की विद्युत-हास्य करके दिल्लगी उड़ाती है, वैसे ही माया-

मृग भी एक-एक बार रामचन्द्र के सामने आकर उनकी दिल्लगी उड़ाने लगा। उन्होंने उस अनोखे मृग को जीता पकड़ने की आशा न देखकर उस पर बाण चलाया। निशाना था अचूक, माया-मृग घायल होकर रामचन्द्र की सी आवाज़ में यह कहता हुआ मर गया— "राक्षस के हाथ से मेरा प्राण जाता है। हे सीता! हे लक्ष्मण! तुम कहाँ हो, आकर मुझे बचाओ।" माया-मृग के मुँह से ऐसी असम्भव बात सुनकर रामचन्द्र अचरज से सोचने लगे कि यह क्या मामला है। माया-मृग की इस उक्ति में कोई न कोई रहस्य अवश्य छिपा हुआ है—यह सोचकर रामचन्द्र तेज़ी से आश्रम की ओर चले।

कुटी में बैठी हुई सीता, दूर से रामचन्द्र के गले की आवाज़ सुनकर, घबरा गईं और लक्ष्मण से बोलीं—"लक्ष्मण! तुम शीघ्र अपने बड़े भाई की सहायता को जाओ।" स्थिर-बुद्धिवाले लक्ष्मण रामचन्द्र की शक्ति को और वहाँ के राक्षसों की चालबाज़ी को अच्छी तरह जानते थे। इससे वे सीता की घबराहट देखकर भी रामचन्द्र की आज्ञा भङ्ग कर सीता को कुटी में अकेली छोड़कर जाने से हिचकने लगे।

लक्ष्मण को निश्चिन्त देखकर स्वामी की विपद से घबराई हुई सीताजी क्रोध से कटु वचन बोलीं। लक्ष्मण के स्वभाव और कार्रवाई को कोई गुप्त चाल समझकर सीता ने शेरनी की तरह गरजकर कहा—अरे दुष्ट लक्ष्मण! मैं समझ गई, तू बुरे मतलब से मेरे साथ आया है। तेरा भ्रातृ-प्रेम कोरा बहाना है।

विपद के समय मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। सीता का भी यही हाल हुआ। लक्ष्मण के स्वार्थ-त्याग, भ्रातृ-प्रेम, संयम, उच्च-हृदयता और पर-स्त्री के प्रति मातृ-भाव को आज सीता ने सन्देह की दृष्टि से देखा। आज कोई शैतान आकर सीता के सरल हृदय में विष

बुझा गया, उनकी सदा शान्त रहनेवाली प्रकृति में अशान्ति की आग फूँक गया। सीता का मातृ-भाव से उन्नत हृदय आज व्यर्थ के सन्देह से झुक गया। सीता के उस अतर्कित भावान्तर और भयङ्कर मूर्ति को देखकर लक्ष्मण विस्मित और क्रुद्ध होकर डबडबाई आँखों से झटपट कुटी से चल पड़े।

अवसर पाकर दुराचारी रावण ने, संन्यासी के वेष में, सीता के पास जाकर भीख माँगी। कुटीर-वासिनी असहाया सीता ने अतिथि-सत्कार में त्रुटि होने के भय से, अपना परिचय देकर, संन्यासी के लिए आसन और पाद्य दिया। किन्तु रावण ने इस सत्कार की ओर ध्यान नहीं दिया। उसने छूटते ही अपना अभिप्राय प्रकट किया। सीता ने झिड़ककर घृणा-पूर्वक कहा—अरे दुष्ट राक्षस! तू ऐसी दुष्ट आशा क्यों रखता है? मेरे स्वामी देवताओं के पूज्य, मूर्तिमान् धनुर्वेद, चरित्र में समुन्नत पर्वत की तरह विराट् हैं। तू किस साहस से पाप की ऐसी बात बोलता है? तेरा यह असम्भव प्रयत्न देखकर मुझे विस्मय होता है। क्या तू नहीं जानता कि मैं सत्य-प्रतिज्ञ, आदर्श-चरित्र, पुरुष-श्रेष्ठ रामचन्द्र की सहधर्मिणी हूँ? मैं महासागर छोड़-कर गढ़ैया को क्यों चाहने लगी? अरे गीदड़! तू क्या पुरुष-सिंह रामचन्द्र के अतुल पराक्रम को नहीं जानता? धूर्त! तू गीदड़ होकर सिंहिनी की अभिलाषा करता है? क्षुद्र गढ़ैया होकर असीम महा-सागर को गोद में लेना चाहता है? जो तुझे प्राण प्यारा है तो पाप-वासना छोड़कर शीघ्र यहाँ से भाग। तेरी पाप की बात से यह स्वाभाविक सौम्य वन-भूमि और शान्त शीतल सन्ध्या कलुषित हुई है। अरे पापी, तेरी पाप की बात से वृक्ष के पत्ते ठिठक गये हैं; सन्ध्या का सूर्य्य लाल आँखें करके तेरे सत्यानाश की ओर देख रहा है। तू यहाँ से काला मुँह कर। एक बार इन्द्राणी का अपमान करके

तू बच भी सकता है पर मेरा अपमान करके, मेरे महाबली स्वामी के क्रोधानल से, कभी निस्तार नहीं पावेगा।

दुष्ट रावण ने एक न सुनी। वह न जाने किस ख़याल में था। पाप-वासना उसको न जाने किस कालसमुद्र की ओर ढकेल रही थी! रावण ने सुध-बुध भूलकर मानो बिजली को गले लगाने की चेष्टा की; उसने मानो काली नागिन को छाती पर रखने की इच्छा की। पर यह नहीं देखा कि आँखों में चकाचौंध लगानेवाली बिजली के भीतर प्राण का नाश कर डालनेवाली शक्ति है; उसने यह नहीं समझा कि काली नागिन के हलाहल से मेरे वंश भर का नाश हो जावेगा।

रावण ने देखा कि सीता साधारण स्वभाव की स्त्री नहीं। यहाँ बातों से कोई काम नहीं होगा, यह सोचकर उसने एक हाथ से सीता की चोटी और दूसरे हाथ से कमर पकड़कर रथ पर चढ़ा लिया और आकाश को ले उड़ा। सीता के रोदन से दशों दिशाओं में शोक छा गया। पञ्चवटी की शोभा मारी गई। वृक्ष मानो उदास भाव से खड़े होकर काँपने लगे।

"हा राम हा रमण हा जगदेकवीर, हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्?
इत्थं विदेहतनयां बहुधालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम॥"

सीता का आर्त्तनाद सुनते ही दण्डक वन-वासी वृद्ध जटायु ने आकर रावण से कहा— अरे दुष्ट! मैं तुझे जानता हूँ। आज फिर तूने किसके घर में आग लगाई है? तेरा यह अन्याय मुझसे नहीं सहा जायगा। सताई हुई सती का विलाप सुनकर मेरा ख़ून खौल रहा है। पापी! आज तू मेरे हाथ से बच नहीं सकता।

रावण ने सुनकर इसकी कुछ परवा नहीं की। तब बूढ़े जटायु ने अपनी सारी शक्ति लगाकर रावण पर हमला किया। किन्तु अपनी रक्षा करने में वह समर्थ नहीं हुआ। घायल होने पर उसने सती को

सम्बोधन करके कहा—मा जानकी ! मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका। जिसने तुम्हारी लता-सदृश देह में बिजली की शक्ति दी है, जिसने तुम्हारे वीणा को लजानेवाले स्वर में वज्र की क्षमता दी है, जिसने तुम्हारी स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जा में विजय-श्री दी है; वही विधाता तुम्हारा मङ्गल करे; उसका स्नेहाशीर्वाद अक्षय कवच की भाँति तुम्हारी रक्षा करे। मेरे जीवन का दिया बुझने पर है। इस बीच में अगर तुम्हारे भुवनों को जीतनेवाले स्वामी रामचन्द्र तुम्हें ढूँढ़ते हुए यहाँ आ पहुँचे तो मैं उनसे सब हाल कह दूँगा। जाओ सती, सतीत्व ही आज से तुम्हारा रक्षा-मन्त्र हो।

सीताजी ऊँचे स्वर से रोने लगीं, किन्तु आत्मरक्षा का कोई उपाय न देख कनेर का वन सामने पाकर बोलीं—"हे कनेर ! तुम तुरन्त रामचन्द्र से कहना कि रावण सीता को हरे लिये जाता है।" वे गोदावरी नदी को देखकर बोलीं—"हे तरङ्गिणी ! मैं तुम्हारे किनारे बैठकर हताशा में बहुत कुछ ढाढ़स पाती थी; सखी ! तुम इस विपद की बात आर्य्य रामचन्द्र से अवश्य कहना।" फिर वे दिगङ्गनाओं को सम्बोधन करके बोलीं—"हे दिगङ्गनाओ ! तुम जगत् के पहरुए के रूप से सदा सजग रहती हो; देखो, दुष्ट रावण मुझे हर कर लिये जाता है। आर्य्य रामचन्द्र को यह समाचार कह सुनाना।" किन्तु इतना विलाप करने पर भी और कोई उस पाप-मूर्ति रावण के सामने आकर उपस्थित नहीं हुआ। सती सीता का रोना सचमुच अरण्य-रोदन हुआ।

सीता ने और कोई उपाय न देखकर सोचा कि अब इस सिंगार-पटार से क्या काम ! यह तो आर्य्य रामचन्द्र के आनन्द के लिए था। जब वे यहाँ से दूर हैं, तब मेरे ये भूषण आदि सदा वन्दनीय पति देवता के ऊपर न्योछावर हों। इससे सौभाग्यवती सीता भूषणादि निकाल-निकालकर फेकने लगीं। शोक-विह्वला सीता के, सुध-बुध

भूल कर, फेंके हुए वस्त्र मानो रथ के बाहर के जगत् को इशारे से कहते थे कि दुष्ट रावण सीता को हरकर लिये जाता है, यह बात रामचन्द्र से कहना।

सीता को लेकर रावण सीधा लङ्का में पहुँचा। ऐश्वर्य के गर्व से फूली हुई लङ्का सती के पद-भार से विचलित हो गई। उस स्वप्नमयी स्वर्ण की लङ्का का ऐश्वर्य देखकर रावण ने सीता से प्रेम-प्रार्थना की। सीता ने क्रोध से काँपते हुए स्वर से कहा—अरे अभागे का-पुरुष! क्या बकता है? दूसरे का पैर चाटनेवाला कुत्ता होकर तू यज्ञ का हवि लेना चाहता है? पापी! तेरी पाप-वासना से चिर-पवित्र प्रकृतिधर्म कलङ्कित हुआ है। मैं, दिव्य नेत्र से, तेरा सर्वंश नाश देख रही हूँ।

यह कहकर सीता ने घृणा-सहित रावण की ओर से मुँह फेर लिया। उस तेजस्विनी सती मूर्ति से मानो क्रोधाग्नि की लपट पापिष्ठ को भस्म करने के लिए निकलने लगी। उद्धत रावण ने, उपाय न देखकर, सीता को पाप-मार्ग में बहकाने के लिए राक्षसियों के साथ अशोक-वन में भेज दिया।

[५]

प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे-पूरे अशोक वन में सीता देवी का मुख-कमल आँसुओं से भीगा हुआ है। पहरा देनेवाली राक्षसियों को देखने से जान पड़ता है कि वे मानो प्रेत-भूमि में विचरनेवाली पिशाचिनियाँ हैं। मानो भयङ्करता ने स्वयं वेष धारण कर लिया है। ऐसा मालूम होता है कि अशोक-कानन में सीता देवी "विष-लताओं से घिरी हुई महौषधि" हैं। दुष्ट राक्षसियों की पापभरी बातों से सीता देवी की आँखें, बिजली भरे बादल की तरह, जल बरसाने लगीं। निठुर राक्षसियाँ, भूख-प्यास से दुर्बल बनी हुई, सीता को कभी

ललचाकर और कभी डराकर मालिक का मतलब साधने का उपाय करने लगीं।

एक दिन उदास-वदन सीता देवी अशोक-वृक्ष के नीचे, बादल छाई हुई रात्रि के आकाश में क्षीण चन्द्र-किरण की तरह, शोभा पा रही हैं। इतने में पाप-बुद्धि-मदान्ध रावण ने वहाँ आकर कहा—हे कटीली नज़रवाली! एक बार मेरी ओर नज़र फेरकर मेरे तड़पते हुए कलेजे को ठण्डा करो। सुन्दरी! अभी तक तुमने इस सुन्दर शरीर में धूल भरा कपड़ा क्यों लपेट रक्खा है? कमल को लजानेवाले इन नेत्रों को आँसुओं के जल से क्यों बिगाड़ रही हो? तुम्हारे विलास के लिए लङ्का के राज-भण्डार का द्वार खुला हुआ है। त्रिलोक-विजयी दशानन तुम्हारे चरणों में राज-मुकुट रखता है।

सीता ने रावण के रक्खे हुए राज-मुकुट को लात मारकर कहा—पापी! अगर जीने की इच्छा है तो अभी मेरे सामने से दूर हो! सुनहरी चोटीवाली लङ्का की राजश्री तेरे जैसे का-पुरुष के आश्रय में रहने से धूल में क्यों नहीं मिल जाती? वसुन्धरा अभी तक तेरे पाप-बोझ को क्यों ढो रही है? अगर धर्म कोई वस्तु है तो तेरी यह असंयत जीभ ऐसी पापभरी बातों के कारण अवश्य ही गिद्ध-गीदड़ों के पेट में जायगी। पापिष्ठ! मेरे अमित तेजवाले स्वामी के क्रोधाग्नि में तेरी पाप से पैदा की हुई लङ्का की यह धन-राशि अवश्य भस्म होगी। अभागे! यदि प्राण प्यारा है तो तुरन्त यहाँ से चला जा।

कोमल स्वभाववाली सीता देवी की देह से वीरता का तेज निकलने लगा। उनके कण्ठ से वज्र के समान कठोर शब्द निकलने लगे। उस लावण्य-लतिका ने मानो आज रण-चण्डी का वेष धारण कर लिया। पापात्मा रावण उस रुद्र-मूर्त्ति से सहमकर रनिवास में चला गया।

रावण के चले जाने पर सीता देवी बिजली-भरे बादलों की तरह काँपने लगीं। उनके नेत्रों से निकला हुआ अश्रु-जल मानो रावण की ऐश्वर्यमयी लङ्का को बहा ले जाकर काल-समुद्र में डाल देने का उद्योग करने लगा। इस प्रकार, सती सीता राक्षस-वंश के सत्यानाश का महामन्त्र जपते-जपते दिन काटने लगीं।

एक दिन वे सोचने लगीं कि आर्य्यपुत्र ने क्या अब तक मेरा पता नहीं पाया! जिस समय दुष्ट पापी मुझे हरकर ले चला उस समय का मेरा आर्त्तनाद क्या, मुँह खोलकर कहनेवाले, किसी प्राणी को नहीं सुन पड़ा? मेरे फेंके हुए भूषण क्या आर्य्य रामचन्द्र को नहीं मिले? दुखियों को शरण देनेवाला वृद्ध जटायु क्या आर्य्य-पुत्र से भेंट होने के पहले ही अपना शरीर छोड़कर नित्यधाम को चला गया? इस प्रकार के चिन्तास्रोत में डूबती-उतराती सीताजी दिन बिताने लगीं।

[६]

रामचन्द्र स्वर्ण-मृग को मारने के बाद राक्षस के मुँह उलटा शब्द सुनकर बड़ी तेज़ी से आश्रम को लौटे। अचानक मार्ग में लक्ष्मण को देखकर वे बोले—"भाई लक्ष्मण! राक्षस की चालबाज़ी से हम लोग ठगे गये हैं। आज स्वर्ण-मृग के कपट से रघुकुल की वधू राक्षस के हाथ में पड़ गई है। भाई लक्ष्मण! सब चौपट हुआ। अवश्य ही दुष्ट राक्षस ने माया करके सीता को हर लिया है।" इस तरह कहते-कहते दोनों भाइयों ने बड़ी तेज़ी से आकर देखा कि अँधेरे घर की रोशनी सीता कुटी में नहीं हैं। सीता बिना वह कुटी मानो काटने दौड़ती थी। "हाय सीता! कहाँ गई, हाय सीता! कहाँ गई," कह-कहकर रामचन्द्र क्षण ही क्षण मूर्च्छित होने लगे। लक्ष्मण बड़ी कठिनाई से रामचन्द्र को सचेत करके तरह-तरह से समझाने लगे।

लक्ष्मण ने कहा—आर्य्य! शोक विपद को और बुलाता है; आप जैसे महान् पुरुष को शोक करना उचित नहीं। कर्त्तव्य सोचिए। विपद में धैर्य धारण करना चाहिए। चलिए, हम लोग सीताजी का पता लगावें। तब,

प्रति वन प्रति तरु के तले प्रति गिरि-गह्वर मांहि।
खोजि थके सब ठौर जब मिली जानकी नांहि॥
सहि न सके रघुनाथ तब दुःसह सीय-वियोग।
विकल भये लखि आपको दुखी भये सब लोग॥

इस तरह सीता को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इन्होंने पंखकटे, लहू से लथपथ, एक अधमरे गिद्ध को देखा। उसका जीवन बुझते हुए दीपक की तरह टिमटिमा रहा है। इतने में उसने रामचन्द्र को देखकर प्रणाम करते हुए क्षीण-कण्ठ से कहा—"वत्स! तुम आ गये। मैं तुम्हारे पिता का मित्र, जटायु, हूँ। रघुकुल-कमलिनी सीता को लङ्का का राजा रावण हर ले गया है। उस दुष्ट के हाथ से उसका उद्धार करने जाकर मेरी यह दशा हुई है। मेरा जीवन-प्रदीप बुझने पर है। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है—तुम्हारी पवित्र-मूर्त्ति दिखाई नहीं देती।" इसके साथ ही जटायु की, मृत्यु-मुख में समाई हुई, आँखें सदा के लिए बन्द हो गईं। जटायु की मृत्यु से राम-लक्ष्मण का पितृ-शोक नया हो गया।

लक्ष्मण की तत्परता से रामचन्द्र जटायु की अन्त्येष्टि-क्रिया करके क्रौंचारण्य में* पहुँचे। वहाँ कबन्ध नाम का एक भयानक राक्षस रहता था। रामचन्द्र के तीखे बाण से वह मारा गया। कबन्ध ने, ऋष्यमूक-वासी सुग्रीव की सहायता से, सीता-उद्धार की सलाह देकर प्राण छोड़ा।

---

* जनस्थान से तीन कोस के फ़ासले पर एक वन।

धीरे-धीरे दोनों भाई पम्पातीर* पहुँचे। रामचन्द्र पम्पा का मनोहर दृश्य देखकर अपने को भूल गये। सीता का विरह उनके हृदय को व्याकुल कर रहा था। इतने में, एक दिन, सुग्रीव के भेजे हुए हनुमान् ने आकर रामचन्द्र को प्रणाम किया। हनुमान् के उस सुजनता-भरे अभिवादन से लक्ष्मण का हृदय सहानुभूति पाने की आशा से बलवान् हो गया। लक्ष्मण ने हनुमान् का आदर करके कहा—हे वीर! तुम कृपा करके अपने राजा से कहो कि हम विपद-ग्रस्त किष्किन्धा-पति से सहायता माँगते हैं।

सुग्रीव से रामचन्द्र की भेंट हुई। सुग्रीव ने ऋष्यमूक पर्वत पर मिले हुए भूषण आदि दिखाये। रामचन्द्र उन भूषण आदि को छाती से लगाकर रोने लगे। उनके रोने से पत्नी से बिछुड़े हुए सुग्रीव की विरहाग्नि भभक उठी। रामचन्द्र ने सुग्रीव के मुँह से उसके पत्नी-हरण का वृत्तान्त सुनकर प्रतिज्ञा की—मैं वाली को मारकर पापी को दण्ड दूँगा।

रामचन्द्र के बाण से वाली मारा गया। सुग्रीव का पत्नी के शोक से आतुर हृदय रामचन्द्र की मित्रता से बैर का बदला चुकने पर आनन्दित हुआ। सुग्रीव ने मित्र के काम में जी-जान होम करके बन्दरों की सारी सेना को सीता की खोज में भेज दिया। इसी समय विभीषण ने आकर रामचन्द्र की शरण ली।

एक दल बन्दरों की सेना-सहित हनुमान् ने दक्षिण समुद्र के किनारे जाकर सुना कि यहाँ से बारह योजन पर लङ्का टापू है। हनुमान् ने एक बार सोचा कि यह बारह योजन समुद्र लाँघने का

* ऋष्यमूक पर्वत पर चन्दगुर्ग के पत्थरों से घिरा हुआ सरोवर है। उस सरोवर से निकली हुई नदी पम्पा कहलाती है। वह उड़ीसा में तुङ्गभद्रा से जा मिली है।

क्या उपाय है। बहुत सोच-विचार के बाद हनुमान् एक ही छलाँग में लङ्का जा पहुँचे। रात में सीता को ढूँढ़ने में सुभीता समझकर वह रात की बाट देखने लगे। जब रात हुई तब हनुमान् घूम-घूमकर सीता को खोजने लगे, किन्तु उन्हें कहीं सीता का पता नहीं मिला। कितने ही प्रमोद-घरों में स्त्रियों को देखा किन्तु कोई स्त्री उस महा-महिमावाली सीता की सी नहीं देख पड़ी।

अन्त को हनुमान् ने अशोक वन में जाकर देखा कि एक वृक्ष की डाली पकड़कर एक दुबली-पतली-सी स्त्री उदास-मन से खड़ी है; उसके शरीर से तेज निकल-निकलकर उस घोर अँधेरे से ढके हुए वन के अन्धकार को दूर कर रहा है। उस पवित्र स्त्री को देखकर हनुमान् के मुँह से झट माँ शब्द निकल आया और उन्होंने विरह से दुबली उस मातृ-मूर्त्ति को सुनाकर "रामचन्द्र की जय" शब्द का उच्चारण किया।

सीताजी मन को प्रसन्न करनेवाले राम-नाम को अचानक सुनकर चौंक पड़ीं। उन्होंने सोचा कि मैं जागती हुई सपना देख रही हूँ या यह मेरे सदा आराध्य राम-नाम की आप से आप निकली हुई प्रति-ध्वनि है! इतने में फिर वह, अमृत-समान, मधुर राम-नाम सुन पड़ा; मानो सूखते हुए धान के खेत में जल-धारा पड़ गई। सीता ने डबडबाई हुई आँखों से वृक्ष की डाली की ओर ताका, देखा कि उस वृक्ष की एक शाखा पर एक छोटासा बन्दर बैठा है। उसी के मुँह से राम-नाम निकल रहा है। विरहिणी सीता देवी से, भयानक प्रेत-पुरी में, मानो शरीरधारी जीव की भेट हुई।

हनुमान् ने डाली से उतरकर प्रणाम करते हुए कहा—आप क्या रामचन्द्र की सहधर्मिणी रघु-कुल-कमलिनी जानकीजी हैं? आप कृपा कर बेखटके मुझे अपना परिचय दीजिए। मैं सीता देवी को

ढूँढ़ता हुआ समुद्र पार होकर यहाँ आया हूँ। माताजी! मैं आप का पुत्र हूँ। कृपा करके पुत्र की प्रार्थना पूरी कीजिए।

यह सुनकर सीता पहले कुछ कह नहीं सकीं। वे सोचने लगीं—यह क्या सपना है? यह छोटासा बन्दर उस डरावने समुद्र को पार कर यहाँ आ सकता है? क्या यह भी सम्भव है? यह किसी मायावी का कपट तो नहीं है? फिर माता के सम्बोधन की याद आने से उनके मन में ख़याल आया कि अगर यह मायावी का कपट है तो इसके मुँह से "माता" शब्द क्यों निकला! यह सोच-कर, सीताजी ने सन्देह को दूर करके कहा—बेटा! तुम कौन हो? तुम इस दुस्तर समुद्र को पार कर यहाँ कैसे आये?

हनुमान् ने संक्षेप में सब हाल बताकर सन्देह मिटाने के लिए सीताजी को रामचन्द्रजी की दी हुई अँगूठी दी।

विरह से मरती हुई सीता आर्य रामचन्द्र की अँगूठी पाकर पुल-कित हुईं। वह अँगूठी उनकी दुर्भाग्यरात्रि में चन्द्र की क्षीण ज्योति-सी मालूम होने लगी और उसने उनके पूर्व जीवन की सारी सुख-स्मृति की याद दिला दी। सीताजी की आँखें भर आईं। उन्होंने कहा—"वत्स! आर्य-पुत्र कैसे हैं?" हनुमान् ने कहा—माता! पर्वत की तरह विराट् गम्भीर रामचन्द्र आपके विरह से पागल-से हो रहे हैं। आपके विरह में फूलों की सुगन्ध, शीतल मन्द बयारि का स्पर्श और प्राकृतिक शोभा उनके लिए दुःखदायी हो रही है। और तो क्या, उनको भोजन तक नहीं रुचता।

सीताजी हनुमान् के मुँह से यह सब सुनकर रोने लगीं। उन्हें अपने जीवन की, एक-एक करके, सब बातें याद आ गईं। हनुमान् ने कहा—"माँ! आप कहें तो मैं आपको पीठ पर चढ़ाकर श्रीरामचन्द्र के

पास पहुँचा दे सकता हूँ।" सीता ने राक्षसों के डर से, और अपनी इच्छा से पर-पुरुष को छूना सती-धर्म के विरुद्ध समझकर, ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी।

तब हनुमान् ने कहा—"अच्छा, तो मैं स्वामी रामचन्द्र से जाकर आपका हाल कहूँगा। उनके लिए एक-एक घड़ी युग के समान् बीतती है। अब मैं विलम्ब नहीं करूँगा।" सीता ने कहा—अच्छा बेटा! जाओ। तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो, तुम चिरजीवी हो।

हनुमान् ने सीता से विदा होकर सोचा कि ज़रा लङ्का की शोभा और राक्षसों का बल तो देखता चलूँ। यह सोचकर हनुमान् रावण के बाग़ में घुस गये। बन्दर के उपद्रव से फले हुए वृक्षों की डालियाँ टूटने लगीं। वन के रखवालों ने तुरन्त रावण के पास जाकर ख़बर दी। एक छोटेसे बन्दर के हाथ से उपवन की दुर्दशा होने सुनकर रावण ने आज्ञा दी कि जैसे बने उस बन्दर को पकड़ लाओ।

राक्षसों ने बड़ी कठिनाई से हनुमान् को पकड़कर रावण के पास हाज़िर किया। रावण ने क्रोध से बन्दर की ओर देखकर कहा—"इस दुष्ट की पूँछ में तेल से भिगोया हुआ कपड़ा लपेटकर आग लगा दो।" राक्षसों ने ऐसा ही किया। "रामचन्द्र की जय" कहकर हनुमान् लङ्का में एक घर से दूसरे घर पर उछल-उछलकर घूमने लगे। अब क्या था, सोने की पुरी लङ्का के महल जलने लगे। राक्षस देखकर हाय हाय करने और कहने लगे कि यह हम लोगों की मूर्खता का ही फल है। सीताजी के आशीर्वाद से हनुमान् को आग की लपट बर्फ़ के समान ठण्ढी मालूम होने लगी।

इधर अशोक-कानन में करुणा-मूर्त्ति सीता देवी राक्षसों की चिल्लाहट को सुनकर और अग्नि की भयानक लपटों को देखकर डर गईं। उन्होंने सोचा कि यह क्या हुआ। अग्निदेव के इस प्रचण्ड कोप से

क्या नहीं भस्म होता ? सुख की कौनसी सामग्री जलकर ख़ाक नहीं होती ? सोचकर सीता बड़ी उत्कण्ठा से समय बिताने लगीं।

सीता की दुर्भाग्य-रूपी रात्रि में एक-मात्र तारा, विभीषण की पत्नी, इसी समय वहाँ गई। सीता ने लङ्का की ओर दृष्टि करके पूछा—"सखी ! इतना हल्ला क्यों मचा हुआ है ? आग क्यों लगी है ?" तब सरमा ने सीता से सब हाल कहा। सीताजी सुनकर हनुमान् के लिए चिन्ता करने लगीं। सरमा ने कहा—"सखी ! उनके लिए कुछ डर नहीं। वे तो आग लगाकर फुर्ती के साथ समुद्र पार कर गये।" यह सुनकर सीता की चिन्ता दूर हुई।

[७]

सुग्रीव आदि बन्दरों की सेना के साथ रामचन्द्र उदास मन से दिन बिता रहे हैं। इतने में हनुमान् "रामचन्द्र की जय" कहते हुए हर्षपूर्वक रामचन्द्र के पास पहुँच गये। रामचन्द्र ने हड़बड़ाकर पूछा—"क्यों हनुमान् ! सीता देवी का कुछ समाचार ले आये ?" हनुमान् ने सीता का दिया हुआ चूड़ामणि रामचन्द्र के हाथ पर रक्खा। उस चिह्न को देखकर रामचन्द्र रोने लगे। उन्होंने व्याकुल होकर पूछा—हनुमान्, तुमने मेरी सीता को किस अवस्था में देखा ? तुमने जब मेरी बात बताई तब उस सती ने क्या कहा ?

हनुमान् ने कहा—देव ! मैंने पहले लङ्का में बहुत ढूँढ़ा पर कहीं भी रघुकुल-कमलिनी सीता देवी का दर्शन नहीं पाया। अन्त में निराश होकर घूमते-घूमते मेरी दृष्टि अचानक अशोक-वन की हरी शोभा पर पड़ी। देखते ही मेरे जी में आप से आप यह वाणी निकली कि यहीं मेरी माता, बादलों से घिरी हुई चन्द्रकला के समान, विराजमान हैं। मेरा मन उत्साहित हुआ। अशोक-वन में घुसकर मैंने देखा कि भूख-प्यास से दुर्बल बनी हुई एक दुखिया स्त्री वृक्ष के नीचे खड़ी



अशोक वन में सीता और सरमा—पृष्ठ ३३ ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

है। उसे देखकर मैंने अपना सब परिश्रम सार्थक समझा। साधना पूरी होने की आशा से मेरा हौसला बढ़ गया। उस स्त्री के शरीर पर गहने नहीं थे। उसको चारों ओर से घेरे हुए भयानक चेहरेवाली राक्षसियाँ बैठी थीं। हे रघुवीर! मैंने देखा कि मेरी माता ने, इस प्रकार घोर शत्रुओं से घिरी हुई होने पर भी, धैर्य को नहीं छोड़ा। पति के प्रेम का मधुर ढाढ़स ही मानो उन साध्वी को महिमान्वित किये हुए है। राक्षसियों की कड़ाई से उनके धैर्य का पुल टूटा जाता है, वे रो-रोकर बेज़ार हो रही हैं। उनके गालों पर से बहते हुए आँसुओं से मानो स्वर्गीय-ज्योति निकल रही है। मैंने पेड़ की आड़ से उस पवित्र मूर्त्ति को देखकर समझा कि यही मेरी माँ हैं। लङ्का में इतनी सुन्दर स्त्रियाँ देखीं किन्तु किसी को माँ कहने की इच्छा मुझे नहीं हुई। उनको देखकर मेरी मातृभक्ति जाग उठी। पेट भरकर 'माँ' 'माँ' पुकारा। देखा कि देव दाहिने हुए। शराब पीकर मतवाली बनी हुई, पहरवाली राक्षसियाँ न जाने क्यों वहाँ से टल गईं। अवसर पाकर मैं वृक्ष की डाली पर बैठे-बैठे गुनगुनाकर आपकी कीर्ति गाने लगा। अचानक आपकी कीर्ति से आकृष्ट होकर उन्होंने सिर उठाकर वृक्षशाखा की ओर दृष्टि की। मैंने प्रणाम करके उन्हें अपना परिचय दिया। सरल स्वभाववाली माता राक्षसों से ठगी जाकर हर बात में सन्देह करती हैं। इसी से पहले मुझे राक्षसी माया समझ कर घबराती थीं। यह ताड़कर मैंने उनको आपकी दी हुई मुँदरी दी। उन्होंने मानो खोया हुआ धन पाया। उनके मुख-मण्डल पर आनन्द की झलक दीख पड़ी। उन्होंने डबडबाई आँखों से और गद्गद कण्ठ से आपका और लक्ष्मण का कुशल-मङ्गल पूछा। मैंने आपका समाचार कहा तो उदास बनी हुई माँ को मानो अपार दुर्भाग्य-समुद्र में किनारा मिल गया।

यह कहते-कहते हनुमान्, रामचन्द्र की उत्कण्ठा देखकर, आँसू गिराने लगे। रामचन्द्र ने हनुमान् के आँसू देखकर सँभलते हुए कहा—"वत्स हनुमन्! आज सीता का समाचार देकर तुमने मेरे मृत शरीर में प्राण डाला है। मेरे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे, तुम्हारे इस अलौकिक कार्य्य के लिए, पुरस्कार में दे दूँ। आओ वत्स! तुम्हें एक बार इस विरह से जलती हुई छाती से लगा लूँ।" हनुमान् ने उस देवदुर्लभ श्रेष्ठ शरीर का आलिंगन पाकर अपने को धन्य माना।

[८]

श्रीरामचन्द्र हनुमान् के मुँह से सीता का समाचार पाकर बन्दरों की सेना-सहित लङ्का जाने की तैयारी करने लगे। लालसा पूरी होने में क्षण भर का विलम्ब उनके लिए युग समान बीतने लगा। निदान वे इस प्रकार व्यग्र हृदय से समुद्र के किनारे आ पहुँचे। अब यह चिन्ता हुई कि इस अपार समुद्र को कैसे पार करें। समुद्र की कृपा पाने के लिए रामचन्द्र ने तपस्या आरम्भ कर दी। उनकी तपस्या का उद्देश था—या तो सेना-सहित समुद्र लाँघना या प्राण दे देना। रामचन्द्र की तपस्या से जब समुद्र प्रसन्न नहीं हुआ तब उन्होंने अधीर होकर धनुष-बाण सँभाला। सङ्कट देखकर समुद्र प्रार्थना-पूर्वक उन्हें सेतु बाँधने का उपाय बता गया।

वानरी सेना के आनन्द की सीमा नहीं थी। बन्दर पेड़, पत्थर उखाड़-उखाड़ समुद्र में डालने लगे। वानरी सेना की तत्परता से और नील नामक वानर की कारीगरी से सेतु-बन्धन बहुत जल्द पूरा हो गया।

रामचन्द्र वानरी सेना लिये हुए लङ्का में सहर्ष पहुँचे। वीरों के पद-भार से गढ़-त्रिकूट पर बसी हुई लङ्का काँप उठी।

समुद्र पर सेतु-बन्धन की, और वानरी सेना-सहित रामचन्द्र के

लंका में आ जाने की, बात सुनकर रावण क्रोध से अन्धा हो गया। उसने युद्ध की तैयारी की तुरन्त आज्ञा दी। सती की उसास से सुलगी हुई आग लपट फैलाकर लङ्कापुरी को निगलने दौड़ी।

सदा न्याय-मार्ग पर चलनेवाले रामचन्द्र राक्षसी धोखे को धर्म से दबाकर राक्षस-वंश के हृदय में कँपकँपी पैदा करने लगे। भयानक विपत्ति पड़ने से रावण की मति स्थिर नहीं थी, इससे वह छल-कपट करने लगा। विभीषण और उनकी साध्वी पत्नी सरमा-द्वारा, राक्षस के फैलाये हुए, कपट-जाल का भेद खुलने लगा। विधाता ने मानो कृपा कर गुप्त समाचार देने और मायाजाल मिटाने के लिए उक्त धर्मात्मा स्त्री-पुरुष को विपन्न सीता-राम के पास भेजा था।

घोर युद्ध आरम्भ हुआ। एक ओर दैव-प्रभाव है और दूसरी ओर राक्षसीय बल। दोनों दलों की बल-परीक्षा से रण-भूमि भयानक हो गई। इस संग्राम में और कुछ चाह नहीं है; सिर्फ़ एक दूसरे का ख़ून देखना चाहता है। इससे दोनों प्रबल शक्तियाँ आज साक्षात् महाकाल बनकर समर-भूमि में खड़ी हैं। सीता के विरह से इधर रामचन्द्र उदास हैं, उधर अभिमानी रावण अपने पक्ष के अगणित योद्धाओं के मारे जाने से शोकार्त्त है। इस भीषण युद्ध में पृथ्वी बारम्बार काँपने लगी। धनुष की टंकार से रणभूमि ने करालभाव धारण किया। आकाश-मार्ग से जानेवाले बाण मानो अट्टहास कर भय उत्पन्न करने लगे। अचानक रामचन्द्र ने दुष्ट रावण को मारने के लिए विश्व का विनाश करनेवाले अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र चढ़ाया।

रावण ने देखा कि मृत्यु निकट है। उसे जान पड़ा कि अस्त्र-मुख में यमराज आकर उसके लिए बाट देख रहे हैं, और धरती इसके पैरों के नीचे से खिसक गई है। स्वपक्ष और विपक्ष के अगणित वीरों से भरा हुआ युद्ध का मैदान उसे प्रेतपुरी जैसा मालूम होने लगा। अब्रों

की झंकार और चलाये हुए बाणों की ज्योति, उसे यमराज की भीषण हुंकार तथा हास्य के समान मालूम होने लगी। रामचन्द्र ने ब्रह्मास्त्र चलाकर उस दुष्ट को मार डाला।

युद्ध के अन्त में रामचन्द्र ने मृत रावण की अन्त्येष्टि करने के लिए विभीषण को आदेश दिया। ढेर का ढेर चन्दन इकट्ठा किया गया। विभीषण ने त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण के विशाल शरीर को घी और मधु से लपेटकर तथा कौशेय वस्त्र से ढककर चिता पर रक्खा और उसकी आत्मा की शान्ति मनाकर चिता में आग लगा दी। चिता दहक-दहककर जलने लगी। उसका धुआँ आकाश में छा गया। घी, धूप और चन्दन की सुगन्ध में सम्मिलित होकर रावण की आत्मा मानो धुएँ की सीढ़ी द्वारा सदा आनन्दमय स्वर्गलोक में चली गई*।

रामचन्द्र ने शोकार्त्त लंका की प्रजा में शृंखला और शान्ति स्थापित करने के लिए विभीषण को लङ्का के राज-सिंहासन पर तुरन्त बिठाया। सहस्रों अनाथ स्त्रियों का रोदन और पुत्र खोई हुई माताओं का विलाप पत्नी से बिछुड़े हुए राम को व्यथित करने लगा। रामचन्द्र के स्मरण-पट पर सीता की मोहिनी मूर्त्ति नये भाव में देख पड़ी। रामचन्द्र की आज्ञा से हनुमान् ने अशोक वन में जाकर जानकी को यह सब समाचार सुना दिया।

[९]

सीताजी इतने दिन तक जिसकी मृत्यु मना रही थीं, आज उसका मृत्यु-समाचार सुनकर आनन्द से अधीर हो गईं। उनकी आँखें आनन्दाश्रु से, ओस पड़े हुए कमल-दल की तरह, शोभा देने

* अध्यात्मविद्या के पण्डितों की राय है कि पार्थिव माया-बद्ध प्राणियों की मृत्यु के बाद भी उनकी आत्मा अपनी लाश के आसपास मँड़राती रहती है। अन्त्येष्टि के बाद आत्मा दूसरी जगह चली जाती है।

लगीं। भूख-प्यास और शोक से दुर्बल उनकी देह-लता आज लहलहा उठी। सीता ने कहा—वत्स हनुमन् ! मैं किन शब्दों में आज हृदय का आनन्द प्रकट करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मेरे पास ऐसा कोई लौकिक धन नहीं जिसे देकर मैं अपने जी का सन्तोष प्रकट करूँ।

हनुमान् उन पहरा देनेवाली राक्षसियों को मारने पर उद्यत हुए। यह देखकर करुणारूपिणी सीता देवी ने कहा—बेटा ! इनका कुछ अपराध नहीं। इन्होंने अपने मालिक की आज्ञा से मेरे साथ बुरा बर्ताव किया है, इसलिए इन्हें मत मारो।

सीता देवी का यह महत्त्व देखकर हनुमान् पुलकित हो गये। उन्होंने सोचा कि यह साधारण स्त्री की बात नहीं है। यह धरती पर कोई देवी है। दुर्दैव ने इसकी पवित्रता और मधुरता को और भी बढ़ा दिया है। हनुमान् सीता देवी के मातृभाव और देवीभाव पर भोले-भाले बालक की तरह घुल गये। उनको अपनी माता अञ्जना की स्नेह-युक्त दृष्टि याद आ गई। आज वे मातृभाव से, बालक की तरह, विमुग्ध हो गये।

बहुत देर बात-चीत करने के बाद हनुमान् ने बिदा माँगी। सीता देवी ने कहा—बेटा ! मैं इतने दिन से जिन पति-देवता की पवित्र-मूर्ति का मानस-नेत्र से ध्यान करती हूँ, जिनका विरह मुझे बहुत दुःख दे रहा है, जिन महा बलवान् की दुर्द्धर्ष शक्ति से राक्षस-वंश को उचित दण्ड मिला है, अपने जीवन-आकाश के उन एक-मात्र पूर्ण चन्द्र आर्यपुत्र को देखने के लिए मैं व्याकुल हो रही हूँ।

हनुमान् ने तुरन्त जाकर रामचन्द्र से सीता देवी की बात कही। रामचन्द्र के मन में सहसा एक दूसरा भाव उत्पन्न हुआ। कई तरह की चिन्ताएँ उनको व्याकुल करने लगीं। उन्होंने दुःखित हृदय से

विभीषण से कहा—मित्रवर ! आप शीघ्र मेरी प्राण-प्यारी सीता देवी को रानी के वेष में यहाँ ले आइए ।

विभीषण ने सीता देवी के पास जा हाथ जोड़कर निवेदन किया—"रघुकुल-कमलिनी सती ! रामचन्द्र ने आज्ञा दी है कि आप अयोध्या की महारानी के वेष में रामचन्द्र से चलकर मिलिए ।" सीता देवी ने कहा—"नहीं, मैं इसी वेष में आर्यपुत्र से मिलना चाहती हूँ । तीर्थ-क्षेत्र में सिंगार-पटार के लिए चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ।" तब विभीषण ने कहा—"माता ! पति की आज्ञा तोड़ना सती स्त्री के लिए कभी उचित नहीं । उन्होंने जैसा आदेश दिया है वैसा ही आपको करना चाहिए ।" सीताजी विभीषण की यह बात सुनकर बाल बाँधने को तत्पर हुईं ।

विभीषण-पत्नी सरमा ने सौभाग्य की अग्रदूती की भाँति, वहाँ पहुँचकर तरह-तरह से सीता देवी का सिंगार किया । लङ्का राज-भण्डार के क़ीमती कपड़ों और गहनों से सीता देवी की विरह से दुबली देह-लता आज ख़ूब सज-धज गई । सरमा ने सीताजी का सिंगार करके अन्त में माँग में सेंदुर दिया । वह, गोधूलि-ललाट में सन्ध्या समय के सूर्य की तरह, शोभा देने लगा । सरमा आज विरहिणी को, प्रेमोन्मादिनी के रूप में देखने के लिए, अनेक उपायों से सजाने लगी । सरमा एक बार कोई गहना एक तरह पहनाकर देखती कि अच्छा लगता है कि नहीं । उसमें ज़रा भी कसर जान पड़ने पर उसे निकालकर वह और तरह से पहनाती । सब ठीक-ठाक हो जाने पर सीता देवी पति-दर्शन को चलीं मानो पर्वत से निकली हुई नदी सारी बाधाओं को हटाकर सागर को चली है ।

दस महीने बाद, सीता देवी का प्रीति से प्रफुल्लित मुख-कमल देख, रामचन्द्र ने सुध-बुध भूलकर कहा—आज मेरा सब परिश्रम सार्थक

हुआ। जिस आशा को हृदय में रखकर मैं इस विषम समुद्र में उतरा था आज मेरी वह आशा सफल हुई। आज मेरा युद्ध-श्रम, लक्ष्मण का ऐसा त्याग-स्वीकार और शक्ति-पीड़ा, प्राणाधिक हनुमान् का भयानक समुद्र-लंघन, प्रेममूर्त्ति सुग्रीव और धर्मात्मा विभीषण तथा और दूसरे वानर सैनिकों की जीतोड़ चेष्टा सफल हुई। सिद्धि जैसे साधना का कष्ट भुला देती है वैसेही आज मेरी सदा आनन्द-दायिनी सीता देवी ने सब क्लेश दूर कर दिया।

रामचन्द्र के मुँह से निकले हुए अमृत-वचन सुनकर सीताजी सब दुःख भूल गईं। उनका मुख-कमल सौभाग्य की अपूर्व किरण से खिल गया। आनन्दाश्रु से उनके मृग-समान दोनों नेत्र, ओस से भीगे कमल की तरह, अपूर्व शोभा देने लगे।

इस दृश्यमान जगत् में भविष्यत् की दुर्गम अज्ञात मूर्त्ति के साथ मनुष्य की आशा और आकांक्षा सदा झगड़ती रहती है। कहीं आशा और आकांक्षा ने भविष्यत् को पहचान लिया है और कहीं भविष्यत्, आशा और आकांक्षा के कल्पित चित्र की दिल्लगी उड़ाता है। हम लोग यहाँ पर जिस बात की कल्पना भी नहीं कर सके थे वही बात हुई। विरह से व्याकुल साध्वी के सतीत्व के प्रभाव से हम लोगों ने मिलन-सुख की जो आशा की थी उसके बदले भीषण भविष्यत् ने काली रोशनाई से न जाने कैसी भयानक बात लिख रक्खी थी!

रामचन्द्र सीता के मुँह की ओर देखकर सब दुःख भूल गये। उनके हृदय में प्रेम-वीणा बज उठी। वह इतने दिन से विरह के टूटे तार पर प्रेम की जो साधना करते थे वह साधना आज पूरी हुई। उस वीणा की मधुर तान से उनका हृदय उछल पड़ा। सहसा उनके इस सुख में बाधा पड़ी। उनकी उस साधना ने अचानक विसर्जन

का विषाद-सुर पकड़ा। रामचन्द्र के मन में लोक-निन्दा की आशङ्का खड़ी हुई।

हाय री लोकनिन्दा ! जो पति-सुहागिनी जी-जान से पति के मुख-कमल का ध्यान करती आई हैं, जिन्होंने राक्षस-पुरी में घटा से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति अपनी महिमा को स्थिर रक्खा है, जिन्होंने हताशा से पीड़ित हृदय को सतीत्व की शोभा के अपूर्व गौरव-किरीट से शोभित किया है, और जो भविष्यत् में सतीत्व और मातृत्व के आदर्शस्वरूप बनी रहेंगी उन पर भी तू अपने अन्धकारमय राज्य की छाया डालती है।

सहसा रामचन्द्र का हृदय लोकनिन्दा से हिचक गया। उन्होंने सोचा, मैं जानता हूँ कि सीता सतीत्व की अत्युज्ज्वल मूर्त्ति हैं, वे महिमा की बिना सूँघी हुई कुसुम-माला और प्रेम की अटूट पीयूष-धारा हैं; किन्तु मैं राजा हूँ, मेरा हृदय प्रजारञ्जन करने के लिए बाध्य है, मुझे तनिकसी भी स्वतन्त्रता नहीं। साधारण प्रजा का जी यहाँ सत्य को नहीं समझ सकेगा। यद्यपि सीता देवी को ग्रहण करने पर मैं धर्म से नहीं गिरूँगा बल्कि मेरा हृदय सती का साथ मिलने से और भी अधिक तृप्त होगा; किन्तु प्रजा इसमें न जाने कितना अनर्थ सोचेगी।

यह सोचकर रामचन्द्र ने सीता देवी से कहा—मैं पवित्र इक्ष्वाकु-वंश की मर्यादा बनाये रखने के लिए इस महायुद्ध में प्रवृत्त हुआ था। जो मनुष्य, अपमानित होकर, अपमान का बदला नहीं लेता वह कापुरुष है; उस अभागे से वंश को कलङ्क लगता है। मैंने इसी आशङ्का से दुष्ट रावण को निर्वंश करके तुम्हारा उद्धार कर भुवन-विख्यात रघु-वंश का सम्मान बढ़ाया है। जानकी ! तुम मुझे प्राण से भी प्यारी हो किन्तु, नीति की मर्यादा तोड़कर, मैं तुमको ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। मनुष्य इस पृथ्वी पर अपने कर्म का फल भोगते हैं। तुम अपने

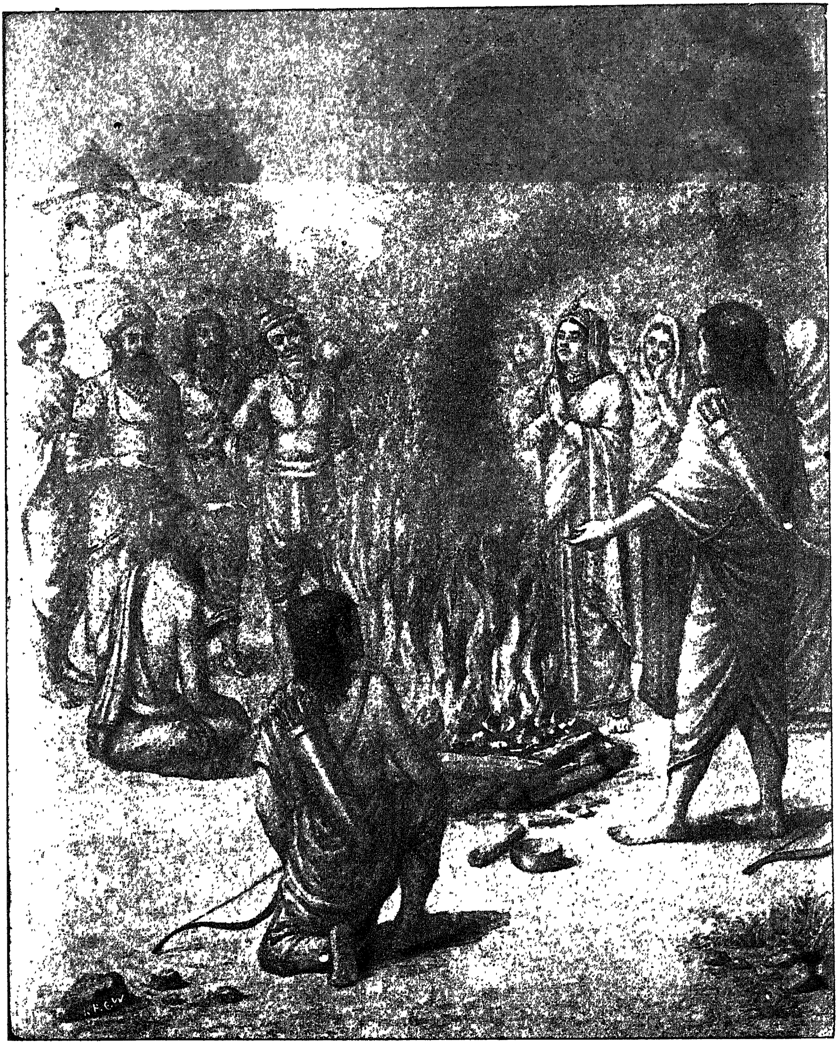
कर्म का फल भोगो। विषयी रावण तुमको बुरी दृष्टि से देखता था और उस पापी ने तुम्हारे शरीर को स्पर्श किया था इसलिए मैं तुमको ग्रहण नहीं कर सकता। मेरे इस रण-श्रम और वैर-साधन को केवल अपने पवित्र वंश की गौरव-वृद्धि के लिए समझना। देवी! यह विशाल पृथिवी अनेक प्राणियों को अपनी गोद में लेकर अन्न-जल देती है, तुम भी जहाँ जी चाहे वहाँ जाकर स्वाधीन भाव से रहो। अथवा—'

रामचन्द्र के मुँह से और बात नहीं निकली। वे हृदय के हाहाकार को दबाकर ज्वालामुखी पहाड़ की तरह बार-बार लम्बी साँस लेने लगे। पास में बैठी हुई बन्दर-सेना रामचन्द्र के मुँह से असम्भव बात सुनकर व्यथित हुई। पतिव्रताओं की गौरव-पताका-स्वरूप सीता देवी स्वामी के मुँह से ऐसी अनार्योचित बात सुनकर मर सी गईं; मानो पृथिवी पर उन्हें, मुँह छिपाने को, कहीं स्थान ही नहीं रहा।

पहले ही कहा गया है कि सीता क्षत्रियाणी हैं। नीति की मर्यादा को रखकर, उन्होंने वनवास जाने को तैयार स्वामी के साथ चलने के लिए जो-जो युक्तियाँ दिखाई थीं उनका वर्णन करते हुए हमने सीता देवी की एक गौरवमयी मूर्त्ति देखी है। यहाँ फिर उन्हीं सीता देवी की, अपने पक्ष-समर्थन में चतुर, उज्ज्वल मूर्ति देखेंगे।

तेजस्विनी सीता देवी ने अपने आँसू पोंछकर अभिमान-पूर्वक दृढ़ स्वर से कहा—आर्यपुत्र! आप, साधारण मनुष्य की भाँति, यह क्या कह रहे हैं? जान पड़ता है कि लड़ाई की हैरानी से आपका चित्त ठिकाने नहीं है; नहीं तो इक्ष्वाकु-वंश की गौरव-रक्षा करने के लिए निरपराधिनी धर्म-पत्नी को छोड़ने का इरादा क्यों करते? जिस अनन्य-शरणा ने एक-चित्त से पति-देवता के पवित्र चरणों का ध्यान करते हुए दिन बिताये हैं उसको बिना अपराध त्यागकर आप वंश का गौरव बढ़ाया चाहते हैं? युद्ध-क्षेत्र में भ्रान्त-बुद्धि हतभाग्यों का

जीवन-प्रदीप बुझाकर, विजय-पताका को फहराते हुए, निरपराध स्त्री को निकाल देने का दण्ड ही क्या मनुष्यत्व या अपमान का बदला है? आर्य्यपुत्र! आप मुझे कहते हैं कि "तुम मुझे प्राण से भी प्यारी हो!" किन्तु जो प्राण से भी प्यारी हो उसके साथ क्या ऐसा सलूक ही उसके योग्य आदर है? नीति की जो बातें आपने कहीं वे आपके जैसे स्थिर-बुद्धि मनुष्य के योग्य कभी नहीं। जो मनुष्य को सत्पथ पर चलाती है वही अगर नीति है तो आप पति-प्राणाधारा धर्म-पत्नी को छोड़कर नीति की मर्यादा कैसे रक्खेंगे—यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे रावण ने बुरी दृष्टि से देखा था और उस पापात्मा ने मुझे छू भी लिया था, किन्तु इसमें मेरा क्या अपराध है? राहु के ग्रास से छूटने पर सूर्यदेव की वन्दना करने के लिए क्या लाखों-करोड़ों हाथ नहीं उठते? या सर्प से छुआ हुआ वन-फूल क्या देवता के चरणों पर चढ़ने के योग्य नहीं होता? आर्य्य! मैं साधारण स्त्री हूँ अपना पक्ष समर्थन करने की मुझ में शक्ति नहीं है। आपने मुझे जो कुछ सिखाया है, उससे मैं यही जानती हूँ कि मेरा मन-रूपी भौंरा आपके चरण-कमल का रस पीने को लालायित है। हृदय आपका सदा भक्त है। दुरात्मा के बाहुबल में बाधा देने के लिए भला कोमल-स्वभाववाली अबला में शक्ति कहाँ? किन्तु अपने हृदय पर तो मेरा पूरा अधिकार है, वह मेरे कहने में है। पापी की क्या मजाल थी कि उस पवित्र हृदय को स्पर्श करता? आर्य्यपुत्र! विवाह के दिन की बात याद करो; जिस दिन आप धनुष तोड़कर उपस्थित जनता की उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि में एक अपूर्व जगत् के नवीन देवता से जान पड़े थे, जिस दिन प्रथम मिलन के अवसर पर प्रेम से हम दोनों अपने को भूल गये थे, उस समय की बात को याद करो। आप उस हृदय पर व्यर्थ सन्देह क्यों करते हैं? उस हृदय पर अपवित्रता



मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नसंगे यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी ॥—पृ० ४३

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

की स्याही भूल से भी नहीं लगी है। वह हृदय-देवता का पुण्य-पीठ है; वह असुर का क्रीड़ा-कानन नहीं हो सकता।

यह कहकर सीता ने रामचन्द्र के मुख की ओर टकटकी लगाई। उन्होंने देखा कि इतने पर भी श्रीराम के हृदय से सन्देह दूर नहीं हुआ। तब उन्होंने गिड़गिड़ाकर लक्ष्मण से कहा—देवर लक्ष्मण! जिसके लिए तुमने इतना कष्ट सहा है, उस चिर-दुःखिनी के लिए थोड़ासा कष्ट और सहो। जब स्वामी इस शरीर से घृणा दिखा रहे हैं तब इस शरीर की आवश्यकता ही क्या है? लक्ष्मण! चिता बना दो। तुम लोगों के पवित्र मुँह को देखते-देखते मैं चिता पर चढ़कर इस घृणित शरीर को छोड़ दूँगी।

लक्ष्मण ने रोष-भरी दृष्टि से रामचन्द्र की ओर देखा। उन्होंने देखा कि वे नीचा सिर किये चुपचाप बैठे हैं। सीता देवी की उस बात में रामचन्द्र की असम्मति न देखकर लक्ष्मण चिता बनाने की तैयारी करने लगे।

तुरन्त चिता तैयार हो गई। प्यारे के विरह से व्याकुल जानकी, समय पलटने पर, दुर्बल देह-लता को अनेक प्रकार के आभूषणों से सजाकर पति के पास आई थीं। उन्होंने उसी वेष में आँखें नीची किये हुए रामचन्द्र को प्रणाम करके, प्रदक्षिणा के अन्त में, अग्नि-कुण्ड के पास जाकर और हाथ जोड़कर निवेदन किया—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नसंगे यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी॥

इतनी देर तक रामचन्द्र चुपचाप बैठे थे। उन्होंने देखा कि आँखों के सामने ही सीता की देह-लता ग़ायब हो गई। डबडबाई हुई आँखों से रामचन्द्र ने विलाप करते-करते क्रोध से धनुष पर बाण चढ़ाकर

कहा—भगवन् अग्निदेव ! तुम मेरी सती जानकी को लौटा दो। तुम समझ लो कि सीता बिना राम का अस्तित्व नहीं है। मैंने बिना सोचे-विचारे प्यारी को कटुवचन कहा है किन्तु मेरी प्यारी सतियों में आदर्श है। मेरी प्राणप्यारी सीता को तुमने ले लिया है। अगर तुम उसको नहीं लौटाओगे तो यह देखो, तुम्हारा नाश करने के लिए मैं बाण चढ़ाता हूँ। शक्ति हो तो सँभालो।

रामचन्द्र की यह बात समाप्त होते न होते लाल वस्त्र-धारी अग्निदेव सीता देवी को गोद में लेकर चिता से निकले और तुरन्त रामचन्द्र के निकट जाकर बोले—रामचन्द्र! सीता को ग्रहण कीजिए। चिर-पूज्या माता के चरण-स्पर्श से मेरा ज्वालामय हृदय आज सुशीतल हुआ है। हे रामचन्द्र ! सीताजी पवित्रता की गङ्गाधारा हैं, ये सदा पवित्र हैं। इनके विषय में सन्देह न कीजिए।

एक-एक करके, सब देवताओं ने आकर रामचन्द्र से सीता के सतीत्व की बात कही।

रामचन्द्र ने उपस्थित अग्नि आदि देवताओं से कहा—हे देवताओ ! मैं जानता हूँ कि सीता देवी आदर्श-चरित्रवाली हैं; गङ्गाजल में अपवित्रता रह सकती है, और सूर्य-किरणों में भी मलिनता हो सकती है किन्तु सीता देवी में अपवित्रता का होना बिलकुल असम्भव है। मैंने केवल सीता देवी के सतीत्व की बात को जगद्-विख्यात करने ही के लिए यह परीक्षा की थी।

आशीर्वाद देकर देवता लोग स्वर्ग को चले गये।

रामचन्द्र ने तुरंत लंका की राजलक्ष्मी विभीषण को सौंपकर सुग्रीव, लक्ष्मण, विभीषण और सीता-सहित पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या की ओर यात्रा की।

[१०]

अयोध्या की राजलक्ष्मी रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठने से और चमक उठी—प्रजा सब दुःखों को भूल गई।

रामचन्द्र सीता-सहित विश्रामागार में सुखदायक बातें करके दिन बिताने लगे। वनवास के क्लेश के बाद यद्यपि अयोध्या के राजपाट ने उनके जीवन को सब तरह से मुग्ध कर लिया तथापि सीता देवी शीतल छायावाले तपोवन के माधुर्य को और मुनि-कन्याओं के उस पवित्र संगसुख को भूल नहीं सकीं। इससे सीताजी ने आदर से रामचन्द्र के निकट अपने जी का अभिलाष प्रकट किया।

उस समय सीताजी के पाँच महीने का गर्भ था। रामचन्द्र ने सीता देवी की बात से सन्तुष्ट होकर कहा—"जल्द इसका बन्दोबस्त करायें देता हूँ।" सीता देवी ने प्रसन्न-चित्त से कहा—"आर्यपुत्र! आपका स्नेह अटूट है। मैं नहीं समझती थी कि आप इस अवस्था में भी मेरी इस बात को मान लेंगे।" किन्तु यह वासना ही सीता के लिए काल-स्वरूप हुई। विषम भविष्यत् ने तसल्ली के बहाने उनके सर्वनाश का रास्ता खोल दिया।

बहुतेरी बातें होने पर सीताजी सो गईं। इतने में रामचन्द्र ने अपने विश्वासी दूत दुर्मुख से सुना कि अयोध्या की प्रजा, रावण के घर में रहने के कारण, सीताजी पर कलङ्क लगाती है।

आदर्श राजा रामचन्द्र के हृदय का भाव बदल गया। जो सीता उनको प्राण से प्यारी थीं, जो सतीत्व के प्रभाव से देवताओं की भी पूजा पाने योग्य थीं, जो अयोध्या की राज-लक्ष्मी थीं, और जो उनके जीवन की सुखशान्ति थीं, उन्होंने उनको भी प्रजा-रञ्जन के लिए त्याग देने का संकल्प किया। उन्होंने सोचा कि सीताजी ने तपोवन देखने

का जो अभिलाष प्रकट किया है उसी के बहाने उनको महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ देना चाहिए।

रामचन्द्र ने भाइयों को बुलाकर सीता के सम्बन्ध में अयोध्या की प्रजा की राय सुनाते हुए अपना विचार प्रकट किया कि मैं सीताजी को क्या करना चाहता हूँ। लक्ष्मण ने उनको बहुत समझाया; किन्तु आदर्श राजा रामचन्द्र के चित्त को ढाढ़स नहीं हुआ। प्रजा-रञ्जन के लिए उन्होंने अपना सुख-चैन त्यागकर वाल्मीकि के आश्रम में सीता देवी के छोड़ आने की आज्ञा लक्ष्मण को दी। भ्रातृ-भक्ति-परायण लक्ष्मण ने लाचार होकर रामचन्द्र के इस हुक्म की तामील करना स्वीकार किया।

तुरन्त सीता देवी के तपोवन जाने की तैयारी हुई। सीताजी मुनि-कन्याओं के लिए अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण आदि लेकर प्रसन्न-चित्त से सुमन्त के रथ पर चढ़कर लक्ष्मण-सहित वन को चलीं। उनके जी में तो प्रसन्नता छा रही थी किन्तु दुर्भाग्य विकट हँसी हँसकर उनका उपहास कर रहा था।

धीरे-धीरे रथ गङ्गा-तट पर पहुँचा। गङ्गा-दर्शन कर लक्ष्मण का शोक-प्रवाह उछल पड़ा। यह देखकर सीता ने आश्चर्य से पूछा—"वत्स लक्ष्मण! तुम्हारे मुँह पर एकाएक इस प्रकार उदासी क्यों छा गई?" लक्ष्मण ने, किसी तरह बात छिपाकर, शीघ्र पार उतरने का बन्दोबस्त किया।

अचानक ही सीताजी का दायाँ नेत्र फड़क उठा। चारों ओर शून्य मालूम होने लगा। ऐसा जान पड़ने लगा मानो रामचन्द्र से सदा के लिए विछोह हो गया। वे इसी सोच-विचार में पार उतरीं। गङ्गा-पार उतरने के साथ ही साथ सीताजी आनन्द-समुद्र के भी उस पार जा उतरीं।

नाव से उतरकर जब सीताजी तपोवन देखने को जाने की जल्दी करने लगीं तब लक्ष्मण ने कहा—"भाभीजी! ज़रा ठहरिए तो, मुझे कुछ कहना है।" सीताजी ने लक्ष्मण की कातरता देखकर कौतुक से कहा—जल्दी कहो न, क्या कहना है?

लक्ष्मण से वह मर्मभेदी बात कहते नहीं बनती और इधर सीताजी भी घोर सन्देह में पड़ रही हैं। उन्हें एक पल एक युग के समान बीतने लगा। सीता ने कहा—"वत्स! मैं समझ गई। मेरा भाग्य फूट गया है, नहीं तो तुम कहते क्यों नहीं?" सीता की चञ्चलता और आग्रह देखकर लक्ष्मण ने कहा—"देवी! मेरा दोष मत मानिएगा—हाय रे दैव! ऐसे ही असाध्य साधन के लिए तुमने अभी तक मुझे जीवित रक्खा है!" बड़े कष्ट से सिर नीचे किये हुए वे बोले—देवी! आप बहुत दिनों तक रावण के घर रह चुकी हैं। इससे अयोध्या की प्रजा आप के चरित्र पर कलङ्क लगाती है। आर्य्य रामचन्द्र ने यह जानकर आपको जन्म भर के लिए त्याग दिया है; और मुझे आज्ञा दी है कि तपोवन-दर्शन के बहाने ले जाकर इन्हें वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। देवी! यह वाल्मीकि का तपोवन है।

सुनते ही सीताजी मूर्च्छित हो गईं। लक्ष्मण बड़े प्रयत्न से सीताजी की मूर्छा छुड़ाने लगे। बड़ी देर के बाद सीताजी ने होश में आकर कहा—लक्ष्मण! अफ़सोस मत करना। इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं। दोष सब मेरे भाग्य का है। वत्स! भगवान् ने दुःख भोगने के लिए ही मुझे जन्म दिया है, नहीं तो जगत्-प्रसिद्ध रघुवंश की कुलवधू होकर मुझे वनवास क्यों करना पड़ता? मनुष्य इसी पृथ्वी पर कर्म्म-फल भोगता है। जान पड़ता है, मैंने पूर्व-जन्म में किसी प्रेम-मयी साध्वी को पति की गोद से छुड़ाया था। मुझे इस पृथ्वी पर उसी पाप का दण्ड भोगना पड़ा है। वत्स! मनुष्य के ऊपर अच्छा-बुरा

जो बीतता है उसके बनानेवाले भगवान् हैं। मेरे भाग्य में जो हुआ वह उन्हीं का विचित्र विधान है। इसलिए वत्स ! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा स्नेह हो तो तुम शोक त्यागो। लक्ष्मण ! मैं वनवास में नई नहीं हूँ। मैं तो आर्य्य रामचन्द्र के साथ बहुत दिन वन में रह चुकी हूँ। स्वामी के साथ वनवास में अयोध्या के राज-सुख को और माया के ऐश्वर्य को मैं भूल ही गई थी। मुझे अपने लिए कोई चिन्ता नहीं है, मैं केवल यही सोच रही हूँ कि अगर वनवासी मुनिगण मुझसे वनवास का कारण पूछेंगे तो मैं क्या बताऊँगी। 'आर्य्यपुत्र ! तुमने मुझे निरपराध जानकर भी केवल प्रजा-रञ्जन के लिए विपद के इस दुस्तर समुद्र में डाल दिया है। भगवान् तुम्हारी इस आदर्श प्रजा-प्रियता को पूरी करें।' मेरी मानसिक व्यथा के लिए कोई ढाढ़स नहीं है। इक्ष्वाकु-वंश की सन्तान मेरे गर्भ में है, इससे मैं आत्म-हत्या करके उसका प्राण लेने को तैयार नहीं हूँ।

सीता की यह विषाद-मयी मूर्त्ति और आँसुओं की धारा देखकर लक्ष्मण ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। सीता ने स्नेह-पूर्वक अञ्चल से लक्ष्मण के आँसू पोंछकर कहा—लक्ष्मण ! शान्त हो। तुम राजा की आज्ञा पालन करने के कारण अपराधी नहीं; मैं आर्य्यपुत्र के हृदय का हाल जानती हूँ। मैं अपराधिनी हूँ, यह समझकर उन्होंने मेरा त्याग नहीं किया है; किन्तु आदर्श प्रजा-प्रिय राजा प्रजा-रञ्जन के कारण ऐसा करने को लाचार हुए हैं। मैं जानती हूँ कि उनके हृदय में मेरे ऊपर बड़ा प्रेम है और मुझे त्याग कर वे भी मेरी तरह शोक-सागर में डूब गये हैं। लक्ष्मण ! आर्यपुत्र आदर्श राजा, आदर्श पति, अदर्श मित्र और आदर्श देवता हैं। उनको पाप नहीं लग सकता। लक्ष्मण ! उनके पास शीघ्र लौट जाओ। तुम सदा उनकी सेवा करना और उनके पास रहकर उनको ढाढ़स देना। वत्स ! देखना, वे अकेले पड़कर

कभी दुःखी न हों। तुमसे एक बात और कह देती हूँ। तुम आर्य्य-पुत्र के चरणों में निवेदन करना कि उनके त्याग करने से मैं दुःखित नहीं हूँ। जिस राज-धर्म के लिए उन्होंने मुझे छोड़ दिया है, उनका वह राज-धर्म सफल हो। आज से उनका मङ्गल मनाना ही मेरी नई साधना का मूल उद्देश होगा। लक्ष्मण! शोक छोड़ो; मेरे प्रति तुम्हारा मातृवत् व्यवहार मुझे सदा याद रहेगा। वत्स! आर्य्यपुत्र से कहना कि वह मुझे छोड़कर अब पछतावें नहीं। मैं दूसरे जन्म में भी उन्हीं को स्वामी चाहूँगी। गुणवान् लक्ष्मण! अगर मेरा फिर स्त्री का जन्म हो तो तुम्हारे ही जैसा देवर पाऊँ। वत्स! जाओ, अब देर मत करो। आर्य रामचन्द्र तुम्हारे लौटने की बाट देख रहे होंगे। जाओ, सासुओं के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करना। वत्स! और एक बात है कि मेरी प्यारी बहनों को कुछ दुःख न होने पावे। उनका हृदय मेरे विरह से बहुत व्यथित है। मेरी शपथ है, तुम उनका मन रखने का सदा ख़याल रखना। और आर्य्यपुत्र के चरणों में मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करके कहना कि वे मेरे लिए विलाप करके अपने कर्त्तव्य से न चूकें। और यह भी कह देना कि पत्नी-भाव से मुझे त्याग देने पर भी साधारण दीन प्रजा के भाव से ही मेरा स्मरण करें।

लक्ष्मण प्रणाम और प्रदक्षिणा करके विदा हुए। जहाँ तक नज़र गई वहाँ तक सीता लक्ष्मण की ओर ताकती रहीं। अन्त में लक्ष्मण जब गङ्गापार उतर गये तब सीताजी उनको न देखकर सिर धुनने और रोने लगीं। गङ्गाजल से शीतल वायु सीता देवी के पसीने और आँसुओं को पोछने का प्रयास करता था किन्तु हृदय की आग उस जल-धारा को और बढ़ाती ही जाती थी। गङ्गा के किनारे खड़े होकर सीता ने सोचा—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।
प्राणैरपि प्रियस्तस्माद् भर्त्तुः कार्य्यं विशेषतः ॥

पति ही स्त्रियों के लिए देवता, मित्र और गुरु है। इसलिए पति का कार्य प्राण से भी प्रिय है। मैं जी-जान से पति का कार्य करूँगी, पति को प्यारा लगनेवाला काम करना ही मेरे जीवन-रूपी यज्ञ का मूल उद्देश है।

सीता मन को जितना ही समझाती हैं मानो वह उतना ही उमड़ आता है। उस देवता-समान स्वामी की गोद से अलग होने पर सती को सुख कहाँ ? स्वामी के स्नेह ने उनको व्याकुल कर दिया। सीता रो-रोकर उस जंगल को कँपाने लगीं।

रोने का शब्द सुनकर महामुनि वाल्मीकि वहाँ आ गये। उन्होंने स्नेह-भरे कण्ठ से कहा—बेटी जानकी! तुम शोक मत करो। मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो। तुम्हारे पवित्र चरणों की धूल पड़ने से आज मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया। सती! विलाप छोड़ो; स्वामी के निकट तुम अविश्वासिनी नहीं हो, मैं दिव्य दृष्टि से देखता हूँ कि रामचन्द्र तुमको परित्याग कर उदास मन से दिन काट रहे हैं। देवी! अयोध्या की राजलक्ष्मी तुम्हारे बिना मलिन हो गई है। बेटी! तुम मुझे पिता-समान जानना। मुझसे तुम्हें किसी बात का कष्ट नहीं होगा। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे महीने पूरे हो चले हैं। यहाँ तुम्हें कुछ कष्ट नहीं होगा।

शोकाकुल सीता देवी का मुँह देखकर वाल्मीकि बहुत दुःखित होते और उनको अपने होमकुण्ड के पास बुलाकर शास्त्र की कितनी ही बातें सुनाया करते। वे सीता देवी के हताश हृदय को यह कहकर आनन्दित करते कि तुम्हारे पेट में दो तेजस्वी बालक हैं।

[११]

सीता देवी ने यथासमय एक साथ दो पुत्रों को उत्पन्न किया। महर्षि वाल्मीकि ने जातकर्म करके उनका लव और कुश नाम रक्खा।

सीताजी उन कुसुम-समान कोमल दो बेटों के मुख को देखकर सब दुख भूल गईं। वाल्मीकि का वह शान्त स्निग्ध तपोवन इन लीला-चञ्चल दो बालकों के हास्य से गूँजने लगा। राजवधू सीता तपस्विनी के वेश में दोनों राजकुमारों का पालन करने लगीं।

महर्षि वाल्मीकि ने रामचन्द्र के महान् चरित के आधार पर रामायण नाम का एक महाकाव्य बनाया था। जब लव-कुश कुछ बड़े हुए तब महर्षि ने उनको रामायण गाना सिखाया। दोनों कुमार वीणा के सुर में सुर मिलाकर रामायण गाने लगे। सीताजी दोनों पुत्रों के, वीणा को लजानेवाले, सुर में वाल्मीकि की बनाई हुई रचना को सुनकर पुलकित होतीं और अपने घर के इतिहास तथा इक्ष्वाकु-वंश की गौरव-कीर्त्ति को दोनों कुमारों के मुख से सुनकर आँसुओं की धारा बहातीं।

इधर रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ की तैयारी की। उस यज्ञ में शिष्यों-सहित उपस्थित होने का निमंत्रण पाकर महर्षि ने सीता देवी से कहा—"बेटी! रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ में मुझे न्यौता दिया है। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे दोनों लड़कों को वहाँ ले जाऊँ।" सीताजी ने कहा—इसके लिए मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है? आप ख़ुशी से उनको ले जा सकते हैं।

सीताजी रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ के समाचार से, एक बात सोचकर, विशेष चिन्तित हुईं। यह उनकी नई चिन्ता थी। सौभाग्य-वती को अश्वमेध यज्ञ का समाचार पाकर बड़ा खेद हुआ। मायके में स्वामी की सेवा के विषय में शास्त्र की कितनी ही बातें सुनने से वे जानती थीं कि—"सस्त्रीको धर्ममाचरेत्"—धर्मकार्य स्त्री के साथ

किया जाता है। तब अश्वमेध यज्ञ में रामचन्द्र की बग़ल में सहधर्मिणी का कार्य कौन करेगा? उन्होंने फिर विवाह तो नहीं कर लिया! इसी सन्देह से वे रामचन्द्र के स्नेह की त्रुटि-कल्पना करके सोच में पड़ी हुई थीं कि इतने में लव और कुश ने हँसते-हँसते उनके पास आकर कहा—मा! महर्षि कहते हैं कि आज वे हम लोगों को, रामायण के नायक, राजा रामचन्द्र का अश्वमेध यज्ञ दिखाने ले जायँगे। मा! हम लोगों ने रामायण में राजा रामचन्द्र के कितने ही सद्गुणों का परिचय पाया है। हमने नहीं सुना कि ऐसा आदर्श राजा और कभी किसी देश में हुआ हो। बात ही बात में महर्षि ने पत्र लानेवाले दूत से पूछा—'अश्वमेध यज्ञ तो स्त्री के साथ किया जाता है; परन्तु राजा रामचन्द्र ने प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए अपनी साध्वी पत्नी को त्याग दिया है। अब क्या यज्ञ सम्पन्न करने के लिए उन्होंने दूसरा विवाह किया है?' दूत ने कहा—'वशिष्ठ आदि ने उनसे विवाह करने के लिए बहुत कुछ कहा-सुना किन्तु वे किसी प्रकार राज़ी नहीं हुए; वे अपनी साध्वी पत्नी की एक सोने की मूर्त्ति बनवाकर यज्ञ करेंगे।' मा! हम लोग रामचन्द्र का हाल पढ़कर विस्मित हुए हैं। अब यह समाचार पाकर हम लोग और भी अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं। मा! आज्ञा दो कि हम लोग महर्षि के साथ वहाँ जाकर उस नर-देवता के दर्शन से कृतार्थ हों।

सीता ने हर्ष से आज्ञा दे दी। विकट खेद से उनका कलेजा जलता था। दोनों कुमारों की ज़बानी, यज्ञ-सम्पादन के लिए, सोने की सीता-मूर्त्ति बनाने की बात सुनकर उनको अपने सौभाग्य का गर्व हुआ। उनकी आँखों में आँसू दीख पड़े।

वाल्मीकि ने लव और कुश-सहित यज्ञ-भूमि में उपस्थित होकर दोनों शिष्यों को आदेश दिया कि तुम लोग घूम-घूमकर वीणा पर

रामायण गाना। अगर राजा कौतूहल में आकर तुम लोगों को बुलावें तो विनय-पूर्वक जाना; परन्तु पुरस्कार का लोभ मत करना। अगर राजा कुछ पुरस्कार दें तो कहना कि महाराज! हम लोग ऋषि-कुमार हैं, हम लोगों को धन से कुछ काम नहीं। परिचय चाहें तो कहना कि हम लोग वाल्मीकि के शिष्य हैं।

गुरु से यह उपदेश पाकर दोनों कुमार उपस्थित राजाओं के तम्बुओं के सामने वीणा बजा-बजाकर और मन लगाकर रामायण गाने लगे। उपस्थित राजा लोग कुमारों के शरीर में राज-लक्षण देखकर विस्मित हुए।

धीरे-धीरे यह समाचार राजा रामचन्द्र के कानों तक पहुँचा। उन्होंने एक ब्राह्मण के द्वारा उन दोनों को बुलाया। दोनों कुमार राजा का बुलाना सुनकर विनय-सहित सभा में गये और चित्त लगा कर वीणा के सुर में सुर मिलाकर सीता-राम का प्रेम-विषयक अंश गाने लगे। उसे सुनकर राजा रामचन्द्र का शोक-प्रवाह उमड़ आया। इधर परदे से राजमाता कौशल्या देवी दोनों कुमारों का रूप-लावण्य देख कर उल्लास-भाव से पुकार उठीं—लक्ष्मण! ये दोनों बालक तो मेरे राम के वंशधर हैं। यह देखो, मेरे राम और सीता के सब अङ्ग-लक्षण इनके शरीर में दिखाई देते हैं, तुरन्त इनको यहाँ ले आओ।

राजमाता के आदेश से लक्ष्मण तुरन्त दोनों कुमारों को महल में ले गये।

कौशल्या ने, डबडबाई हुई आँखों से, दोनों कुमारों का परिचय पूछा तो उन्होंने विनय-पूर्वक कहा—"हम वाल्मीकि के शिष्य हैं।" राजमहल में जितनी स्त्रियाँ थीं वे सब बोल उठीं—अवश्य ही ये बालक सीता देवी के पेट से जनमे हुए हैं।

वाल्मीकि ने आकर सब परिचय दिया; तुरन्त ही सीताजी को फिर से ग्रहण करने का प्रस्ताव उठा। रामचन्द्र ने कहा—देव! आप तो सब जानते हैं, सीता को परित्याग करके मैं सुखी नहीं हूँ। केवल प्रजा के असन्तोष के कारण मैं सीता को त्याग कर मरा-सा हो रहा हूँ। अगर प्रजा को कोई एतराज़ न हो, तो मुझे सीता को फिर से ग्रहण करने में कुछ उज्र नहीं है।

शीघ्र ही इसके उपयुक्त प्रबन्ध हुआ। गेरुआ वस्त्र पहने हुए सीता देवी ने धीरे-धीरे सभा में प्रवेश करके सुना कि इस भरी सभा में फिर चरित्र की शुद्धता का प्रमाण देना होगा। यह सुनते ही उनका टूटा हुआ हृदय अस्थिर हो उठा। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—मा वसुन्धरे! अगर मैं मन, वचन और कर्म से पति-देवता के चरणों का ध्यान करती होऊँ तो तुम शीघ्र अपनी शान्तिमयी गोद में अपनी इस दुखिया बेटी को स्थान दो।

एकाएक सभा-भूमि दो खण्ड होकर फट गई। सबने देखा कि लोक-माता धरणी स्नेह के हाथ से सीता देवी को गोद में लेकर कमलासन पर बैठ गईं।

सब लोग चिल्ला उठे—सीता-राम की जय! धन्य आदर्श राजा! धन्य आदर्श सती!

दूसरा आख्यान

सावित्री

दूसरा आख्यान

सावित्री

[१]

उत्तर भारत के पंजाब प्रदेश में चन्द्रभागा और वितस्ता नामक नदियों के बीच का स्थान पहले समय में मद्र राज्य कहलाता था। उस राज्य में अश्वपति नाम के एक बड़े भक्त राजा थे। उनके सुशासन से सारी प्रजा बहुत सुखी थी। राजा अश्वपति जितेन्द्रियता, प्रजानुराग और दयालुता आदि अनेक गुणों से एक आदर्श राजा समझे जाते थे।

तब से बहुत दिन बीत गये हैं, सदा बहनेवाले कालस्रोत ने मद्र-देश की उस गौरव-कीर्ति को सदा के लिए धो बहाया है। मद्र-देश की वह गौरव-गाथा तो लुप्त हो गई, किन्तु मद्रराज अश्वपति की बेटी सावित्री देवी की पुण्य-कथा ने हिन्दू नर-नारियों के धर्ममय हृदय को सतीत्व के एक अपूर्व विजय-गर्व से सदा के लिए ऊँचा कर रक्खा है। हम, इस अध्याय में, उसी सती-शिरोमणि सावित्री देवी की जीवनी की आलोचना करेंगे।

मद्रराज के अपूर्व प्रजानुराग से राज्य में कहीं विद्रोह नहीं था, प्रजा निःशंक थी, धरती धन-धान्य से परिपूर्ण रहती थी और सर्वत्र सुख और शान्ति विराजती थी। मद्रराज्य उत्पात और उपद्रव से

बचा हुआ प्रेम का एक अपूर्व राज्य था, किन्तु वह सब विषयों में बढ़ा-चढ़ा होने पर भी एक बात में हीन था। इससे राजा-रानी दोनों सदा उदास रहते थे। यद्यपि वे प्रजा को पाकर सन्तान न होने के अभाव को भूल से गये थे, तथापि समय-समय पर एक गहरा दुःख उनके हृदय को बहुत दुखाया करता था।

इस प्रकार, राजा अश्वपति मन में एक गहरा दुःख दबाकर प्रजा-पालन करते थे। वे और उनकी साध्वी पत्नी, मालवी देवी, दोनों बीच-बीच में किसी हँसते-खेलते बालक का चमकता हुआ सुन्दर चेहरा देखकर मुग्ध हो जाते और रात को एक साथ बैठकर सन्तान न होने के दुःख का अनुभव किया करते।

प्रजा, उपस्थित राजागण, सभासद और ऋषि-मुनि, सभी देखते कि राजा के जी में एक घोर चिन्ता छाई हुई है। राजा अश्वपति प्रेम की छाया से मद्रराज्य को तो सुशीतल बनाये हुए हैं किन्तु वे स्वयं मन की भयंकर अग्नि में सदा जलते रहते हैं।

एक दिन सबेरे राजा अश्वपति नगर में घूमने निकले। अचानक एक फूल-से सुकुमार बालक को देखकर उनका चित्त विकल हो उठा। भोले-भाले बालक की मधुर मुसकान, अपूर्व सरलता और सबसे बढ़कर सदा सुन्दर अभेद ज्ञान की मधुरता ने उनको मोह लिया।

राजमहल में लौटकर उन्होंने रानी से इस विषय में बहुत कुछ बातचीत की। राजा ने कहा—"रानी! हमें किसी चीज़ की कमी नहीं; हमारी प्रजा में वैर-विरोध नहीं है, धरती धन-धान्य से भरपूर है, राज्य पर किसी शत्रु की लोभ-दृष्टि नहीं है, सर्वत्र सुख और शान्ति विराजती है; किन्तु हमारे राजमहल में निरानन्द-सा छाया हुआ है। जो स्थान सरल हृदय और अस्फुट वाक्य बोलनेवाले बालक की खिलखिलाहट से नहीं गूँजता, वह भयानक भूत के स्थान के समान

है। रानी! जीवन का प्रधान सुख बेटा-बेटी हैं। उनके न होने से कैसे गहरे दुःख में दिन कट रहे हैं, सो कह नहीं सकता। हृदय सदा अशान्ति की आग में जलता रहता है, राज-भोग में तृप्ति नहीं है, राज-काज में सुख नहीं है और शास्त्र के पाठ में चित्त नहीं लगता—चारों ओर अतृप्ति है। घोर अतृप्ति ने मेरे हृदय में घर-सा कर लिया है!" स्वामी के हृदय में गहरा दुःख देखकर सुशीला पत्नी खेद के महासागर में डूब गई।

उस दिन राजा बड़े ही दुःखित हृदय से राज-दरबार में गये। सभा में उपस्थित सभासद राजा के मुख पर चिन्ता की झलक देखकर उत्कण्ठा से देखने लगे कि वे क्या कहते हैं।

राजा ने सिंहासन पर बैठते ही कहा—सभासदो! मैं धीरे-धीरे बूढ़ा होता जाता हूँ; समय रहते कोई इन्तज़ाम न कर देने से यह सोने का राज्य शत्रु के हाथ में पड़कर चौपट हो जायगा। मैं निःसन्तान हूँ, इसलिए राज्य का अधिकारी किसको बनाऊँ—यह सोचकर व्याकुल हो रहा हूँ। हे त्रिकाल के जाननेवाले मुनियो! इस विषय में आप लोगों की क्या सलाह है?

राजा के इन खेद-भरे वचनों को सुनकर राज-दरबार पर निरानन्द के कारण उदासीनता छा गई। सभी लोग राजा के दुःख से दुखी हुए। मुनियों ने कहा—राजन्! आपके गौरव के सिंहासन पर जिस-तिस को बैठने की शक्ति नहीं है। अगर कोई इस सिंहासन को लोभ की दृष्टि से देखे तो निश्चय जानिएगा कि उसको, दीपक पर गिरते हुए पतंग की तरह, जलकर भस्म हो जाना पड़ेगा! महाराज हताश न हों; आपका बेटा ही इस महान् सिंहासन पर बैठकर आपकी प्रीति उपजावेगा और शङ्का मिटावेगा। हम लोगों की

इच्छा है कि आप सन्तान की कामना से तपस्या आरम्भ करें। विधाता की कृपा से आपके सन्तान होगी।

मुनियों की बात सुनकर राजा के हताश हृदय में आशा की स्वर्ण-किरण झलक गई। उन्होंने हर्ष से कहा—मुनिगण! बताइए, सन्तान की कामना से मैं किस देवता की उपासना करूँ? राज्य का मङ्गल, और वंश का गौरव बढ़ाने के लिए मैं कुच्छ्र साधना से भी मुँह न मोड़ूँगा।

मुनियों ने एक-स्वर से सावित्री देवी की उपासना करने को कहा।

राजा को मुनियों की बात पर बड़ा विश्वास था। इसलिए उन्होंने उस आदेश-वाक्य पर विश्वास प्रकट करके सभासदों को लक्ष्य करते हुए कहा—"तपस्या बड़ी कठिन चीज़ है, भीषण भविष्यत् के साथ युद्ध है। इसलिए वह संसार के शोर-ग़ुल में, ठीक-ठीक, नहीं हो सकती। मैं चाहता हूँ कि तपस्या करने के लिए वन को जाऊँ। आशा है, इस विषय में आप लोग सम्मति देंगे!" सभासदों ने कहा—हम लोग आपका आदेश मानकर चलेंगे। आप ख़ुशी से वन जाइए। हम लोग जी-जान से आपका आदेश पालने की प्रतिज्ञा करते हैं?

राजा तपस्या करने वन में जायँगे, यह सुनकर मद्र-देश की प्रजा राजा के वियोग का स्मरण करती हुई बहुत दुखी हुई। किन्तु उन लोगों का जो राजा के निःसन्तान होने से बहुत उदास था। इससे, यह सुनकर कि राजा की तपस्या का मुख्य कारण सन्तान पाना ही है और इसी लिए वे वन जाते हैं, प्रजा को ढाढ़स हुआ और सबने सान्त्वना के अञ्चल से आँसू पोंछकर राजा को बिदा किया।

[२]

वन में जाकर राजा अश्वपति ने गहरी तपस्या में मन लगाया।

अश्वपति की तपस्या देखकर देवताओं को शङ्का हुई।

अश्वपति की तपस्या से ब्रह्मा को सन्तुष्ट जान, सावित्री देवी ने वहाँ आकर उनसे कहा—ब्रह्मन् ! राजा अश्वपति सन्तान के लिए घोर तपस्या कर रहा है। वह मेरी कृपा चाहता है। मैं उस पर प्रसन्न हूँ, किन्तु देखती हूँ कि उसकी तपस्या का फल देना मेरी शक्ति से बाहर है। देव ! आप चराचर के भाग्य-विधाता हैं। अश्वपति को तपस्या का फल देने के लिए मुझे भाग्य-विधाता से लड़ना पड़ेगा। मुझमें शक्ति कहाँ कि ऐसा साहस करूँ।

सावित्री देवी की इस बात को सुनकर ब्रह्मा मुसकुराते हुए बोले—देवी ! मैं तुम्हारे मन का भाव समझ गया हूँ। तुम अश्वपति की कामना पूरी कर सकती हो।

यह सुनकर सावित्री देवी ने विस्मय से कहा—ब्रह्मन् ! ज़रा मर्त्यलोक में, तप से दुर्बल, राजर्षि के ललाट को तो देखिए। क्या आप नहीं देखते कि उनके भाग्य में निःसन्तान होना लिखा है ? तब आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

ब्रह्मा ने सावित्री देवी की बात सुनकर कहा—देवी ! इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझती हो ! इस दृश्यमान जगत् में सब कुछ कर्म-सूत्र पर अवलम्बित है। कर्म से ही बन्धन छूटता है, और कर्म से ही मनुष्य की गति बदलती है। असल में कर्म ही जगत् की प्रतिष्ठा है, मैं तो केवल निमित्त हूँ। अश्वपति की साधना ने उसके कर्म-फल का खण्डन कर दिया। उसकी यह साधना, उसके निःसन्तानपन को दूर करने में, समर्थ हुई है। वह तुम्हारे प्रसाद से सन्तान पा सकेगा। अश्वपति ने तुम्हारी उपासना की है और तुम उसकी उपासना से प्रसन्न भी हुई हो, इसलिए तुम उसको रूप-गुण-वाली एक कन्या दे सकती हो।

सावित्री देवी ने विस्मित होकर कहा—"यह क्या ? अश्वपति

अश्वपति की तपस्या से ब्रह्मा को सन्तुष्ट जान, सावित्री देवी ने वहाँ आकर उनसे कहा—ब्रह्मन्! राजा अश्वपति सन्तान के लिए घोर तपस्या कर रहा है। वह मेरी कृपा चाहता है। मैं उस पर प्रसन्न हूँ, किन्तु देखती हूँ कि उसकी तपस्या का फल देना मेरी शक्ति से बाहर है। देव! आप चराचर के भाग्य-विधाता हैं। अश्वपति को तपस्या का फल देने के लिए मुझे भाग्य-विधाता से लड़ना पड़ेगा? मुझमें शक्ति कहाँ कि ऐसा साहस करूँ।

सावित्री देवी की इस बात को सुनकर ब्रह्मा मुसकुराते हुए बोले—देवी! मैं तुम्हारे मन का भाव समझ गया हूँ। तुम अश्वपति की कामना पूरी कर सकती हो।

यह सुनकर सावित्री देवी ने विस्मय से कहा—ब्रह्मन्! ज़रा मृत्युलोक में, तप से दुर्बल, राजर्षि के ललाट को तो देखिए। क्या आप नहीं देखते कि उनके भाग्य में निःसन्तान होना लिखा है? तब आप ऐसा क्यों कहते हैं?

ब्रह्मा ने सावित्री देवी की बात सुनकर कहा—देवी! इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझती हो! इस दृश्यमान जगत् में सब कुछ कर्म-सूत्र पर अवलम्बित है। कर्म से ही वन्धन छूटता है, और कर्म से ही मनुष्य की गति बदलती है। असल में कर्म ही जगत् की प्रतिष्ठा है, मैं तो केवल निमित्त हूँ। अश्वपति की साधना ने उसके कर्म-फल का खण्डन कर दिया। उसकी यह साधना, उसके निःसन्तानपन को दूर करने में, समर्थ हुई है। वह तुम्हारे प्रसाद से सन्तान पा सकेगा। अश्वपति ने तुम्हारी उपासना की है और तुम उसकी उपासना से प्रसन्न भी हुई हो, इसलिए तुम उसको रूप-गुण-वाली एक कन्या दे सकती हो।

सावित्री देवी ने विस्मित होकर कहा—"यह क्या? अश्वपति

सन्तान-कामना से मेरी तपस्या करता है, मैं उसे कन्या पाने का वर कैसे दूँ ? कन्या तो वह नहीं चाहता ?" ब्रह्मा ने कहा—देवी ! पुत्र और कन्या दोनों ही तो सन्तान हैं; दोनों से वंश बढ़ता है, दोनों का नाम सन्तान है। इसलिए अश्वपति को कन्या देने से तुम्हारा अन्याय नहीं समझा जायगा। तुम उसे कन्या का ही वर दो।

राजा अश्वपति को कन्या का वरदान देने से सावित्री का मन नहीं भरता था। ब्रह्मा यह समझ गये। उन्होंने कहा—"देवी ! नीच और ओछे विचार के मनुष्य ही बेटा और बेटी में भेद समझते हैं। ममता-रूपी लड़की बूढ़े पिता का प्रधान अवलम्ब है। भक्ति, स्नेह, ममता और सेवा-शुश्रूषा से कन्या देवीरूप में माता-पिता की व्यथा हर लेती है। ऐसी कन्या को तुम पुत्र से ख़राब समझती हो ? देवी! संकोच मत करो। अश्वपति को कन्या देने का एक और मतलब है। शक्ति-स्वरूपिणी नारी सतीत्व के प्रभाव से क्या अनहोनी कर सकती है, यह दिखाना भी इसका मुख्य उद्देश है।" यह कहकर ब्रह्मा ने सावित्री को अश्वपति की भावी कन्या की कथा कह सुनाई।

सावित्री देवी ने, ब्रह्मा के मुँह से सब हाल सुनकर, प्रसन्नता-पूर्वक अश्वपति को सन्तान होने का वर दिया।

महाराज अश्वपति अपने राज्य को लौट आये। राजा का दर्शन पाकर प्रजा पुलकित हुई। इससे अधिक प्रसन्नता उसको यह सुन-कर हुई कि राजा की मनोकामना पूरी होगी। सब लोग इसकी बाट देखने लगे कि राजमहल राजकुमार की मृदु मुसकान से कब गूँजेगा, और राजा-रानी का दुःखित हृदय सन्तान का मुख देखकर कब पुलकित होगा।

यथासमय रानी के एक कन्या हुई।

राज्य में आनन्द की सरिता, सैकड़ों धाराओं में, वह चली।

सावित्री देवी ने देखा कि रानी के लड़की होते देखकर राजा अश्वपति को देवता के वर पर उतनी श्रद्धा नहीं रही। उन्होंने कुछ दुखित होकर राजा से सपने में कहा—राजन् ! देवता के वाक्य पर अविश्वास मत करो। तुम्हारी इस भुवन-मोहिनी कन्या से नारी-चरित्र की एक उज्ज्वल दिशा प्रकाशित होगी। इस कन्या के प्रभाव से तुम भविष्यत् में सौ पुत्र पाओगे।

एकाएक अश्वपति की नींद टूट गई। वे शयनागार में एक दिव्य सुगन्धि का अनुभव करके उसे सदा आराध्य सावित्री देवी की ही शुभ आज्ञा समझ पुलकित हुए और उन्होंने तुरन्त रानी से सब बात कह दी।

[२]

राजकुमारी, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति, दिन-दिन बढ़ने लगी।

सावित्री देवी के वर से कन्या होने के कारण राजा अश्वपति ने उसका नाम रक्खा सावित्री। उमर के साथ-साथ सावित्री के रूप की चमक भी बढ़ने लगी। रानी और राजा बेटी की शारीरिक शोभा के साथ भीतर की सुन्दरता, विनय, देवता के प्रति भक्ति, सब जीवों पर भ्रातृभाव और माता-पिता के प्रति अनोखा अनुराग देखकर बहुत प्रसन्न हुए और देवता के वर से पाये हुए उस कन्यारूपी रत्न को बड़े यत्न से पालने लगे।

धीरे-धीरे सावित्री सयानी हुई। उसकी सुघराई जवानी के शीतल स्पर्श से और भी चमक उठी। स्वाभाविक सरल मुख पर लज्जा का चिह्न दिखाई देने लगा। आँखों में लज्जा का भाव देखकर अश्वपति समझ गये कि कन्या व्याहने योग्य हो गई।

एक दिन तीसरे पहर अश्वपति ने देखा कि राजमहल के अन्दर केलि-कानन में कितने ही फूल खिले हुए हैं; पत्थर के घाटवाले सरो-

वर के नीले जल में कमल विकसे हुए हैं। वृक्षों की फूली हुई शाखाओं पर बैठकर कोयलें प्रेम से 'कुहू-कुहू' कर रही हैं। भौंरे फूलों पर बैठे रस लेते हुए गूँज रहे हैं। फूलों से लदी मालती-लता से घिरे आम के वृक्ष लाल रंग के नये पल्लवों से ज़रा झुक गये हैं। वसन्त की शोभा से प्रसन्न होकर राजा अन्तःपुर में गये।

धीरे-धीरे सन्ध्या हुई। अगणित दीपों की माला से राजमहल जगमगा उठा। दूर के देवमन्दिर से आरती का शब्द आने लगा। राजा सन्ध्या आदि से निपटकर विश्राम करने के कमरे में गये। रानी मालवी देवी स्वामी की सेवा के लिए वहाँ आकर बैठीं। राजा ने कहा—"रानी! तुमसे आज एक सलाह करनी है।" सलाह की बात सुनकर रानी कौतूहल से राजा के मुँह की ओर ताकने लगीं। राजा ने कहा—देखो रानी! सावित्री सोलह वर्ष की हो गई। उसके अङ्ग-अङ्ग में जवानी के लक्षण दिखाई देते हैं। शीघ्र ही उसका विवाह कर देना चाहिए। इसी सलाह के लिए तुमसे मैं कहता था।

रानी ने कहा—महाराज! सावित्री के विवाह की बात मैं आप से कहने को ही थी। सावित्री मनुष्यरूप में देवी है। आप शीघ्र ही किसी सुन्दर सच्चरित्र गुणवान् राजकुमार को ढुँढ़वाइए।

बेटी के विवाह के विषय में राजा-रानी में इस प्रकार की बातचीत हो ही रही थी कि इतने में, कौशेय वस्त्र पहने हुए, व्रत करनेवाली सावित्री ने आकर माता-पिता को प्रणाम किया। राजा अश्वपति ने बेटी को पास बिठाकर बड़े प्यार से कहा—बेटी! व्रत करने से तुम्हारा सुकुमार शरीर सूख गया है, रूखे स्नान से तुम्हारे बालों की स्वाभाविक शोभा जाती रही है। बेटी! ऐसा व्रत क्यों करती हो?

सावित्री ने पिता की बात सुनकर कहा—बाबूजी! व्रत और

उपवास से मुझे कुछ कष्ट नहीं होता। मैं भली रहती हूँ। इससे मेरा शरीर चंगा रहता है।

रानी ने मन्दिर से आई हुई बेटी के, होम-तिलक लगे हुए, ललाट का पसीना पोंछकर मीठे स्वर में कहा—"बेटी! व्रत करने के कारण दिन भर उपवास करती हो, चलो कुछ खा लो।" बेटी को रानी अपने कमरे में ले गई।

राजा अश्वपति बेटी की बात सोचने लगे। ऐसी रूप-गुणवाली लड़की के योग्य वर कहाँ मिलेगा, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। क्षण-क्षण में वे इसी फ़िक्र में रहने लगे।

दूसरे दिन सबेरे दरबार में जाकर राजा ने मुसाहबों से कहा—सावित्री का शीघ्र ही विवाह करना है। आप लोग उसके लायक़ वर ढूँढ़िए।

मुसाहबों का मुख प्रसन्न हो गया। उन्होंने विनय-पूर्वक निवेदन किया—महाराज! आज्ञा हो तो भाट भेजने की व्यवस्था की जाय।

बहुतसे भाट सावित्री के विवाह का प्रस्ताव लेकर अनेक देशों में—अनेक राज्यों में—गये। अनुपम सुन्दरी सावित्री के विवाह की बात सुनकर कितने ही राजकुमार भी मद्र देश में आये। किन्तु वे सब सावित्री के चेहरे पर एक दिव्य ज्योति देखकर आदर से सिर नीचा करके लौट गये।

राजा अश्वपति सावित्री के योग्य वर का मिलना कठिन देखकर भारी चिन्ता में पड़े। उन्होंने एक दिन रानी को बुलाकर कहा—रानी! मैंने बहुत उपाय किये परन्तु सावित्री के लायक़ वर नहीं मिला। अब क्या करना चाहिए?

रानी ने कहा—महाराज! यह तो बड़ी चिन्ता की बात है।

इधर सावित्री दिन-दिन बढ़ती जाती है। शीघ्र उसका विवाह न करने से ठीक नहीं होगा।

अन्त में राजा ने कहा—अच्छा रानी! मैं एक बात कहता हूँ; बताओ, तुम्हारी क्या राय है। मैं तो बहुत उपाय करके भी सावित्री के योग्य वर न पा सका। अब मेरी इच्छा है कि सावित्री ही को पति खोजने की आज्ञा दूँ। वह अपना पति आप ढूँढ़ ले।

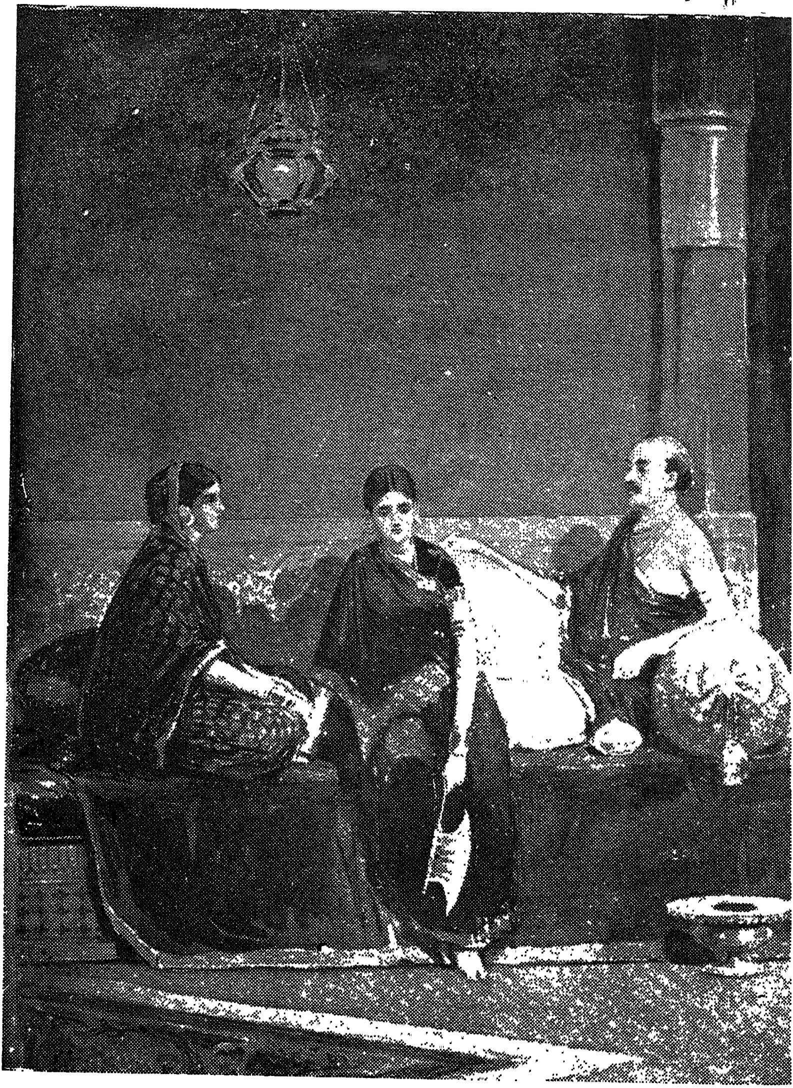
रानी—महाराज! यह असम्भव बात है। जब आप अपनी चेष्टा करके भी सावित्री के योग्य वर नहीं खोज सके तब वह भोली-भाली लड़की इस काम को कैसे कर सकेगी?

राजा—रानी! इसकी चिन्ता मत करो। मैं सावित्री को तीर्थ-यात्रा के बहाने अपने विश्वस्त मंत्री आदि के साथ भेजूँगा। मेरा विश्वास है कि सावित्री अपने पति को ढूँढ़ लेने में समर्थ होगी।

रानी—महाराज! मैं नारी हूँ। मुझमें इतनी बुद्धि कहाँ कि सब बातों को समझ सकूँ। आपकी जो इच्छा हो, वह कीजिए।

राजा—रानी! तुम इसके लिए कुछ फ़िक्र मत करो। सूर्य को देखकर ही कमलिनी खिलती है। गंगा की धारा महासागर में ही गिरती है। सावित्री जैसी बुद्धिमती और समझदार है उससे उसके ऊपर पति के खोजने का भार देने से बुरा नहीं होगा। रानी! एक बात जान रखना—देवता के वर से मिली हुई मेरी सावित्री कभी अयोग्य वर को पसन्द नहीं करेगी। भविष्यत् उसके लिए उज्ज्वल वेष में बाट देख रहा है। अकल्याण सावित्री के पास नहीं फटकेगा। मेरी बेटी मानवी रूप में देवी है।

राजा और रानी में इस प्रकार की बात हो ही रही थी कि इतने में सावित्री भी वहाँ आ गई। राजा ने आदर से उसे पास बिठाकर कहा—



राजा ने कहा—मेरी इच्छा है कि तुम स्वयं पति ढूँढ़ने की चेष्टा करो—पृ० ६७

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

बेटी ! आज मैंने तुमको एक बात कहने के लिए बुलाया है; सुनो। प्रकृति के नियमानुसार यौवन-काल में पुरुष और स्त्री विवाह के पवित्र बन्धन में बँधते हैं। यौवन-काल नर-नारी के भविष्यत् जीवन की साधना का श्रेष्ठ समय है। पुरुष और स्त्री विवाह के बन्धन में बँध-कर इस झंझट-भरी पृथ्वी पर साधना के योग्य बल पाते हैं। बेटी ! अब तुम सयानी हो गई हो। बिना विलम्ब, तुमको विवाह के पवित्र सूत्र में बँध जाना चाहिए। मैंने योग्य वर ढूँढ़ने के लिए बहुतेरे उपाय किये किन्तु कोई भी राजकुमार तुम्हारे रूप की इस अनुपम ज्योति को नहीं सह सका। पाणिग्रहण के अभिलाषी राजकुमारों ने तुम्हारे मुख की ओर प्रेम-पूर्ण दृष्टि डाली है किन्तु तुम्हारे अनुपम अलौकिक मातृ-भाव ने उनके अभिलषित भाव को बदल दिया है; उससे वे डरते-डरते तुम्हारे स्वर्गीय मातृत्व को प्रणाम करके लौट गये। बेटी! तुम्हारे मुख पर जगत्-माता का स्नेह-पूर्ण माधुर्य्य झलकता है। मैं इस बुढ़ापे में तुमको 'बेटी बेटी' कहकर अपने को धन्य समझता हूँ।

सावित्री ने कहा—बाबूजी, इस समय मुझे क्या आज्ञा है, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

राजा ने कहा—मेरी इच्छा है कि तुम स्वयं पति ढूँढ़ने की चेष्टा करो। बेटी ! इसमें लजाना मत; कर्त्तव्य कार्य्य में लजाना अच्छा नहीं। पर्वत से गिरनेवाली नदी आप ही समुद्र से जाकर मिलती है। इस जगत् में प्रेम के समान नित्य वस्तु और कुछ भी नहीं है। इसलिए मैं तुम्हारे स्वयं पति चुनने में संकोच करने का कोई कारण नहीं देखता।

राजा की बात सुनकर सावित्री बहुत लजा गई। उसके माथे पर पसीना आ गया। रानी ने लड़की के लजाने का भाव देख प्रेम से पास बिठाकर माथे का पसीना पोंछ दिया और कहा—छिः, इसमें शर्म क्या है बेटी ! हम जब इतने उपाय करके भी तुम्हारे योग्य वर

ठीक नहीं कर सकीं तब हमारा पूरा विश्वास है कि जिस सौभाग्यवान् पुरुष को विधाता ने तुम्हारा स्वामी चुन रक्खा है वह अवश्य ही तुम्हारी पवित्र पुकार की बाट देख रहा है। बेटी! भौंरा और किसी के बुलाने से नहीं आता। खिला हुआ फूल सुगन्धि से सने हुए स्वर से ज्योंही उसे पुकारता है त्योंही वह वहाँ पहुँच जाता है। तुम्हारा वह पुरुष-रत्न स्वामी तुम्हारी ही मधुर पुकार की बाट देख रहा है। मैं आशा करती हूँ कि अब तुम हमारी बात समझ गई हो। बेटी! यह कोई नई बात नहीं है। इस प्रकार, पति को चुन लेना सदा की चाल है। पतिव्रताओं में श्रेष्ठ सती ने हिमालय-गृह में तप के प्रभाव से कैलासनाथ महादेव को बुला लिया था।

सावित्री चुप हो रही।

राजा ने प्रेम-पूर्ण स्वर से कहा—बेटी! इसमें कुछ डर की बात नहीं है। हमारी प्रजा सुशासित है और सामन्त राजाओं से मित्रता है। तुम्हारे साथ हमारे मंत्री, तुम्हारी प्यारी सहेलियाँ और दास-दासियाँ तथा सैकड़ों सिपाही जायँगे। बेटी! घबड़ाना मत। मैं बिना विलम्ब तुम्हारे जाने के लिए सवारी आदि का प्रबन्ध किये देता हूँ।

यह कहकर राजा दूसरे कमरे में चले गये।

तब सावित्री ने माता से कहा—मा! मैं आप लोगों की सब बातें समझ गई। किन्तु संसार क्या इतना भयानक है कि यहाँ स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से मिले बिना नहीं रह सकता? मैं जितने दिन जीऊँगी उतने दिन तुम लोगों के पवित्र चरणों की सेवा करके ही धन्य हूँगी। मा! मुझे परित्याग करके तुम लोग कैसे रहोगी और मैं भी कैसे रहूँगी?

रानी ने बेटी की बालकों की जैसी सरल बात सुनकर कहा—

अपनी ख़बर न रखनेवाली बेटी! सुनो। जवानी में स्त्री-पुरुष का परस्पर सम्मिलन विधाता का विधान है। इस पवित्र मिलन के लिए पृथ्वी पर जीवस्रोत एक तार से जारी है। पहले के बुद्धिमान् लोग नर-नारी के कर्त्तव्य में विवाह (अर्थात् स्त्री-पुरुष के सम्मिलन) को श्रेष्ठ बता गये हैं। बेटी! तुम क्या विधाता की उस पवित्र आज्ञा को तोड़कर हम लोगों को दुःख के समुद्र में डुबोना चाहती हो?

माता की बात सुनकर सावित्री और कुछ न कह सकी। मा-बाप के आग्रह से, और विशेष कर इन्हें दुखी देखकर, सावित्रा ने संकल्प को स्थिर किया।

रानी ने लड़की के मन का भाव समझकर कहा—बेटी! रात बहुत गई, चलो सोवें।

[४]

दूसरे दिन सबेरे राजा अश्वपति ने लड़की को क़ीमती पोशाक से सजाकर सखी, दाई और बूढ़े मंत्री सहित बिदा किया। माता-पिता के चरण छूकर सावित्री रथ पर सवार हो चल पड़ी। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। किन्तु वह राजधानी से निकलकर प्रकृति के सौन्दर्य में भूल गई और दासी तथा सखियों से कितनी ही बातें पूछने लगी। दासी और सखियाँ, जहाँ तक बन पड़ा, उसका कौतूहल पूरा करने लगीं।

सावित्री अनेक देशों और अनेक राज्यों में घूम-फिरकर अन्त को एक तपोवन में आई। तब बूढ़े मंत्री ने कहा—राजकुमारी! यह तपोवन है; यहाँ अग्नि के तुल्य मुनि लोग रहते हैं। इसलिए यहाँ रथ की सवारी पर जाना उचित नहीं। इसलिए अब जो तपोवन घूमने की इच्छा हो तो रथ से उतर आइए।

तपोवन देखने के लिए ललचाई हुई सावित्री तुरन्त दाई और

सखियों-सहित रथ से उतर पड़ी। सबेरे के समय तपोवन की बड़ी सुहावनी शोभा थी! शीतल मन्द बयार, वन-वृक्षों के नये-नये पत्तों से छेड़-छाड़ करती, फूलों की सुगन्ध लिये, अठखेलियाँ कर रही थी। पेड़ों की डालियों पर बैठे मोर बोलते थे। हरिणों के जोड़े जंगली रास्ते के किनारे खड़े होकर उन लोगों को चकित दृष्टि से निहारने लगे। सावित्री ने देखा कि सरोवर में नयन-मनोहर कमल खिलकर उपवन की शोभा बढ़ा रहे हैं। सबेरे की हवा उनकी सुगन्धि छीनकर चारों ओर फैला रही है। हंस और चक्रवाक आदि जलचर पक्षी तैर रहे हैं। फल-फूल और समिधा चुनने के लिए मुनियों के बालक, समान उमरवालों के साथ बातचीत करते हुए, फूले हुए वन-वृक्षों की ओर जा रहे हैं। थोड़ी दूर पर मुनियों की कन्याएँ यज्ञ के लिए वेदी बना रही हैं। तपोवन की यह शोभा देखकर सावित्री मुग्ध हो गई। आज प्रातःकालीन सूर्य ने सावित्री की देह-लता को नई शोभा से सजा दिया। फूली हुई बनैली-लताएँ हर्ष से तपोवन देखने को आई हुई राजकुमारी के बदन पर मानों फूल बरसाने लगीं। फूलों का मधु पीकर मतवाले दो-एक भौंरे सावित्री के सुगन्धित चमकीले बालों के चारों ओर मँडराने लगे।

बूढ़े मंत्री ने सावित्री के अतिशय आनन्द को देखकर कहा—"राजकुमारी! यह तपोवन है। यहाँ किसी प्रकार का डर नहीं। आप दाई और सखियों सहित निडर होकर तपोवन की शोभा देखिए। अगर आज्ञा हो तो मैं पास के तपस्वियों से इस आश्रम के विषय में कुछ पूछ-ताछ करूँ।" राजकुमारी ने कहा—अच्छा, आप जाइए। मैं दाई और सखियों के साथ इस कुञ्ज की ओर जाती हूँ।

मंत्री के प्रणाम करके चले जाने पर सावित्री कुञ्ज की ओर बढ़ी। कुञ्ज से थोड़ी दूर पर एक निर्मल जलवाली नदी वन को हरा-

भरा करके मन्द गति से बह रही है। उसकी मधुर कलकल ध्वनि मुनियों के वेद-गान से गम्भीर हो रही है। मुनियों के कई बेटे फूल चुनकर नदी में स्नान करने जा रहे थे। मुनियों के कुमार व्रत-संयम में भी यौवन के मदस्पर्श से परिहास को पसन्द कर आपस में हँसी-दिल्लगी करते हैं। वे अनेक प्रकार की बातें करते जाते थे। अचानक एक पतिंगा उड़कर एक ऋषिकुमार के बदन पर बैठ गया। यह देखकर ऋषिकुमार ने कहा—"भाई सत्यवान! यह देखो तुम्हारी देह पर पतिंगा बैठा है—तुम्हें दुलहन मिलने में अब देर नहीं।" सत्यवान ने कहा—"जाओ जी, इस घड़ी दिल्लगी रहने दो। नहा-धोकर शीघ्र आश्रम को लौटना है।" हमजोली के ऋषिकुमारों ने सत्यवान को दिल्लगियों के मारे तङ्ग कर डाला। बेचारा सत्यवान आज सहपाठियों के सामने भारी अपराधी बन बैठा है।

स्नान के बाद सन्ध्या-वन्दन आदि करके मुनियों के कुमार आश्रम की ओर चले। सबके मुख पर वही एक बात है। जगत् की जितनी बातें हैं—शास्त्र की जितनी मीमांसा है सब आज सत्यवान की बात से आरम्भ हुई। सत्यवान ने ज़रा कुढ़कर कहा—तुम लोग दिल्लगी में ही पड़े रहो। देखते नहीं कि कितना दिन चढ़ गया है। महर्षि यज्ञ पूरा करके कहीं पुकारें न? मैं जाता हूँ—तुम लोग आना।

यह कहकर सत्यवान साथियों को छोड़ आगे बढ़ गया।

यह बड़ी कठिन पुकार है। जिस पुकार से जगत् चलता है, विधाता की इतनी बड़ी सृष्टि जिस पुकार को मानती है उसी पुकार ने आज सत्यवान को बाल-सखाओं से अलग कर दिया। सत्यवान क्या सचमुच आज अकेला है? नहीं, वह अकेला नहीं है; जीवन के मार्ग में जो शक्ति है, कर्म की लड़ाई में जो सफलता है और

हताशों में जो ढाढ़स है वही देवी आज उससे लिपटने के लिए वन-भूमि के रास्ते में खड़ी है।

दो सीधी सड़कें दो ओर से आकर मिल गई हैं। पास ही कुञ्ज है। सावित्री के वहाँ पहुँचने पर एक सखी बोली—"राजकुमारी! देखो यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है मानो वसन्त की शोभा मूर्ति धर-कर वन को शान्त और शीतल बनाये हुए है। अलग-अलग दिशाओं से आकर दो सीधी सड़कें कैसी मिल गई हैं। सखी! ऐसा जान पड़ता है कि यह प्रेम और पवित्रता की पुनीत मिलन-भूमि है।" यह सुनकर सावित्री देवी ने बड़ा हर्ष प्रकट किया। इतने में साथियों से बिछुड़ा हुआ सत्यवान उन रास्तों के मोड़ पर आ पहुँचा। आँखें चार हुईं। दोनों के चञ्चल नेत्रों की पलकें खड़ी हो गईं। दोनों ने सोचा—अहा! क्या ही सुन्दर है! दोनों के हृदय में धकधकी शुरू हो गई। राज-कुमारी की आँखें नीचे को हो गईं। नवीन ऋषि-कुमार के रूप-समुद्र में सावित्री डूब गई। अचानक शरीर में रोमाञ्च को और माथे पर पसीने को देखकर बुढ़िया दाई ने सावित्री के मन के भाव को ताड़ लिया और सत्यवान! अकेला सत्यवान वहीं खड़ा होकर न जाने क्या-क्या सोचने लगा। वह यह बात भूल गया कि महर्षि के पास मुझे जल्द जाना है। वह सोचने लगा—यह क्या हुआ? हृदय-मन्दिर में यह किस देवी के नूपुर की मृदु ध्वनि है, वासना के द्वार पर यह किसका पुलकस्पर्श है।

सत्यवान बेसुध होकर सोच रहा है, इतने में पीछे से उसके सखा ने आकर मुसकुराते हुए कहा—"सखा सत्यवान! तुम्हारे अभि-प्राय को हम लोगों ने समझ लिया। महर्षि के पास शीघ्र जाने के बहाने जो हम लोगों को छोड़कर चले आये तो यहाँ, रास्ते में, इस तरह बेसुध क्यों हो गये?" सत्यवान ने अपने को सँभालते हुए सखा के कन्धे

पर हाथ रखकर कहा—नहीं भाई! कुछ नहीं है। चलो, महर्षि के पास शीघ्र चलें।

सावित्री के मन के भाव को ताड़कर दाई बोली—"राजकुमारी! हम लोग बातें करते-करते बहुत दूर निकल आईं; मंत्रीजी हम लोगों को ढूँढ़ते होंगे।" सावित्री ने कहा—मैं तो बहुत थक गई। मैं ज़रा आराम करना चाहती हूँ।

सखियों से घिरकर आती हुई राजकुमारी रास्ते में न जाने कितनी बातें सोचने लगी। उसकी मृदु मुसकान और बेरोक बात-चीत कुछ सँभल गई। सखियों की बात का उत्तर देना इस समय उसकी शक्ति से बाहर था।

आते-आते एक सखी ने कहा—"राजकुमारी! यह देखो काले मेघों की क़तार के समान पहाड़ से सटे हुए पत्थर कितने रुखड़े हैं। उनमें कोमलता तो नाम लेने के लिए भी नहीं है।" सावित्री बोल उठी—अहा! क्या ही सुन्दर है।

सावित्री के मुँह से ऐसे असम्भव उत्तर को सुनकर सखी बोली—"सखी! यह कैसा उल्टा-पल्टा उत्तर देती हो? रुखड़े पत्थर में तुमने सुन्दरता कहाँ पाई?" सावित्री ने कहा—"तुमने क्या कहा? मैंने ठीक-ठीक सुना नहीं।" सखी ने सावित्री की इस चिन्ता का कारण समझकर हँसते-हँसते कहा—"यह देखो मंत्रीजी आते हैं।" दाई के इशारे से दिल्लगी की बातें बन्द हुईं।

मंत्री ने आकर प्रेम से कहा—"यह आश्रम बड़ा सुन्दर है। मैं आश्रम में मुनियों का वास-स्थान देख आया। अहा! कैसा शान्त स्थान है!" सावित्री ने कहा—मंत्रिवर! मेरी इच्छा है कि मैं एक बार मुनियों के और उनकी पत्नियों के चरणों के दर्शन कर लूँ।

मंत्री ने कहा—"राजकुमारी! चलिए, आज इस तपोवन में हम

लोग मेहमान हों।" सखियों सहित सावित्री तपोवन और मुनियों को देखने के लिए बहुत अधीर थी। इससे जल्दी-जल्दी चलने लगी। दाई और मंत्री ज़रा पिछड़ गये।

""मंत्रीजी ! हम लोगों की यात्रा सफल हो गई। हम लोग जिस काम के लिए राजधानी से चले थे, वह पूरा हो गया। सावित्री को योग्य वर मिल गया।" कहकर, मंत्री को दाई रास्ते की सब बातें संक्षेप में सुना गई।

मंत्री ने कहा—"अगर राजकुमारी का किसी ऋषिकुमार पर प्रेम हुआ हो तो मुझे उसका परिचय ले लेना होगा।" दाई ने आगे जाते हुए दोनों ऋषिकुमारों को उँगली से दिखाकर कहा—"वह जो उन्नत शरीर का सुकुमार ऋषिपुत्र दाईं ओर दिखाई देता है, वही भाग्यवान् सावित्री के हृदय-राज्य का देवता है।" मंत्री ने कहा—हम लोगों को भी उधर ही चलना होगा।

बिना विलम्ब उन्होंने तपोवन में जाकर योगासन पर बैठे हुए अन्ध-मुनि और मुनि की पत्नी के चरण छुए। मंत्री ने मुनि से कहा—मद्रराज अश्वपति की बेटी सावित्री का प्रणाम स्वीकार कीजिए।

अपने आश्रम में राज-कन्या सावित्री का आना सुनकर उन्होंने अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए राजकुमारी को आशीर्वाद दिया।

अन्ध-मुनि ने यथाविधि क्षेम-कुशल आदि पूछा, फिर सत्यवान से कहा—बेटा ! आज हम लोगों के आश्रम में राजकुमारी, राज-मंत्री और राजकुमारी की दाई तथा सखियाँ अतिथि हैं। बेटा ! सावधान रहना, इन लोगों के सत्कार में कुछ त्रुटि न हो।

रास्ते में जिस राजकुमारी को देखा था उसी को अपने आश्रम में देखकर सत्यवान बड़े उत्साह से उन लोगों की सेवा करने लगा।

मद्र-नरेश की कन्या का तपोवन में आना सुनकर आश्रम-वासी

मुनि बहुत प्रसन्न हुए और राजकुमारी को देखने के लिए एक-एक करके राजर्षि द्युमत्सेन के आश्रम में आने लगे।

मुनियों की कन्याओं से धीरे-धीरे सावित्री का मेल-मिलाप हो गया। मुनि-कन्याओं की निर्मल मूर्त्ति देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। सरल-स्वभाववाली ऋषि-बालिकाएँ सावित्री को साथ ले जाकर तपोवन की सैर कराने लगीं। वह हरा-भरा खुला मैदान, दूर तक फैला हुआ वन, बड़ी भारी गम्भीर पर्वत-माला और अनेक प्रकार के पक्षियों से गूँजती हुई पवित्र वन-भूमि देखकर सावित्री पुलकित हो गई। वह सोचने लगी कि यह सपने का खेल है या कोई अदृश्य अमरावती है या यह पवित्रता का छिपा हुआ वासस्थान है। अहा! ये सरल-हृदय की बालिकाएँ मानो पवित्रता की सजीव मूर्त्तियाँ हैं और आश्रम-वासिनी मुनि-पत्नियाँ मानो उन्मुक्त स्वाधीनता की जीती-जागती मूर्त्तियाँ हैं। यह सोचते-सोचते सावित्री के रोमाञ्च हो आया। वह सुध-बुध भूल गई।

सावित्री ऋषियों की बालिकाओं के साथ आश्रम में आकर मंत्री से तपोवन देख आने की बात कह रही थी, इतने में सत्यवान ने वहाँ आकर विनय-पूर्वक कहा—"हम लोग गृहत्यागी संन्यासी हैं; राजपरिवार के स्वागत करने योग्य कोई वस्तु हम लोगों के पास नहीं, यहाँ तक कि अन्न-जल भी राजोचित नहीं है। तो भी कृपा करके हम लोगों के यत्न से जुटाया हुआ और देवता का चढ़ाया हुआ जंगली फल-मूल ग्रहण कीजिए।" मंत्री आदि ने ऋषिकुमार की सरलता और दीनता पर प्रसन्न होकर उस प्रसाद को ग्रहण किया और अपने को धन्य माना।

तरह-तरह की बातचीत में दिन ढल गया। धीरे-धीरे सन्ध्या हुई। ऋषिकुमारगण आरती की तैयारी में लगे। होम की आग सुलगाई गई। ऋषिकुमार एक साथ सन्ध्या-वन्दन और एक स्वर से पाठ करने लगे। तपोवन की वह सन्ध्या-समय की शोभा, वनवासी पक्षियों

का मधुर गान और ऋषिकुमारों का मनोहर सन्ध्या-स्तोत्र देख-सुनकर सावित्री का हृदय मानो किसी मायामय राज्य में पहुँच गया। नेत्र मूँदे हुए सत्यवान का मधुर वेद-गान सुनकर सावित्री सुध-बुध भूल गई। वह सोचने लगी कि ऐसा स्वर मनुष्य के कण्ठ से कभी नहीं निकल सकता। यह मेरे हृदय-राज्य के देवता का मधुर प्रेम-गीत है। पुलकावली छाई हुई आँखों से सावित्री सत्यवान के सुन्दर वदन को देखने लगी। सत्यवान की मुँदी हुई आँखों पर सावित्री के नेत्र ठगे से हो रहे। पलकों का परदा उठ गया। यह देखकर मंत्री प्रसन्न हुए। दाई ने भी देखा कि राजकुमारी की प्रेमदृष्टि सत्यवान पर जमी हुई है। सावित्री की सखियों ने भी उसका यह भाव देख लिया; किन्तु देवता की ओर टकटकी लगाये हुए योगिनी यह समझ नहीं सकी। वह तो दूसरे ही राज्य में थी।

सन्ध्यावन्दन के अन्त में सत्यवान ने राज-अतिथियों को आरती का दीपक दिखाया। जब वह आरती का दीपक सावित्री के पास पहुँचा तब सत्यवान का हाथ काँप उठा। सत्यवान की प्रेमपूजा के अर्घ्यपुष्प और आरती की ज्योति ने सावित्री को तृप्त करके उसकी रूप-राशि को जगमगा दिया।

मुनियों के मुँह से अनेक उपदेश और कथाएँ सुनते-सुनते सावित्री सो गई। दाई ने उसका बिछौना ठीक कर दिया। मंत्री आदि भी उचित स्थान पर सो रहे।

सवेरे उठकर सावित्री ने मुनियों और मुनि-पत्नियों को प्रणाम किया। मुनि-कन्याएँ सावित्री के, उस एक दिन के, सखित्व से मुग्ध हो गई थीं। उनका जी सावित्री को किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहता था। डबडबाई हुई आँखों से सावित्री तपोवन से बिदा हुई।

तुरन्त रथ लाया गया। सावित्री रथ पर चढ़ना चाहती थी, इतने

में उसे याद आई कि ऋषिकुमार को तो प्रणाम किया ही नहीं। उसने झट सत्यवान के पास जाकर विनय-सहित काँपती हुई आवाज़ से कहा—देवता! मेरा प्रणाम लीजिए। मुनि-कन्याओं के विरह-दुःख से मैं अपने को ज़रा भूल गई थी; और कुछ न सोचिएगा।

सत्यवान कुछ कह नहीं सका। वह मन ही मन बोला—तुम्हारी इच्छा पूरी हो।

राजकुमारी की प्रेम से उपजी हुई इस त्रुटि को देखकर मंत्री सब समझ गये। उन्होंने हर्षित होकर राजकुमारी से पूछा—"अब किस तीर्थ में चलोगी?" सावित्री ने कहा—बहुत दिनों से माता-पिता के चरणों के दर्शन नहीं हुए। इसके सिवा आश्रम में घूमने से मैं बहुत थक भी गई हूँ। इसलिए अब और किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं। राजधानी को लौट चलिए।

मंत्री के आदेश से सारथि ने मद्रराज्य की ओर घोड़ों को चलाया।

[५]

राजा अश्वपति दरबार में बैठे हैं। विचार-प्रार्थी लोग हाथ जोड़े दूर खड़े हैं; साक्षात् धर्म के समान राजा अश्वपति न्याय के काम में लगे हुए हैं; इतने में एक प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया—महाराज! प्रधान मंत्रीजी राजकुमारी-सहित लौट आये हैं। यह सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और प्रधान मंत्री के आने की बाट देखने लगे।

तुरंत ही प्रधान मंत्री ने आकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने उचित आदर से मंत्री को निकट बुलाकर पूछा—"मंत्रिवर! सब कुशल तो है? बेटी सावित्री देश घूमते-घूमते थक तो नहीं गई?" मंत्री ने कुशल-मङ्गल कहा।

कुछ देर बाद राजा ने पूछा—"मंत्रीजी! जिस बड़े काम के लिए आप लोग देश घूमने गये थे उसका भी कुछ हुआ?" मंत्री ने

हर्ष के साथ उत्तर दिया—हाँ महाराज ! राजकुमारी ने पति चुन लिया है। यद्यपि मैंने इस विषय में उनके मुँह से कोई बात नहीं सुनी तथापि देखा है कि एक नवयुवक को देखकर राजकुमारी ने उस पर प्रेम-लक्षण प्रकट किया है।

मंत्री के मुँह से यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए कि सावित्री ने पति चुन लिया है। उन्होंने पूछा—"मन्त्रिवर ! सावित्री ने जिस पर प्रेम प्रकट किया है उसका परिचय तो आप अवश्य मालूम कर आये होंगे।" मंत्री ने कहा—महाराज ! राजकुमारी ने शाल्वराज्य के राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से प्रेम किया है। महाराज ! सत्यवान सुन्दर युवा पुरुष है। उसके सुकोमल शरीर में ऋषि का वेष और ब्रह्मचर्य्य से उपजा हुआ लावण्य बड़ा ही सुन्दर लगता है।

यह सुनकर राजा ने राजकुमार सत्यवान के ऋषि-वेष का कारण पूछा। मंत्री ने कहा—महाराज ! राजा द्युमत्सेन अब बूढ़े हो गये हैं। कोई अठारह वर्ष हुए, उनका राज्य शत्रु ने छीन लिया। द्युमत्सेन राज्य और दृष्टि खोकर, विपाशा नदी के किनारे, वशिष्ठ के आश्रम में तपस्या कर रहे हैं। राजर्षि द्युमत्सेन का इकलौता बेटा सत्यवान धनुर्वेद में ख़ूब चतुर है। उसके उन्नत शरीर, चौड़ी छाती, फैले हुए कन्धों, घुटनों तक लम्बी भुजाओं, चौड़े माथे और गठे हुए बदन में क्षात्र-धर्म के साथ ब्रह्मतेज अपूर्व शोभा देता है। महाराज ! सब बातों में सत्यवान सावित्री के योग्य है, किन्तु दारुण दरिद्रता इस विषय में कुछ बाधा डालती है। तथापि यह सत्य है कि अमृत से भरे हुए समुद्र के किनारे कोई प्यासा नहीं रह सकता; कल्पवृक्ष के पास कोई दरिद्रता का कष्ट नहीं भोगता। महाराज ! आप सावित्री को सत्यवान के हाथ सौंपिए।

मंत्री के मुँह से सत्यवान का वृत्तान्त सुनकर मद्रराज बहुत प्रसन्न

हुए। उन्होंने सोचा कि सावित्री का शुभ विवाह हो जाने पर सत्यवान की दशा अवश्य बदल जायगी। प्रकाश निकलने पर अँधेरा भाग ही जाता है। सूखी तपी हुई पृथ्वी पर वर्षा की धारा से हरियाली छा जाती है। सौभाग्य-लक्ष्मी के आगमन से सत्यवान के घर में उजेला हो जायगा; उसकी दरिद्रता दूर हो जायगी।

राजा इस प्रकार सोच-विचार कर रहे थे और मुसाहिब लोग सावित्री के पति ढूँढ़ लेने की आपस में चर्चा कर रहे थे, इतने में देवर्षि नारद दरबार में आये। राजा ने आसन से उठकर बड़े आदर से उनको सिंहासन पर बिठाया। कुशल-प्रश्न हो लेने और स्वागत के बाद राजा अश्वपति ने देवर्षि नारद से सावित्री के पति चुनने की बात कही। नारद ने बड़ी प्रसन्नता से सत्यवान के कुल और शील की प्रशंसा करते हुए कहा—"राजन्! सत्यवान सब प्रकार से सावित्री के योग्य स्वामी है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु मैं इसमें बड़ा अमंगल देखता हूँ। राजा ने चौंककर पूछा—"देवर्षि! आप इसमें क्या अमंगल देखते हैं?" देवर्षि ने कहा—महाराज! सत्यवान की उम्र बहुत थोड़ी है। आज के ठीक बरसवें दिन सत्यवान काल के गाल में चला जायगा।

राजा बहुत व्याकुल हुए। मंत्री के और सभासदों के मुखमण्डल पर मानो खेद की कालिमा छा गई। राजा ने कहा—"देवर्षि! अब इसका क्या उपाय है?" देवर्षि ने कहा—"और उपाय क्या है? सावित्री को दूसरे पुरुष से व्याह दीजिए।" इस विषय में मुसाहिबों के बीच अनेक प्रकार की उलटी-सीधी चर्चा हुई।

इतने में दरबार से महल में जाने के दरवाज़े पर नूपुर की ध्वनि सुन पड़ी। राजा ने देखा कि वहाँ सावित्री आ रही है।

सावित्री ने दरबार में आकर सबसे पहले अग्नि के समान तेजस्वी मुनिवर को प्रणाम किया; फिर पिता के चरण छूकर मंत्री और

मुसाहिबों को अभिवादन किया। राजा ने बड़े आदर से बेटी को निकट बिठाकर मन्द स्वर से कहा—"बेटी! रास्ते में थकावट तो नहीं मालूम हुई?" सावित्री ने कहा—"नहीं बाबूजी! मैं बड़े आराम से थी। मंत्रीजी के आदर से, दाई के यत्न से, और दास-दासियाँ मन-लायक़ होने से मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ। नित्य नये-नये स्थानों की सहज शोभा देखकर मैंने अपने को कृतार्थ किया है; किन्तु बाबूजी! बीच-बीच में आप लोगों के लिए मेरा जी उचट जाता था।" राजा ने गद्गद स्वर से कहा—बेटी! मैं भी तुम्हारे अमंगल की कल्पना करके मन ही मन घबराता था।

सावित्री ने राजा की आँखों में आँसू और उनके चेहरे पर उदासी देखकर घबराहट से पूछा—"बाबूजी! आज आप ऐसे उदास क्यों हो रहे हैं? जब आप मुझे प्राण से भी बढ़कर प्यार करते हैं, और मुझे देखने से आपका सब दुःख दूर हो जाता है तब आप मुझे निकट देखकर भी क्यों आँसू ढाल रहे हैं?" राजा अश्वपति ने ज़रा सँभल-कर कहा—बेटी, मेरी आँखों की पुतली! देवर्षि के मुँह से तुम्हारे भविष्य जीवन की भयानक बात सुनकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। मुझे चारों ओर अन्धकार दिखाई देता है।

राजा की इस खेद-भरी बात को सुनकर सावित्री गहरे सन्देह में पड़ गई। वह व्याकुल होकर बोली—बाबूजी! आपने देवर्षि के मुँह से मेरे भविष्य-जीवन की ऐसी कौनसी दुःखदायक बात सुनी है? बताइए। अगर इस समय उसके मेटने का कुछ उपाय हो तो उसके लिए उपाय कर सकती हूँ।" यह सुनकर राजा को कुछ ढाढ़स हुआ।

यह जानकर देवर्षि को भी कुछ विषाद सा हुआ कि 'सावित्री अपने भविष्य-जीवन की अवस्था बदलने का उपाय करेगी।' उनको आशङ्का हुई कि मैंने जिस कठिन परीक्षा के लिए आज वेदमाता

सावित्री देवी के अंश से उत्पन्न मद्र-नरेश की बेटी के भविष्य-जीवन का भयानक चित्र दिखाया है उस परीक्षा में पिता के कहने से, या अपने मतलब से, राजकुमारी कहीं फिसल न जाय। देवर्षि बड़ी उत्कण्ठा से बैठे रहे।

राजा ने कहा—बेटी! सब प्रकार से बड़ों का मान रखना ही बेटे और बेटी को उचित है। तुम मेरी सुशील बेटी हो। आशा है, मेरी बात को अच्छी तरह समझकर तुम उसके अनुसार काम करोगी। तुमने वशिष्ठाश्रम में शाल्वराज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान को देखा है। सत्यवान रूप, गुण, कुल और शील में यद्यपि तुम्हारे योग्य है तथापि एक दोष से सब अनर्थ हो गया। मिलन के पास ही अशुभ की छाया है।

सावित्री ने विनीत स्वर से पूछा—बाबूजी! आप इसमें क्या अशुभ देखते हैं?

राजा—बेटी! देवर्षि कहते हैं कि सत्यवान आदर्श पुरुष होने पर भी अल्पायु है—सत्यवान की आयु आज से ठीक एक वर्ष भर की है।

यह सुनकर सावित्री का कलेजा काँप गया। उसका चेहरा उतर गया। यह सोचकर सावित्री और भी व्याकुल हुई कि मेरे ही इस अमङ्गलमय भविष्य चित्र को देखकर राजा व्याकुल हुए हैं।

विकट परीक्षा है। राजकुमारी का आज का कथन भविष्य में स्त्रियों के सामने सोने के अक्षरों के रूप में बना रहेगा। देवर्षि सोचने लगे कि वेद-माता सावित्री की वरपुत्री, यह मद्रराज की बेटी, किस तरह सतीधर्म को निबाहेगी, कैसे इस भयंकर परीक्षा में उत्तीर्ण होगी।

सावित्री देवी ने आगे होनेवाली स्त्रियों के लिए गौरव-जनक आदर्श रखने के लिए ही इस बालिका को उत्पन्न किया है। वह इस

राजकुमारी से ऐसा मुश्किल काम कैसे करावेगी ? यह राजकुमारी ही नारीत्व और मातृत्व का उज्ज्वल आदर्श बनेगी—आज इस बालिका की बात ही उनकी आशारूपी लता की जड़ में कुल्हाड़ी का या अमृत की धार का काम करेगी, इत्यादि सोचकर देवर्षि का मन ऊबने लगा।

अश्वपति ने दुखी होकर कहा—मैं जान-बूझकर ऐसे थोड़ी उम्रवाले पुरुष के हाथ अपनी प्राण से प्यारी लड़की को नहीं सौंप सकता।

दोनों ओर संकट है! एक ओर पिता की आज्ञा को उल्लङ्घन करना और दूसरी ओर सतीत्व का त्याग! इस दुहरी चिन्ता से सावित्री विकल हो गई। स्त्री को सतीत्व के त्याग से बढ़कर असम्भव काम और कुछ नहीं है, यह सोचकर सावित्री बड़ी मुश्किल में पड़ी।

सावित्री ने कहा—बाबूजी! मैंने आपकी बात को कभी नहीं टाला, मैंने आपके सामने कभी अपनी अलग राय प्रकट नहीं की। किन्तु एक बड़े कर्त्तव्य-ज्ञान के चक्कर में पड़कर आज आपसे निवेदन करना पड़ता है कि आप जो कहते हैं उसे मैं मंज़ूर नहीं कर सकती। पिताजी! आपने ही मुझसे कहा है कि 'स्त्री का चाल-चलन तेज़ छुरी की धार पर है। एक ही को भजनेवाली स्त्री गङ्गा की धार के समान पवित्र है। हर एक नारी जगन्माता की प्रेम-सुधा में सनी भोली-भाली जननी है, संसार में नारी ही भगवान् की बढ़िया सामग्री है।' पिताजी! मैं क्या आप सरीखे आदर्श देवता की लड़की होकर, पतिव्रताओं में श्रेष्ठ मालवी देवी के गर्भ से पैदा होकर, नारी के ऊँचे अधिकार से ठगी जाऊँगी? क्या आप प्रेम की दृष्टि से अन्धे होकर मेरा इस प्रकार नीचे गिरना देख सकेंगे?

"सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद् वृतो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते ।
क्रियते कर्म्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥"

अर्थात् हिस्सेदारी, कन्यादान और वाक्यदान ये तीनों एक ही बार होते हैं, इसमें फिर दुहराने की आवश्यकता नहीं रहती। दीर्घायु हो चाहे अल्पायु, गुणवान् हो चाहे गुणहीन, जिसको एक बार पतिभाव से वरण कर चुकी, महाराज ! फिर उसमें दूसरी बात होने की नहीं। जिसका अधिकार मेरे हृदय पर एक बार जम गया, वह किसी प्रकार हट नहीं सकता। किसी बात का निश्चय पहले मन ही से होता है, फिर पीछे से वह वचन द्वारा बाहर होता है; इसके बाद काम के ज़रिए किया जाता है। इसका सुबूत मेरा मन है। जिसको मैं अपना हृदय एक बार दे चुकी, उससे उस दी हुई वस्तु को लौटा लेना भयंकर अन्याय है। सतीत्व-धर्म का अपमान करना स्त्रियों के लिए भारी पाप है। सतीत्व-धर्म के आगे मैं अपने जीवन को भी तुच्छ समझती हूँ।

सावित्री की इन बातों को सुनकर देवर्षि का हृदय प्रसन्न हो गया। उन्होंने देखा कि बचपन से सुख-विलास में पली होने पर भी फूल सी सुकुमार सावित्री का हृदय कर्त्तव्य के लिए कठोर है; उन्होंने देखा कि सावित्री जीवन में आनेवाले अशुभ को गले से लगाने के लिए मुस्तैद है। सावित्री की उस स्वाभाविक कोमलता में ऐसी मज़बूती देखकर देवर्षि प्रसन्न हुए। वे समझ गये कि कोमल-बालिका एकनिष्ठा के बल से अशुभ के अन्धकार में शुभ की किरण पहुँचाकर सतीत्व के इतिहास में एक नया युग ला देगी।

मद्रराज, कुछ ही दिन में होनेवाले, सावित्री के अन्धकार से सने हुए रँड़ापे के जीवन को सोचकर चारों ओर अँधेरा देखने लगे। वे सोचने लगे कि इस आनन्द की मूर्ति बालिका को जान-बूझकर ऐसे दुःख के भयानक समुद्र में कैसे ढकेल दूँ। अन्त में उन्होंने कातर होकर कहा—बेटी सावित्री! मेरे स्नेह की सावित्री! ऐसे भयंकर संकल्प को छोड़ दो। मैं तुम्हारे हँसते हुए चेहरे को विषाद से मुरझाया हुआ नहीं देख सकता। मुझे वह शोकमय दृश्य मत दिखाओ। फिर तुम्हारे लिए अभी तो वाग्दान भी नहीं हुआ है। लड़की बचपन में मा-बाप के अधीन है, इसलिए तुम किसी को मन नहीं सौंप सकती। तुम्हें तो वह अधिकार ही नहीं।

सावित्री ने कहा—पिताजी! मैं अबोध बालिका हूँ। मेरी बुद्धि ही कितनी सी है; इस विषय में कोई दावपेंच लड़ाने की शक्ति मुझमें नहीं। परन्तु एक निवेदन है कि आप लोगों की आज्ञा से ही तो मैंने पति को ढूँढ़ा है। मैंने जिनको हृदय का देवता मान लिया है वही मेरे जीवन के एकमात्र आधार हैं। चाहे उनकी उम्र थोड़ी हो चाहे बहुत, इसका विचार करना अब सती-धर्म के विरुद्ध है। पिताजी! क्षमा कीजिए, मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिए। आप मेरे हृदय के देवता की आयु सिर्फ़ एक वर्ष की और बताते हैं; मैं कहती हूँ कि एक वर्ष तो बहुत अधिक है, यदि उनकी आयु एक ही दिन की हो तो भी उनके ऊपर से मेरा प्रेम घटाना मुश्किल है। पिताजी! यदि मैं अपने जीवन के देवता को इस ज़िंदगी में प्रेम देकर सुखी कर सकूँगी तो वे अवश्य ही मृत्यु के उस पार जाकर मेरे हृदय की भक्ति और अनन्य विश्वास पाकर तृप्त होंगे। प्रेम की पूजा ही स्त्री का श्रेष्ठ व्रत है। एकनिष्ठा स्त्री पवित्रता की बिना सूँघी हुई फूलमाला है। संसार की मामूली ज़िंदगी के मोह में पड़कर, क्या मैं मन चाहे पति की पूजा छोड़कर भ्रष्ट-

विलास का कुसुम बनूँगी ? देखो बाबूजी ! देवलोक में जिस फूल की शोभा है उसको भूमि की धूलि में लपेटकर मलिन करने की आज्ञा मत दीजिए। फिर यह भी देखिए कि कुछ मृत्यु ही तो जीवन का अन्त है नहीं। आपके ही मुँह से सुना है कि मृत्यु के बाद अमर-लोक में स्त्री-पुरुष का वह मिलन होता है जिसका फिर वियोग ही नहीं। उस राज्य में न पाप है, न ताप है, और न वासना की तीक्ष्ण ज्वाला ही है। वहाँ निरी शान्ति है—केवल तृप्ति है। पिताजी ! मेरे हृदय-देवता यदि एक वर्ष के बाद, इस पृथ्वी को त्यागकर, अमर-लोक में चले जायँगे तो मैं अवश्य ही जीवन के अन्त में उन महा-पुरुष से जाकर मिलूँगी। पिता ! इस बात का मुझे भरोसा है। उस पवित्र राज्य में विधाता की दाल नहीं गलती। उस राज्य में हम लोगों का विरह नहीं होगा। इसलिए मुझसे ऐसा न कहिए।

बेटी की बात सुनकर राजा अश्वपति सब समझ गये। उनके हृदय से खेद के बादल उड़ गये। कर्तव्यरूप सूर्य की किरणें पड़ने से उनका हृदय साफ़ हो गया। उन्होंने लड़की की इस निष्ठा पर प्रसन्न होकर कहा—बेटी ! तुम मेरी तत्त्वज्ञानवाली और स्थिरबुद्धि की लड़की हो। दुनियावी ज़िन्दगी की दुःख-दुर्दशा सोचकर अब तुमसे मैं वैसा नहीं कहूँगा। बेटी ! विषाद को छोड़ो। तुम्हारी वासना बहुत जल्द पूरी होगी।

अभी तक नारदजी चुपचाप बैठे-बैठे बाप-बेटी की बातचीत सुनते थे। सावित्री के पातिव्रत को और अश्वपति की उदारता को देख-कर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। उनकी करताल झनझना उठी मानो वह अपूर्व झंकार संसारी कोलाहल को त्यागकर संगीत से गूँजनेवाले देवलोक में जा पहुँची।

देवर्षि ने कहा—महाराज ! आपकी इस सुन्दर कन्या की

भीतरी सुन्दरता से यह पृथ्वी पवित्र होगी। मैं दिव्य दृष्टि से देखता हूँ कि आपकी यह कन्या पवित्रता की पुतली है। उसके पास अशुभ नहीं आ सकेगा। मद्रनरेश ! जैसे सूर्य की किरण के पास अन्धकार नहीं आ सकता वैसेही इस अलौकिक सतीत्व की किरणों से शोभित देवी के पास कोई संसारी-कालिख नहीं आवेगी। और, यह पवित्रता-रूपी गङ्गा की धारा पर्वत के समान भारी बाधा को न मानकर शान्त, उदार और विशाल महासागर में ही मिलेगी।

यह कहकर देवर्षि ने सावित्री को प्रेम-पूर्वक सम्बोधन कर कहा—बेटी! मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे सतीत्व की शोभा बनी रहे और तुम भविष्य में स्त्रियों के लिए सुन्दर आदर्शरूप बनी रहो। वत्से! सनातन हिन्दू-धर्म के इतिहास में तुम्हारी कीर्तियुक्त कथा सोने के अक्षरों में लिखी रहेगी।

महर्षि प्रसन्न होकर वीणा बजाते हुए ब्रह्मलोक को चले गये।

राजा अश्वपति ने लड़की को आदर से पास बिठाया। सभासद लोग सावित्री की एकनिष्ठा पर धन्य-धन्य करने लगे। राजा अश्वपति ने समय अधिक बीता जानकर दरबार उठने की आज्ञा दी। उस अपूर्व तेजवाली लड़की के साथ वे राज-महल को चले गये।

[६]

महारानी मालवी देवी आज दरबार उठने में इतनी देरी देखकर सोच में पड़ गई थीं। उन्होंने अचानक राजा और प्राण से प्यारी बेटी को सामने देखकर पूछा—महाराज! आज दरबार में इतनी देर क्यों हुई?

राजा—रानी! आज देवर्षि नारद दरबार में पधारे थे। उनसे सावित्री के ब्याह के बारे में बातचीत होती थी। इसी से इतनी देर हो गई।

यह कहकर राजा रानी को सब बातें सुना गये। रानी ने हर्ष से सावित्री का मुँह चूमकर कहा—बेटी ! तुम्हारे समान बेटी को पैदा कर मैं अपने को धन्य मानती हूँ। तुम्हारी वासना अधूरी नहीं रहेगी। तुम देवलोक की ब्रह्माणी के आशीर्वाद से उत्पन्न हुई हो। बेटा ! तुम्हारे स्वर्गीय प्रेम की सुधा से पृथ्वी शीतल हो।

सावित्री सिर नवाये खड़ी रही। राजा ने मन ही मन कहा—मैं धन्य हूँ; देवी के समान पत्नी और पवित्रतारूपिणी बेटी की पवित्र दृष्टि से मैं धन्य हो गया।

राजा ने कहा—रानी ! राजर्षि द्युमत्सेन इस समय वनवासी हैं। इससे वे इस समय राजसी ठाट-बाट से बेटे का ब्याह करने मद्रराज्य में नहीं आ सकेंगे। मैंने सोचा है कि कुछ सेवकों और प्रधान पुरोहितजी सहित राजर्षि द्युमत्सेन के आश्रम में मैं ही जाकर सावित्री को सत्यवान के हाथ में सौंप आऊँ।

रानी ने सम्मति दी। राजा अश्वपति सत्यवान से सावित्री का शुभ-विवाह करने के लिए वशिष्ठ-आश्रम में उपस्थित हुए।

राजर्षि द्युमत्सेन ने राजा अश्वपति का आदर से स्वागत करके कहा—मद्रराज ! आप कृपा करके मेरे आश्रम में पधारे हैं, इससे इस आश्रम का गौरव बढ़ा है। अभाग्य से मैं अन्धा हूँ। आपकी पवित्र मूर्ति मुझे नहीं दिखाई देती, किन्तु मैं भीतरी नेत्रों से आपकी सुन्दर मूर्ति को सदा देखा करता हूँ।

इसके बाद राजर्षि ने राज्य का कुशल-मङ्गल पूछकर कहा—आपकी लड़की उस दिन मेरे आश्रम में आई थी। वह स्त्री-रूप में साक्षात् देवी है। उसके शास्त्र-प्रेम और नम्र व्यवहार ने मुझे मोहित कर लिया है। मेरी स्त्री कहती है कि मनुष्य में इतनी सुन्दरता नहीं

हो सकती। गुण में भी वह सरस्वती के समान है। मद्रराज! राज-कुमारी अच्छी तरह से तो है न?

यह सुनकर राजा ने हर्षपूर्वक कहा—आप लोगों की कृपा से राज्य में सब कुशल-मङ्गल है। मेरी लड़की भी भली-चङ्गी है।

इस प्रकार दोनों में बहुतसी बातें हुईं। अन्त में राजा अश्वपति ने कहा—राजर्षि! कृपा कर मेरी उस कन्या को आप पुत्र-वधू रूप से ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिए।

राजर्षि द्युमत्सेन ने कहा—मद्रराज! यह शुभ सम्बन्ध है और सब तरह से श्रेष्ठ है। किन्तु एक बात मैं बड़ी बेमेल देखता हूँ। न तो मेरे पास अब राज्य है और न धन। राजसी सुखों में पली हुई वह मनोहर बालिका वनवासिनी कैसे होगी?

राजा ने कहा—आपको उसकी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। इस थोड़ीसी उम्र में ही सावित्री ने जो कुछ सीखा है उसकी तुलना नहीं हो सकती। सुख-दुःख उसके आगे एक से ही हैं। वह दोनों को विधाता की रचना समझती है। मेरी लड़की निवृत्ति की मूर्त्ति है। राजर्षि! उसके शास्त्र-ज्ञान को देखकर मुझे स्वयं अचरज होता है। राज-महल में ऐश्वर्य के बीच पलकर भी मेरी लड़की व्रत करनेवाली योगिनी है। उसकी इस योग-साधना की जड़ में कौनसा शुभ उद्देश्य है सो हम थोड़ी अक्लवालों की समझ में नहीं आता।

राजर्षि ने कहा—महाराज! मैं एक ही दिन में सावित्री के गुणों को पहचान गया हूँ। मेरी स्त्री को सावित्री का रूप और गुण बहुत पसन्द है। किन्तु उस कोमल स्वभाववाली सरला बालिका के भविष्य-जीवन की याद करके मैं सम्मति नहीं दे सकता। राजन्! खिले हुए फूल में काँटा छेदना कौन चाहेगा?

यह सुनकर अश्वपति ने कहा—राजर्षि! मैं तो पहले ही कह

चुका हूँ कि मेरी लड़की ऐश्वर्य में रहकर भी योगिनी है। वह जान-बूझकर राजसी सुखों से दूर रहना चाहती है। और आपका अभाग कैसे है? संसारी धन से क्या हृदय का धन क़ीमती नहीं है! जब आप का हृदय ब्रह्मानन्द से भरा हुआ है तब आपको धन की क्या कमी है? हे ब्रह्मज्ञानी! भ्रम के गाढ़े अँधेरे में बिना ठौरवाले मुझको भटकाइए मत। आपका हृदय देवता का सिंहासन है और मेरा हृदय कामना का छोटा-सा कोठा। फिर भी आपसे निवेदन है कि बुरे स्थान में उत्पन्न होने से क्या लोग मणि का अनादर करते हैं? या कीचड़ में उगने के कारण कोई कमल से घृणा करता है? मेरी सुशील कन्या आपकी योग्य पुत्र-वधू होगी और हे राजर्षि! वह आपके भाग्यवान् पुत्र सत्यवान को चाहती भी है।

यह सुनकर राजर्षि द्युमत्सेन के हृदय में आशा की नई किरणें जगमगा उठीं। मानो वे उस भावी पुत्र-वधू की देवी जैसी मूर्ति को प्रेम की दृष्टि से देखने लगे। मद्रराज की अनोखी दीनता और शिष्टाचार से ख़ूब सन्तुष्ट होकर राजर्षि अब नाहीं न कर सके।

इस प्रकार आपस की बातचीत हो लेने पर राजा अश्वपति ने कहा—राजर्षि! मैं और एक बात कहना भूल गया। मेरी इच्छा है कि मेरी आदर्श लड़की का यह आदर्श मिलन इस पवित्र पुण्य-तीर्थ तपोवन में ही हो, क्योंकि गङ्गा की धारा आप ही जाकर महासागर को आत्मसमर्पण करती है।

राजा द्युमत्सेन ने बहुत सोच-विचारकर सब मंज़ूर कर लिया।

[७]

राजा अश्वपति सावित्री के साथ सत्यवान का ब्याह कर देने के लिए वशिष्ठाश्रम में गये। राजमहल में ब्याह होने पर जैसी धूमधाम होती वैसी धूमधाम से तो राजा अश्वपति, मुनि के आश्रम में, शान्ति-

भङ्ग होने के डर से तपोवन में गये नहीं, फिर भी मद्रराज की प्रजा के आग्रह से तपोवन की यात्रा बहुत मामूली भी नहीं हुई। राजकन्या सावित्री का व्याह है, प्रजा सावित्री को बहुत प्यार करती है। इसलिए राजा की इच्छा न होने पर भी पुरवासी लोग राजकुमारी के व्याह में राजा से पहले ही वशिष्ठाश्रम में पहुँच गये।

अश्वपति ने शुभ मुहूर्त्त में ऋषि-वेषधारी सत्यवान के हाथ में सावित्री का दान किया। उस कन्यादान के दिन अनेक प्रकार का और भी दान हुआ। राजा ने विद्यार्थी ऋषि-कुमारों को राजसी ढंग का पक्वान्न, और ऋषि-पत्नियों तथा ऋषि-बालकों को क़ीमती वस्त्र और आभूषण दान किये। नगर-वासिनी स्त्रियों ने मुनि-कुमारों और ऋषि-पत्नियों को वस्त्रों तथा अलङ्कारों से सजा दिया। उन लोगों की पवित्र देहों में सिंगार-पटार बड़ी शोभा देने लगा। आश्रमवासी मुनि लोग राजा के इस कन्यादान-सम्बन्धी दान से बहुत सन्तुष्ट होकर दोनों हाथों से दूलह-दुलहन को आशीर्वाद देने लगे।

राजा अश्वपति कुछ दिन वहीं रहे, फिर वे तपोवन-वासी मुनियों को दण्डवत् करके डबडबाई हुई आँखों से बेटी और दामाद के पास से बिदा हुए। मुनि लोग राजा के नम्र-व्यवहार से सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देने लगे। जब मद्रराज तपोवन से बिदा हो गये तब वह तपोवन सूना सा मालूम होने लगा।

माता-पिता के विरह से व्याकुल होकर भी सावित्री अपना कर्त्तव्य नहीं भूली। राजकुमारी सावित्री ने सोचा कि अब मैं ऋषि की पत्नी हूँ इसलिए मुझे राजसी वस्त्र और अलंकारों की क्या ज़रूरत है? इसलिए उसने पिता के दिये हुए वस्त्रों और आभूषणों को उतारकर ऋषि-पत्नियों के योग्य गेरुए वस्त्र पहन लिये। सत्यवान की माता शैव्या देवी, नई बहू के सिंगार-पिटार में इस प्रकार तबदीली देखकर, एक ओर

तो बहुत दुखित हुई और दूसरी ओर जन्म से राजमहल में पली हुई सावित्री का इस प्रकार आत्मत्याग देखकर आनन्द के आँसू बहाने लगी।

सावित्री सबेरे उठकर घर का सब काम-काज करती थी। उसकी तत्परता से कुटी के द्वार साफ़-सुथरे, आँगन झक-झक और सारा तपोवन सजा हुआ सा रहने लगा। सावित्री ने धरती पर गिरी हुई लताओं को वृक्षों की डालियों से बाँध दिया और वह सुबह-शाम उनको जल से सींचने लगी। सारांश यह कि सावित्री के ऐसे अनुराग से थोड़े ही दिनों में तपोवन की अपूर्व शोभा और भी बढ़ गई।

तपोवन में रहनेवालों ने देखा कि राजकुमारी सावित्री मानो साधना की पवित्र मूर्त्ति है। हर बात में सिद्धि तो उसकी बाट सी देखती रहती है। सावित्री की सेवा से गाय और अधिक दूध देने लगी। बछड़ा भी थन से अधिक दूध पीकर फुर्तीला हो गया। द्युमत्सेन और उनकी स्त्री ने सावित्री देवी की परिचर्या से नया बल पाया। एक उम्र की ऋषि-पत्नियाँ सावित्री से बहनपा जोड़कर प्रसन्न हुईं। मुनियों ने सावित्री के अपूर्व शास्त्र-ज्ञान और धर्मप्रेम को देखकर समझा कि वह कोई मामूली स्त्री नहीं है। सावित्री अब सत्यवान की रसीली संगिनी, सास-ससुर की भक्ति करनेवाली दासी, ऋषि-पत्नियों की हँसमुखी सखी, मुनि-कुमारों की प्रेम-मयी धाई, तपोवन की लताओं और वृक्षों के लिए साक्षात् वसन्त ऋतु, जंगली पशु-पक्षियों के लिए करुणा और अतिथि असहाय जनों की स्नेह से पसीजनेवाली माता है। ऐसी सावित्री को, बहू के रूप में, पाकर अन्धे राजा द्युमत्सेन और उनकी पत्नी सोचतीं कि सावित्री हमलोगों को, इस दीन दुर्दशा में, विधाता का एकमात्र स्नेह से भरा आशीर्वाद है।

इस प्रकार, सावित्री ने तपोवन में एक प्रेम के राज्य को जमाया। उस राज्य का राजा सत्यवान है, अन्धे ससुर और सास उस राज्य

के देवी-देवता हैं और वह भक्ति तथा प्रीति करनेवाली सावित्री उस नये राज्य की स्नेह-कोमल रानी है, जो दोनों हाथों से कल्याण और ममता बाँट रही है।

रास्ते में, पहली मुलाक़ात के पवित्र मुहूर्त्त में, सत्यवान ने सावित्री के जिस अनुपम रूप को देखा था, देखा कि वह रूप यौवन का निरा विकास ही नहीं है, बरन सावित्री की भीतरी सुन्दरता ने ही बाहरी रूप को इतना अधिक उज्ज्वल बना दिया है। सत्यवान सावित्री जैसी पत्नी को पाकर हृदय में मानो दूना बल पा गया। शास्त्र कहता है कि साध्वी पत्नी स्वामी के हृदय का बल है; ममता का जीता-जागता चित्र है और वह सौभाग्य की दूती है। राजकुमारी सावित्री के पवित्र प्रेम से सत्यवान शान्त वन की भूमि में नवीन प्रेम-राज्य देखने लगा। उसने देखा कि इस आश्रम की स्वाभाविक शोभा सावित्री के रूप से ख़ूब मधुर हो गई है। राजकुमारी सावित्री की प्रेमरूपी भेंट पाकर सत्यवान के हृदय में नया बल आ गया। सत्यवान ने सोचा कि मैंने पूर्व जन्म में कितना सुकर्म किया है जिसके फल में सावित्री की सी सुन्दर पत्नी मिली है। सत्यवान सोचता कि बचपन से ही भोग-विलास में पली हुई सावित्री मेरे जीवन की संगिनी होकर पुरानी आदत के अनुसार भोग-विलास की चीज़ें ढूँढ़ेगी, किन्तु अब उसने देखा कि सावित्री तो प्रेम से सने हुए हृदयवाली वनवासिनी योगिनी है। सत्यवान ने सोचा कि इतने दिन तपस्वियों के सत्संग में रहने पर भी मैं जिस बात को नहीं सीख पाया उसी को राजकन्या सावित्री ने राजमहल के भीतर ही सीख लिया है। तपोवन की शान्त शीतल शोभा में मैंने जो वस्तु नहीं पाई उस वस्तु को सावित्री राजमहल में ही पा गई है; अब समझ में आया कि हृदय की वस्तु केवल तपोवन ही में नहीं है। उसे प्राप्त करने के लिए पहले हृदय को उसके योग्य बनाना पड़ता है। सत्यवान



सत्यवान—सावित्री ! उस वन के रास्ते में, पवित्र मुहूर्त्त में, तुमने इस अभागी को प्रेम की नज़र से क्यों देखा था ?—पृ० ६३

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

ने मन ही मन कहा कि विधाता ने मुझे कुछ और सिखाने के लिए सावित्री को मेरे हाथ सौंपा है। सावित्री, विधाता का दिया हुआ, स्त्री-रूपी एक रत्न है।

एक दिन सत्यवान ने एकान्त में सावित्री को देखा। नीले आकाश के नीचे, नदी किनारे, दोनों एक शिला पर बैठ गये, सत्यवान ने सावित्री का कोमल हाथ पकड़कर कहा—हे दरिद्र का धन, सावित्री! जब अपनी ग़रीबी की काली छाया में तुम्हारे प्रसन्न मुख को म्लान देखता हूँ और जब आश्रम के धूल-धक्कड़ से तुम्हारे केशों को मलिन देखता हूँ तब मैं मन में सोचता हूँ कि तुमने मुझे वर कर अच्छा नहीं किया। ख़ुशबूदार फूल देवता ही के गले में शोभा पाता है। यह कौस्तुभमणि दरिद्रता से ग्रसे अभागे के गले में क्योंकर शोभा पावेगा? सावित्री! उस वन के रास्ते में, पवित्र मुहूर्त्त में, तुमने इस अभागे को प्रेम की नज़र से क्यों देखा था?

सावित्री ने अनखाकर कहा—नाथ! स्त्री के हृदय को पुरुष नहीं समझ सकते। रमणी के हृदय में तो वासना की, विश्व को भी ग्रसनेवाली, ज्वाला नहीं है। स्त्री विश्वास से भरी हुई पवित्रता है। वह विधाता की मर्ज़ी से पवित्र-हृदयवाले पुरुष के हृदय में मिल जाती है। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! आपके हृदय में मेरे हृदय के देवता ने आनन्द का एक बाग़ देखा था, इसी से वह आपको पाकर तृप्त हो गया, उसकी कामना पूरी हो गई। नाथ! आप ऐसी कठोर बात कहकर मेरा जी क्यों दुखाते हैं? प्रेम कुछ धन-दौलत नहीं चाहता, वह तो सुध-बुध भुलानेवाले प्यार को चाहता है। दो हृदयों को ऐसे बन्धन में बाँध देना ही उसका मुख्य काम है कि जो कभी न टूटे। आर्य्यपुत्र! आप पण्डित हैं, आपने शास्त्रों को पढ़ा है और मैं बिना पढ़ी-लिखी हूँ। भला आपको प्रेम की महिमा मैं क्या समझाऊँगी? मैं आपको

पाकर संसार की और किसी भी चीज़ की परवा नहीं करती। आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष को पाने से मुझे धन की बिलकुल कमी नहीं है। स्वामी के चित्त को रिझाने ही के लिए स्त्री के सिंगार-पटार की ज़रूरत होती है। आप जब मुझको इतना अधिक प्यार करते हैं, तब मुझे सिंगार-पटार करने की कोई ज़रूरत नहीं। पृथ्वी के जल से प्रेम की प्यास नहीं बुझती। स्वर्ग के अमृत की बूँद को पीने से ही वह प्यास बुझती है। आकाश को चूमनेवाले बड़े ऊँचे-ऊँचे राजमहल में शान्ति नहीं है; शान्ति है संसार के बाहर, लोगों की भीड़ से दूर—जन-विहीन तपोवन में। नाथ! आपके इस सुन्दर मुख को देखकर ही मेरे हृदय की प्यास बुझ गई है। आपका पवित्र संग मेरे लिए राज-सुख है। आपका प्रेम से पवित्र हृदय ही मेरे लिए बढ़िया राजसी पलँग है। मुझे कमी किस बात की है? आप जिन फूलों को बड़ी हिफ़ाज़त से मेरे लिए ले आते हैं वे फूल ही मेरे लिए जड़ाऊ ज़ेवर हैं। आप के दिये हुए देवताओं के जूठे फल-मूल ही मेरे लिए राजभोग हैं। आपकी मीठी वाणी मेरे लिए अमृत से भी बढ़कर है। आपके ऐसे ऊँचे हृदयवाले स्वामी को पाकर मैं इन्द्राणी से भी अपने को अधिक भाग्यवान् समझती हूँ।

सावित्री के मुँह से ऐसे मधुर वचन सुन सत्यवान ने उससे प्रेमपूर्वक कहा—सावित्री! क्षमा करो। मैं फिर कभी तुमसे ऐसी बात नहीं कहूँगा।

इस प्रकार आदर और मान से सावित्री के दिन बीतने लगे। सावित्री अपने हृदय की व्यथा को हृदय में ही दबाकर प्रसन्न मुख से सब काम करने लगी।

वसन्त का समय है। वसन्ती शोभा से प्रकृति की खिलवाड़ का बाग़ सुरीले कण्ठवाले पक्षियों की तान से गूँज रहा है। मंजरियाँ वसन्त के सुहावने स्पर्श से खिल गई हैं। जहाँ देखो वहाँ वसन्त ही

वसन्त है। वसन्त की ऐसी सुन्दर चटकीली रात में एक दिन सत्यवान अचानक नींद से उठ बैठा। उसने देखा कि घर के एक छेद से चाँदनी भीतर घुसकर सावित्री के मुँह पर खेल रही है। सत्यवान चाँदनी से चमकते हुए सावित्री के मुख की शोभा को एकटक देखने लगा। उसके हृदय में आनन्द का तूफ़ान उठने लगा। सत्यवान की एक प्रेम-घटना से सावित्री की नींद टूट गई। उसने देखा कि स्वामी एकटक मेरे मुँह की ओर देख रहे हैं। तुरन्त की जागी हुई प्रियतमा की अलसाई हुई आँखों में सत्यवान किसी नये लोक के रूप को देखकर मगन हो गया। वसन्ती रात की चाँदनी में निर्जन तपोवन की मलय वायु से शीतल कोठरी में नये दम्पती आज एक-दूसरे के प्रेम में डूबे हुए हैं।

सत्यवान ने, बड़े प्यार से सावित्री की ठुड्डी को हाथ से छूकर, कहा—देखो सावित्री! चाँदनी से वन कैसा सुहावना लगता है। उससे भी बढ़कर सुहावनी हो गई है इस दीन की कुटी, जिसमें हे आनन्दमयी! तुम आनन्द की बाढ़ ले आई हो।

सावित्री ने, अपनी अलसाई हुई देह को सत्यवान की देह से सटाकर, कहा—शायद, इसी से आज, आप आनन्द की धारा में बहते-बहते अचानक किनारा पा गये हैं।

सत्यवान इस दिल्लगी से बहुत प्रसन्न होकर बोला—"प्राणप्यारी! तुमको पाकर मैं धन्य हो गया हूँ—तृप्त हो गया हूँ। देवी! तुम ममता की साक्षात् मूर्त्ति हो। तुम्हारे हृदय की सुन्दरता ने मेरी सब कमी दूर कर दी है। तुम्हें पाने से, मेरे हृदय में, एक नया बल आ गया है।" सावित्री ने बीच ही में रोककर कहा—नाथ! तपस्वीजी की, रात की, क्या यही उपासना है? क्या आप पत्नी का गुण गाकर हृदय के देवता को जगा रहे हैं?

सत्यवान ने लजाकर कहा—देवी ! इस रात में प्यारी की अलसाई हुई आँखों से निकले हुए प्रेम के आँसुओं में नहाने से ही प्रेम-देवता की पूजा होती है। देवी ! इसी पूजा से हृदय अघा जाता है, इसलिए देवता की भी तृप्ति होती है। तुम क्या मुझको झूठा पुजारी समझती हो ?

सावित्री ने कहा—अजी मेरे हृदय-मन्दिर के पुजारी ! अब यह श्लोक पढ़ना बन्द करो। रूप की व्याख्या से स्त्री का आदर नहीं बढ़ता। नारी का रूप शरीर में नहीं है, वह तो हृदय में है। मुझे हृदय के उसी रूप को पहचानना सिखलाइए। हृदय की सुन्दरता तो सिंगार-पटार से मैली हो जाती है। फिर इस रूप का उतना मोह क्यों ?

सत्यवान ने ख़ुश होकर कहा—"देवी ! मैं तुमको क्या सिखाऊँगा ? तुम्हीं से मुझको बहुत कुछ सीखना है।" इस पर सावित्री लजा गई।

इतने सुख से रहने पर भी सावित्री का हृदय होनहार के डर से काँप उठता था; उसके सब कामों में वह, वर्षभर के बाद होनेवाली, घटना मानो भयानक दैत्य की तरह आकर हँसी करने लगती। उस फ़िक्र के मारे सावित्री दिन पर दिन दुबली होने लगी। सत्यवान ने और उसकी माता शैव्या ने भली भाँति देखा कि सावित्री की आँखों के कोनों में स्याही छा गई है और उसका सारा शरीर पीला पड़ चला है। बूढ़े राजर्षि द्युमत्सेन ने पत्नी के मुँह से पुत्र-वधू का यह हाल सुनकर एक दिन सावित्री से कहा—"बेटी ! मैंने सुना है कि दिन-दिन तुम्हारा शरीर दुबला होता जाता है। तुम न तो उमंग से वैसी हँसती-खेलती ही हो और न मुनियों की कन्याओं के साथ अब वन में घूमती-फिरती हो। बताओ, तुम्हारा चित्त ऐसा क्यों बदल गया है ? मैं समझता हूँ कि तुम अपने पिता और माता के बिछोह से दुखी हो। तुम सदा से सुख-विलास में रही हो, अब शायद घोर दीनता में पड़ने से इतना

कष्ट पा रही हो। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम कुछ दिन मायके में जाकर रहो।

सावित्री ने कहा—पिता जी! मुझे ऐसी आज्ञा मत दीजिए। मुझे कुछ कष्ट नहीं मालूम होता। आप लोगों की सेवा करना ही मेरा कर्त्तव्य है; और इसी में मुझे सुख है। जितने दिन जीती हूँ उतने दिन चरणों से अलग मत कीजिए।

राजा द्युमत्सेन ने प्रेम से कहा—हे मङ्गलरूपिणी सावित्री! तुम्हारे अशान्त हृदय को जगत् की माता शान्त करें। प्रेम-स्वरूप भगवान् का प्रेमरूपी अमृत तुम्हारे थके-माँदे जीवन को चैतन्य कर दे—तुम कल्याण और पवित्रता में विजय पाओ।

सावित्री प्रणाम करके अपने काम पर चली गई। शैव्या देवी के आने पर द्युमत्सेन ने कहा—"देखो, सावित्री पर घर का सब काम-काज मत छोड़ दो। मालूम होता है कि सावित्री आश्रम में हर घड़ी मेहनत करते-करते दुबली होती जाती है।" शैव्या देवी ने कहा—स्वामी! सुशीला सावित्री मुझे कोई भी काम नहीं करने देती। मैं कोई काम करने जाती हूँ तो वह मेरे हाथ से उस काम को लेकर खुद करने लगती और कहती है—'मैया! मैं आपको कोई काम नहीं करने दूँगी।' जो मैं उसकी बात नहीं सुनती तो वह आँखों में आँसू भरकर मेरी ओर ताकने लगती है। उसका उदास चेहरा देखकर मेरा जी न जाने कैसा हो जाता है। जब मैं काम छोड़ देती हूँ तब वह आनन्द से हँसती-हँसती उस काम को कर डालती है मानो सिद्धि सब कामों में उसकी बाट देखा करती है। नाथ! हम लोगों के बिछौने से उठने के बहुत पहले ही सावित्री उठकर घर का सब काम-काज कर रखती है। जब मैं बिछौने से उठती हूँ तब देखती हूँ कि

आश्रम में झाड़ू-बुहारू लग चुकी है—रास्ते के कंकड़-पत्थर हटा दिये गये हैं और धूल-धक्कड़ की सफ़ाई हो गई है। मेरी बहू साक्षात् लक्ष्मी है।

पत्नी के मुँह से यह बात सुनकर राजर्षि ने पूछा—तो क्या सत्यवान सावित्री को नहीं चाहता? क्या उस पर उसकी ममता नहीं है? साध्वी स्त्री के लिए पति का प्रेम न पाने से बढ़कर और कुछ कष्ट नहीं है।

शैव्या देवी ने कहा—मेरी समझ में ऐसा नहीं है। सत्यवान का सावित्री पर अत्यन्त प्रेम है और वह उसे हृदय से चाहता है, परन्तु मैं यह नहीं कह सकती कि विधाता सावित्री को अशान्ति की आग में क्यों इस तरह जला रहे हैं।

[८]

सावित्री बड़ी पण्डिता थी। उसने पिता के घर भरपूर शिक्षा पाई थी। इससे वह नित्य गिना करती और सोचा करती कि नारद का कहा हुआ वह दिन कब आवेगा जब कि एक वर्ष पूरा होगा। यह उसके रोज़ के कामों में से था। एक दिन उसने हिसाब लगाकर देखा कि उस दिन के आने में अब सिर्फ़ चार दिन बाक़ी हैं। देखते-देखते एक वर्ष बीत गया। सिर्फ़ चार दिन की कसर रह गई। इन चार दिनों के बाद अपने प्राणप्यारे स्वामी की होनेवाली अन्तिम दशा की याद कर सावित्री शोक से बिलकुल ही घबड़ा न गई। उसका हृदय कहने लगा कि सावित्री! डरो मत। तुम अपनी आत्मा के विश्वास पर मज़बूत बनी रहो; वही पक्के ज़िरहबख़्तर की तरह इस घोर संग्राम में तुम्हें सफलता देगा। सावित्री ने सोचा कि क्या निठुर यमराज मेरी सेज से मेरे स्वामी-देवता को छीन ले जायगा? पिता के मुँह से सुना है कि सती के सतीत्व से तो देवता भी डरते हैं। क्या मुझमें इतना भी बल नहीं कि मैं उस निठुर देवता की कठोर आज्ञा को तोड़ सकूँ? भाग्य के साथ मुझे लड़ना ही होगा।

राजा द्युमत्सेन को यह सुनकर अचरज हुआ कि सावित्री तीन रात तक व्रत करेगी। उन्होंने सावित्री को बुलाकर कहा—"बहू! तीन रात का व्रत बड़ा कठिन है। तुम इस संकल्प को छोड़ दो।" सावित्री ने कहा—पिताजी! जो आप लोगों के चरणों में मेरी अचल भक्ति होगी तो मैं अवश्य ही इस व्रत को पूरा कर सकूँगी।

राजर्षि ने कहा—"बेटी! तीन रातवाला व्रत बड़ा कठिन है। तीन रात तक अन्न और जल को छोड़कर यह व्रत करना पड़ता है। व्रत से और उपवास से तुम्हारा शरीर योंही दुबला हो गया है, अब इस कृच्छ्र-साधना की कोई ज़रूरत नहीं। देवता तो सिर्फ़ भक्ति चाहते हैं। उपवास से दुबले होने पर भक्ति नहीं बन पड़ती। इसलिए उससे देवता भी प्रसन्न नहीं होते।" सावित्री ने कहा—पिताजी! इस व्रत में मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। यह व्रत तो मुझे करना ही होगा। पिता! दुःखिनी दासी के हठ को क्षमा कीजिए। मुझे व्रत करने की आज्ञा दीजिए।

शैव्या देवी ने सावित्री की ठुड्डी पकड़कर प्रेम से कहा—"बहू! तुम्हारी कामना पूरी हो।" सावित्री ससुर और सास के पैर लगकर स्वामी की आज्ञा लेने के लिए पूजा में लगे हुए स्वामी के पैर छूने लगी। सत्यवान ने कहा—क्या यह मेरी विजयिनी है? मरते हुए की ज़िन्दगी में अमृत ढालनेवाली देवी! कैसे आई?

सावित्री ने कहा—नाथ! मैं कोई पक्का संकल्प करके तीन रात का व्रत करना चाहती हूँ। सास-ससुरजी ने तो कह दिया, अब मैं आपकी सम्मति लेने आई हूँ। आप मुझे आज्ञा दें।

सत्यवान ने सावित्री के माथे में होम का तिलक लगाकर और गले में देवता की उतरी हुई माला पहनाकर कहा—मङ्गलमयी! तुम क्या व्रत करोगी? तुम तो साक्षात् शुभ हो। तुम्हारे आने से

हम लोगों की सारी अशान्ति दूर हो गई है। तुम्हारे पैर रखने से तपोवन उस अमरावती के समान हो गया है जिसमें न बुढ़ापा है, न मौत। देवी! इस संकल्प को छोड़ दो। इस नये राज्य में तुम अमङ्गल का धोखा मत करो। तुम्हारे प्रभाव से अमङ्गल तो यहाँ से भाग ही गया है।

सावित्री ने कहा—नाथ! देहधारी जीव जन्म, बुढ़ापे और मृत्यु के अधीन हैं। जब हम लोग देहधारी हैं तब आधि-व्याधि तो हमें सदैव घेरे हुए ही हैं। इसलिए व्रत, उपवास और दान हम लोगों का सबसे मुख्य काम है। देव! आप इस दासी को शास्त्र की आज्ञा पालने से क्यों रोकते हैं?

अब सत्यवान ने हारकर कहा—"नहीं सावित्री! नहीं, मैं तुमको कभी रोकूँगा नहीं। तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।" सावित्री मन ही मन "तथास्तु" कहती हुई आश्रम-वासी और मुनियों के चरण छूकर उनसे आशीर्वाद ले आई।

[९]

व्रत करनेवाली सावित्री ने कठोर साधना में मन लगाया। एक दिन बीत गया, दूसरा दिन बीत गया और तीसरा दिन भी बीता। अब रात हुई। सावित्री को ख़बर नहीं है। व्रत में मग्न योगिनी के सामने बीस पहर बीत गये, तो भी उसको होश नहीं है। उसकी कठिन साधना से देवता का आसन डोल गया। वेद-माता सावित्री ने बेटी की इस अपूर्व भक्ति से बहुत प्रसन्न हो ब्रह्मा से जाकर कहा—भक्तों पर दया करनेवाले प्रजापति! यह देखो, वरदान से उपजी हुई मेरी बेटी ने स्वामी को बड़ी उम्र दिलाने की आशा से आँखें मूँद-कर तीन रातवाला व्रत शुरू किया है। मैं उस पर प्रसन्न हूँ। आज

वह व्रत के अन्त में जो निराश होकर अग्नि में आहुति देगी तो तुम्हारा यह जगत् भस्म हो जायगा। सती का तेज बड़ा भयंकर है। उस पति का मङ्गल चाहनेवाली की अभिलाषा किस तरह पूरी होगी?

ब्रह्मा ने कहा—"देवी! मद्रराज के दामाद की उम्र अब केवल एक दिन की और रह गई है। सत्यवान अपने ही कर्म के फल से इतनी थोड़ी उम्र लेकर उपजा है। देवी! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि कर्म के फल से ही भाग्य छिप जाता है। सावित्री के कर्म के फल से सत्यवान के भाग्य की गति पलट गई है। अब सत्यवान की उम्र ख़ूब बड़ी होगी। तुम राजकुमारी की कामना पूरी करो।" यह सुनकर ब्रह्माणी ने प्रसन्न हो पृथिवी पर आने के लिए ब्रह्मा से आज्ञा माँगी। ब्रह्मा ने कहा—"देवी! यह देखो, रात का पिछला पहर है। पृथिवी में, पूर्व दिशा में पौ फटने लगी है, सुनहली उषा की किरणें झलमला रही हैं, ब्राह्मण लोग तुम्हारा ध्यान कर रहे हैं। यह सुनो देवी! हज़ारों कण्ठों से आवाज़ निकल रही है—

"रक्तवर्णां द्विभुजां अक्षसूत्रकमण्डलुकराम्।
हंसासनसमारूढां ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवतां ऋग्वेदोदाहृताम्—"

वेदमाता सावित्री हंस पर चढ़कर सूर्य-मण्डल को गईं।

व्रत का अन्त होने में अब सिर्फ़ आधे पहर की देर है। अभी तक कामना पूरी नहीं हुई। सावित्री निराश-सी हो गई। आँसुओं की धारा से उसका कमल-सा मुँह भीगने लगा। उसने गिड़गिड़ाकर कहा—"देवी ब्रह्माणी! माता के मुँह से सुना है कि मैं तुम्हारे ही आशीर्वाद से जनमी हूँ। मैं इस मृत्युलोक में क्या ऐसी अधम हूँ कि इतनी कृच्छ्-साधना करने पर भी तुम्हारा दर्शन नहीं पाया? मा! इस अभागिनी बेटी को इतनी यातना क्यों? जो मैं तुम्हारी दया

पाऊँगी तभी यह जीवन रक्खूँगी—नहीं तो, मा के नाम पर, इस पापी शरीर को होम की इसी आग में पूर्णाहुति कर दूँगी, इसी में झोंक दूँगी।" यह सोचकर सावित्री ने आँखें मूँद लीं। उसने देखा कि लाल रङ्ग की, दो हाथोंवाली, अक्ष-सूत्र और कमण्डलु को हाथों में लिये हुए हंस पर सवार, ब्रह्माणी मानो सूर्य्यमण्डल से पृथिवी पर आकर उससे कहती हैं—"बेटी सावित्री! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हुई हूँ, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। एकनिष्ठता के बल से तुम्हारा मरा हुआ पति जी जायगा। धर्म्मराज के वर से तुम्हारे ससुर के और पिता के वंश में कुछ कमी नहीं रहेगी। बेटी सावित्री! कर्म के भयानक युद्ध में तुमने विजय पाई है, तुम्हारा व्रत पूरा हो गया। बेटी! होम की अग्नि में पूर्णाहुति दो। पृथिवी पर उषा का उजेला कर्मक्षेत्र में लग जाने की सूचना दे रहा है।" सावित्री ने एकाएक होश में आकर सुना कि वनदेवी पक्षियों के सुर में पूर्णाहुति का मधुर गीत गा रही है।

सावित्री तीन रात के व्रत को समाप्त करके उठी। उसका असाधारण संयम और पक्की निष्ठा देखकर सब लोग धन्य-धन्य करने लगे। सास ने आकर कहा—"बहू! व्रत तो पूरा हो गया, अब देवता का कुछ प्रसाद ले लो।" सावित्री ने कहा—"आज नहीं मा! आज आठ पहर स्वामी के साथ रहकर, कल दिन निकलने पर जब स्वामी का चरणामृत पी लूँगी, तब कुछ प्रसाद पाऊँगी; यही व्रत का नियम है। माजी! आप देखती हैं न कि तीन दिन के उपवास से मुझे कुछ भी क्लेश नहीं जान पड़ता। आप लोगों के पवित्र चरणों में भक्ति होने से आज का दिन भी बेखटके बीत जायगा।" शैब्या देवी ने व्रत में सावित्री का प्रेम देखकर सोचा कि जब त्रिरात्र व्रत में सम्मति दे दी है तब पारण के दिन ज़िद करके बहू का व्रत नहीं तोड़ूँगी।

[१०]

जेठ का महीना है—कृष्णपक्ष की चौदस तिथि है। पृथिवी सन्ध्या की लाली के लाल वस्त्र को और डूबते हुए सूर्य्य के लाल-लाल चन्दन का टीका धारण कर शोभा पा रही है। सावित्री ने देखा कि पतिदेव कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर वन को जाना चाहते हैं। सावित्री ने तुरन्त सत्यवान के पास आकर कहा—नाथ! सन्ध्या की आरती का समय हो चला है, आप इस समय कहाँ जाते हैं?

सत्यवान—आज चौदस है, अग्निहोत्री ब्राह्मण को सायंकाल की सन्ध्या करना ज़रूरी नहीं। पिता के होम की लकड़ी चुक गई है। सबेरे होम के लिए उसकी ज़रूरत होगी। इससे जी में आया है कि इस समय कुछ जंगली फल-मूल और लकड़ियाँ बटोर लाऊँ।

सावित्री ने कहा—सन्ध्या हो गई है। अब असमय वन में जाने की कोई ज़रूरत नहीं। कुटी में जो फल-मूल रक्खे हैं उनसे कल का काम हो जायगा। हाँ, होम के लिए लकड़ी तो नहीं है।

सत्यवान—सावित्री! रोको मत। माता-पिता का काम करने में सन्तान पर विपद नहीं पड़ती।

सावित्री—नाथ! मैं ख़ूब जानती हूँ कि माता-पिता के लिए काम करने में सन्तान पर विपद नहीं आती। पर आज एक बाधा है। मेरे त्रिरात्र व्रत का नियम है कि आज आठ पहर मुझे स्वामी के साथ रहना होगा। जो तुम इस समय वन जाओ तो मुझे भी साथ लेते चलो।

सत्यवान ने यह बात मान ली। सास-ससुर की आज्ञा लेकर सत्यवान के साथ सावित्री लकड़ी बटोरने के लिए वन में गई।

सावित्री मन लगाकर यही सोच रही है कि यह काल-रात्रि

कैसे बीतेगी और मृत्यु के किनारे खड़ा होकर सत्यवान व्रत से कुम्हलाई हुई पत्नी के मुख की शोभा देख रहा है। वह उसके वदन से निकलते हुए सतीत्व-तेज को देख रहा है।

धीरे-धीरे अँधेरा हो गया। सत्यवान ने लकड़ी काटने के लिए एक सूखे पेड़ पर चढ़कर एक डाल पर कुल्हाड़ी चलाई। अब उसका सारा शरीर एकाएक काँप उठा। उसके सिर में हज़ारों सुइयाँ गड़ने का सा दर्द होने लगा। सत्यवान के हाथ से कुल्हाड़ी नीचे गिर पड़ी। दाहिनी आँख फड़कने से सावित्री समझ गई कि महर्षि का कहा हुआ वह अन्त समय आ गया। तब उसने घबराकर कहा—"नाथ! झटपट नीचे उतर आइए। अब तनिक भी देर न कीजिए।" सत्यवान को वृक्ष से धीरे-धीरे नीचे उतरकर बैठते देर न हुई कि वह तुरन्त बेहोश हो गया। उसका मुँह कुम्हला गया। सावित्री ने अँधेरी दुनिया में दूना अँधेरा देखा। झींगुरों की झङ्कार से झनझन करती हुई उस अँधेरे पाख के घने अँधेरे से ढकी हुई रात को, ख़ूँख़ार जानवरों से भरे हुए वन में, पति की देह को गोद में लिये सावित्री अकेली बैठी है। इस पर भी सावित्री रोई नहीं। उसने सोचा, शास्त्र की आज्ञा है कि विपद् में धीरज धरना चाहिए। विपद् में अधीर होने से वह विपद् और भी बढ़ जाती है। यही विचार कर, सावित्री आँचल से मुँह पोंछकर अधमरे पति को गोद में लिये बैठी रही। सारे जगत् ने सती की ओर टकटकी बाँध दी। वन के जानवर देखने लगे कि यह स्थिर बिजली-सी रमणी कौन है। नीले आकाश के तारे एकटक दृष्टि से सती के अलौकिक सतीत्व-तेज को देखने लगे।

सावित्री ने सत्यवान की छाती पर हाथ धरकर देखा कि अभी तो कलेजे की धड़कन मालूम होती है, किन्तु वह धीरे-धीरे

मन्द होती जाती है। उसने सोचा कि अब महर्षि की बात सच होने पर है !

अँधेरे से ढकी हुई वह वन-भूमि दिव्य प्रकाश से अचानक जगमगा उठी। नये बादल जैसे शरीर में बिजली की भाँति भैंसे पर सवार एक विचित्र रूपधारी पुरुष को आते देखकर सावित्री समझ गई कि यमराज आते हैं। इससे सावित्री का हृदय काँप उठा। उसने मन को पक्का कर सोचा कि देवता से क्या डर है। फिर यह तो धर्मराज हैं, इनके सामने मेरे डरने की कोई बात नहीं।

सावित्री ने हिम्मत से छाती को मज़बूत करके, सामने खड़े, दण्ड और फन्दा हाथ में लिये हुए, जगमगे पुरुष से पूछा—आप क्या धर्मराज यम हैं ?

धर्मराज ने कहा—हाँ, तुम्हारे पति की उम्र पूरी हो गई है। मैं उसको ले जाने के लिए आया हूँ।

सावित्री ने, सत्यवान के मस्तक को धीरे-धीरे भूमि पर रखकर सामने खड़े धर्मराज को पृथिवी पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इस बीच में यम, सती के शरीर से अलग पड़े, मरणासन्न सत्यवान के—अँगूठे के बराबर—प्राण-पुरुष को निकालकर दक्षिण दिशा को जाने लगे।

सावित्री ने देखा कि सत्यवान के कलेजे की धड़कन बिलकुल बन्द हो गई है; उनके हँसते हुए से मुखड़े पर मौत की कालिमा छा गई है। तब वह बे-उपाय हो गई। उसने समझा कि आज मैं अकेली—बिलकुल अकेली हूँ ! संसार में स्त्री के जीवन के ये एकमात्र प्राणाधार आज मृत्यु देवता के पीछे जा रहे हैं—यह सोचकर वह एक साँस, पगली की तरह, धर्मराज के पीछे-पीछे जाने लगी।

धर्मराज ने जब देखा कि सावित्री, पगली की तरह, ताबरतोड़

पीछे-पीछे चली आ रही है तब उन्होंने कहा—सावित्री ! अब क्यों वृथा दौड़ती हो ? विधाता की मर्ज़ी से सभी अपना-अपना कर्म भोगते हैं। सत्यवान की उम्र पूरी हो गई, अब उसके प्राण पर मेरा अधिकार है। अब इस प्राण पर तुम मोह क्यों करती हो ? जाओ, घर लौट जाओ। अपने काम में लगो। इस जीवन के बाद तुम अपने पति से फिर मिलोगी।

सावित्री ने कहा—धर्मराज ! आप मनुष्य के हृदय को नहीं समझ सकते। आप लोगों ने मनुष्य के जीवन के साथ माया को मिला दिया है। मैं पति की ममता को कैसे त्याग दूँ ?

धर्मराज ने कहा—हे भली बात कहनेवाली ! मैं तुम्हारी बात से सन्तुष्ट हुआ हूँ। तुम सत्यवान के जीवन को छोड़कर और कोई वर माँगो।

सावित्री ने पिछली रात की उस हंस-वाहिनी की ढाढ़स-युक्त बात का ध्यान किया। उसने सोचा कि देवी की आज्ञा सफल होने की शायद यह पूर्व-सूचना हो; नहीं तो देह-धारी जीव को मृत्यु देवता का प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हो सकता है ? केवल इतना ही नहीं, किन्तु विनय पर कान न देनेवाले मृत्यु देवता आज वरदान देनेवाले की मूर्त्ति में मेरे सामने खड़े हैं ! सावित्री ने रातवाली बात पर विश्वास करके कहा—देवता ! अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसा वरदान दीजिए जिससे मेरे ससुर के आँखें हो जायँ।

"तथास्तु"—ऐसा ही हो, कहकर धर्मराज अपनी पुरी की ओर बढ़े।

कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद यमराज ने पीछे फिरकर देखा कि सावित्री पीछे-पीछे चली आ रही है।



सावित्री और यम—पृ० १०६।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

यम ने कहा—सावित्री! लौट जाओ; घर जाकर मरे हुए स्वामी का (अन्त्येष्टि, श्राद्ध आदि) क्रिया-कर्म करो।

सावित्री ने कहा—देव! मैं तो बिना घर-द्वार की हो गई हूँ। अब मेरा घर कहाँ? मेरे जीवन के सर्वस्व आज आपके साथ हैं। मैं पति को छोड़कर कैसे जा सकती हूँ? आप धर्मराज होकर मुझ बिना आधारवाली को यह क्या आज्ञा दे रहे हैं?

यम ने कहा—सती! मैं तुम्हारी बात से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम सत्यवान के जीवन को छोड़कर और कोई वरदान माँगो।

सावित्री ने विनती कर कहा—हे धर्मराज! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि मेरे ससुर को उनका खोया हुआ राज्य मिल जाय।

यमराज ने कहा—ऐसा ही होगा।

यमराज फिर अपनी पुरी की ओर चले। उन्होंने कुछ दूर जाने पर पीछे फिरकर देखा कि सावित्री ने अभी तक साथ नहीं छोड़ा है।

यमराज को अचरज हुआ। उन्होंने सोचा कि यह साधारण स्त्री नहीं है। उन्होंने कहा—सावित्री तुम जाओ। यह प्रेतों की पुरी का डरावना मार्ग है। सामने भयानक वैतरणी नदी है। इसी के उस पार मेरा राज्य है। विधाता के काम में बाधा देना धर्म के विरुद्ध है। अब आगे मत बढ़ो। मैं तुम्हारा धर्म-ज्ञान देखकर चकित हुआ हूँ; सत्यवान के जीवन को छोड़कर तुम और कोई वर माँगो।

सावित्री ने सोचा कि मेरे पिता के कोई पुत्र नहीं है। अँधेरी रात में एकमात्र तारे की तरह वे मेरे ही भरोसे हैं। यह सोचकर उसने पिता के सौ पुत्र होने का वर माँगा।

यमराज ने कहा—ऐसा ही होगा; बेटी! ऐसा ही होगा। अब आगे मत बढ़ो। जाओ, सास-ससुर की सेवा करके धन्य होओ।

सावित्री ने सोचा कि सब तो हुआ। देवता के वर से पिता के वंश का और ससुर के वंश का सब अभाव तो दूर हो गया, किन्तु मेरे हृदय का अभाव तो ज्यों का त्यों बना है! हृदय का आसन तो सूना ही पड़ा है। यह सोचकर वह फिर यमराज के पीछे-पीछे जाने लगी। सावित्री को पीछे-पीछे आते देखकर यमराज ने उसकी एक-निष्ठा पर बहुत प्रसन्न होकर कहा—सावित्री! तुम्हारी सब कामनाएँ तो पूरी हो गईं। अब क्यों कष्ट उठाती हो? लौट जाओ।

सावित्री ने कहा—देवता! मेरे हृदय का आसन तो सूना ही पड़ा है। इस आसन पर जिस देवता को बिठाया था, मेरा वह देवता तो मर गया। हे कृपानिधान! अमृत बरसाकर मेरे उस जीवन-देवता को फिर से जिला दीजिए।

यमराज ने कहा—बेटी! जीवन का बुझा हुआ दीपक दुबारा नहीं जलता। सूखा हुआ फूल फिर नहीं खिलता। भाग्य से तुम्हारा स्वामी अब इस पृथिवी पर फिर नहीं जीएगा। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम सत्यवान के जीवन के सिवा और एक वर माँगो।

सावित्री ने कहा—देव! पतिव्रता बनी रहकर मैं सौ पुत्रों की माता होऊँ।

यमराज ने कहा—तथास्तु। अब तुम वशिष्ठाश्रम को लौट जाओ। बेटी! शोक मत करना। अब तुमको किसी बात की कमी नहीं रह गई।

सावित्री ने कहा—देव! कामना का विनाश हो जाने पर भी तो वह बनी ही रहती है। वर्षा की धारा से धरती के शीतल हो जाने पर भी, बिना समय आये, बीज में अंकुर नहीं निकलता। मैं भविष्य में सौ पुत्रों की माता हूँगी, किन्तु मेरे स्वामी तो आपके हाथ में हैं।

देव ! मेरे स्वामी का प्राण लौटा दीजिए, नहीं तो मेरा धर्म जायगा। धर्म खोये बिना मैं सौ पुत्रों की माता कैसे हो सकूँगी ?

यमराज ने सोचा—"बात तो ठीक है, मेरी बुद्धि न जाने कहाँ चरने चली गई थी !" आज मानो सतियों में श्रेष्ठ सावित्री ने उनके ज्ञानरूपी नेत्र के मैल को दूर कर दिया। धर्मराज ने संसार को जीतने-वाली उस शक्तिरूपिणी से कहा—"बेटी ! यह ले अपने पति का प्राण। मैं समझ गया कि सती के समान बलवान् और कोई नहीं है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे सिर का सेंदुर सदा बना रहे।" यह कहकर यम अपने लोक को चले गये।

[११]

इस प्रकार मनोरथ सफल हो जाने पर सावित्री क्षण भर में वहाँ पहुँच गई जहाँ सत्यवान् की लाश पड़ी थी। उसने प्राण को सत्यवान की छाती से छुआया। सत्यवान ने तुरन्त जागकर कहा—सावित्री ! सिर के दर्द से मैं बेहोश हो गया था। मेरा सिर अभी तक घूम रहा है। चारों ओर सूना दिखाई देता है।

सावित्री ने कहा—"नाथ ! आप अभी अच्छे हो जायँगे, ज़रा विश्राम तो कीजिए। इस अँधेरी रात में अब आश्रम पर जाने की ज़रूरत नहीं।" सत्यवान ने कहा—नहीं सावित्री ! सिर के दर्द के मारे बेसुध हो जाने से बहुत रात चली गई है। पिताजी को यज्ञ के लिए सवेरे ही लकड़ी चाहिए। चलो, हमलोग आश्रम को जल्दी चलें।

इधर धर्मराज के वरदान से राजर्षि का अन्धापन दूर हो गया। उन्होंने इतने दिनों के बाद, एकाएक दृष्टि पाने के कारण, चौंककर रानी शैव्या देवी से कहा—"रानी ! मेरा सत्यवान और बहू क्या अभी तक वन से नहीं लौटे ?" वे पुत्र और बहू के लिए व्याकुल होकर

भटक रहे हैं। इतने में देखा कि सत्यवान और सावित्री दोनों धीरे-धीरे आश्रम को आ रहे हैं।

बूढ़े राजा द्युमत्सेन की आँखें मिली देखकर सावित्री की आँखों में आनन्द के आँसू भर आये।

राजा द्युमत्सेन अन्धे होने के कारण पतोहू का मुँह देख नहीं सके थे। वे आज सावित्री को देखकर बोले—मेरी पतोहू तो साक्षात् देवी है।

इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि शाल्व राज्य से दूत ने आकर ख़बर दी कि आपके सेनापति ने शत्रु को हराकर राज्य पर फिर अधिकार जमा लिया है।

वशिष्ठाश्रम में इस मंगल-संवाद के आने से उत्सव मनाया जाने लगा।

यहाँ मद्र-नरेश ने देखा कि आज जेठ की अमावस है। पिछली रात को, महर्षि का बताया हुआ, एक वर्ष पूरा हो गया। यही सोचकर वे उदास मन से वशिष्ठाश्रम में आये कि न जाने सावित्री के भाग्य में क्या घटना हुई हो। उन्होंने देखा कि आश्रम में आनन्द से उत्सव मनाया जा रहा है। आज सावित्री साक्षात् अन्नपूर्णा की तरह रसोई-घर में भूखों के लिए भोजन बना रही है।

मद्रराज के आने की ख़बर पाते ही सावित्री दौड़कर पिता के पास पहुँची। अश्वपति ने कहा—बेटी! कल महर्षि का बताया हुआ एक वर्ष पूरा हो गया।" सावित्री ने उनसे सारी घटना कह सुनाई। आज सब पर सावित्री का वर्ष भर का छिपा हुआ, मंत्र प्रकट हुआ।

सब लोग सावित्री के इस अलौकिक काम को सुनकर धन्य-धन्य

कहने लगे। हम भी कहते हैं कि आओ देवी! शोक और ताप से कलुषित इस मृत्युलोक में पवित्रता की निर्मल ज्योति फैलाओ। भारत के घर-घर में तुम्हारा पवित्र नाम लिया जाय। तुम निराशा के अँधेरे में अपनी सदा वन्दनीय श्रेष्ठ मूर्त्ति हम अभागों को दिखाकर तृप्त करो—धन्य करो। तुम्हारे पवित्र नाम के स्मरण से सब देशों—सब जातियों की स्त्रियों का हृदय पति के प्रेम से पूर्ण हो।

तीसरा आख्यान

दमयन्ती

तीसरा

दमयन्ती

[१]

बर्फ़ के मुकुट को पहननेवाले हिमालय के नीचे का वर्तमान कमायूँ प्रदेश पहले समय में निषध देश* कहलाता था। वहाँ वीरसेन नामक एक प्रतापी राजा थे। उनके बड़े बेटे का नाम नल था और अलका उनकी राजधानी थी।

महाराज नल एक दिन, आखेट करते-करते, घने वन में चले गये। शिकार के लिए बहुत घूमने से, थकावट और प्यास से हैरान होकर वे एक मनोहर तालाब के तट पर जा पहुँचे। नल ने देखा कि एक विचित्र पंखोंवाला हंस वहाँ आँखें बन्द किये सोया हुआ है। राजा ने धीरे-धीरे पास जाकर हंस को पकड़ लिया। हंस ने आँखें खोलीं तो देखा कि मैं पकड़ा गया। उसने पकड़े जाने से और साथियों का संग छूटने से बहुत दुःखित होकर नम्रता से कहा—राजन्! कृपा करके मुझे छोड़ दीजिए। मैं पक्षी की योनि में जन्म लेकर आपसे आप उपजी हुई जलज आदि वस्तुओं को खाता हूँ। मैं कभी मनुष्य से वैर नहीं करता। हे महानुभाव! मुझे क़ैद करने में आपकी क्या बड़ाई होगी?

राजा ने हंस के इन नम्रता-पूर्ण वाक्यों को सुनकर उसे छोड़

---

* किसी-किसी की राय में वर्तमान मध्य-प्रदेश का जबलपुर प्रान्त।

दिया। तब हंस ने सन्तुष्ट होकर कहा—"महाराज! आपने दया करके मुझे छोड़ दिया है, मैं भी एहसान का बदला चुकाने का भर सक उपाय करूँगा। महाराज! आप अब तक क्वाँरे हैं। गृहस्थाश्रम-वाले पुरुषों के लिए विवाह बड़ा बढ़िया काम है। स्त्री के हृदय की शीतलता से पुरुष का कर्त्तव्य-कठोर हृदय मुलायम हो जाता है। स्त्री का आत्मदान, स्त्री की सुन्दरता संसार-युद्ध में पुरुष को बलवान् बना देती है। महाराज! आपको शीघ्र विवाह कर लेना चाहिए, किन्तु आपके लायक़ स्त्री तो संसार में दुर्लभ है। महाराज! मैं उत्तर में मानसरोवर से लेकर दक्षिण में महासमुद्र के किनारे भगवती कुमारी देवी के मन्दिर तक समूचे भारतवर्ष में घूमा करता हूँ। मैंने देखा है कि विदर्भराज की कन्या दमयन्ती ही आपकी रानी होने के योग्य है।" यह कहकर हंस, अचरज से चुपचाप बैठे हुए, राजा के सामने दमयन्ती के रूप और गुण की प्रशंसा करने लगा। महाराज नल के चित्त पर स्त्री के मधुर हृदय की छाया पड़ी। उन्होंने सोचा कि विधाता ने न जाने कैसी अपूर्व सुन्दरता से उस सुन्दरी दमयन्ती की रचना की है।

महाराज नल का गुण गाता हुआ हंस तुरन्त आकाश में उड़कर दक्षिण की ओर चला गया। यह हाल देखकर राजा को बड़ा अचरज हुआ।

[२]

आजकल जिस स्थान का नाम बरार है वह पहले समय में विदर्भ कहलाता था। वहाँ भीम नाम के एक राजा राज्य करते थे। कुण्डिननगरी उनकी राजधानी थी।

राजा भीम प्रजा को प्राण से भी प्यारी समझते थे। उनकी ममता से और सुविचार से प्रजा को ज़रासा भी कष्ट नहीं होने पाता था।

महाराज भीम के यहाँ अपार सम्पत्ति थी। उनका आकाश को चूमनेवाला महल और विविध रत्नों से भरा हुआ ख़ज़ाना संसार में बेजोड़ था, परन्तु कोई सन्तान न होने से राजा को सभी सूना लगता था।

महाराज भीम ने सन्तान पाने के लिए बहुतेरे देवी-देवताओं की उपासना की, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ।

एक दिन राजा भीम दरबार में बैठे हुए थे कि महर्षि दमन वहाँ आये। राजा ने बड़े आदर से स्वागत करके उनको सिंहासन पर बिठाया। महर्षि ने राजा की सेवा और आव-भगत से विशेष प्रसन्न होकर उनको मनचाही सन्तान पाने का वरदान दिया। कोई सन्तान न होने से उनका जो हृदय रात-दिन जलता रहता था उस हृदय में आज महर्षि के वरदान से ढाढ़स की शीतल बयार बहने लगी।

क्रम से रानी के तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। महर्षि दमन के वर से होने के कारण राजा भीम ने बेटों के नाम दम, दान्त, और दमन तथा बेटी का नाम दमयन्ती रक्खा। उन भोले-भाले बालकों की सुन्दर कान्ति से राज-महल शोभने, हँसी से गूँजने और खेलने-कूदने से गुलज़ार रहने लगा। राजा और रानी बेटा-बेटियों के फूल-से कोमल सुन्दर शरीर देखकर तृप्त हो गये।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ दमयन्ती के रूप की शोभा भी बढ़ने लगी। सब लोग देखते थे कि उस फूल-सी बालिका की देह में कैसी बढ़ियां शोभा है। यौवन के प्रारम्भ में तो दमयन्ती का रूप उछल सा उठा। वसन्त की सुगन्धित बयार लगने से जैसे फूलों की कलियाँ चटक उठती हैं वैसेही दमयन्ती के हृदय में नये यौवन की मीठी पुकार से कर्त्तव्य के ज्ञान का अंकुर उपजा। दमयन्ती ने कल्पना की दीवार

पर भविष्य जीवन की कितनी ही अच्छी-अच्छी तसवीरें खींचों। उसने सोचा कि नारीत्व ही नारी का प्राण है। भगवती लोपामुद्रा, रघुकुल-वधू इन्दुमती और लक्ष्मी-स्वरूपिणी रुक्मिणी ने जिस वंश को धन्य किया है, मैं भी उस वंश की कीर्ति को बढ़ा सकती हूँ।

एक दिन वसन्त में प्रातःकाल दमयन्ती राज-महल के बगीचे में सखियों के साथ घूम रही थी। इतने में एक सखी बोल उठी—"यह देखो, यह लता किस तरह अपनी भुजा से एक श्यामसलोने वृक्ष को लिपटाये हुए है!" दूसरी सखी ने कहा—यह देखो, तालाब के जल में खिले हुए कमल को नये सूर्य्य की सुनहरी किरणें कैसे चूम रही हैं। सखी! इस प्यारे प्रभात में सभी जगह प्रीति की बहार है। केवल आनन्द—केवल उच्छ्वास—केवल मिलन का मज़ा है।

दमयन्ती ने कहा—"सखी! भगवान् के राज्य में ग्रहों और नक्षत्रों से लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतंग, और जड़-चेतन तक सभी पदार्थ प्रीति के अटूट धागे में बँधे हुए हैं। इस बन्धन के काटने का उपाय नहीं। सखी! इसी से स्त्री और पुरुष के हृदय एक-दूसरे से मिलना चाहते हैं। उनके इस परस्पर के मेल से ही मिलन का आनन्द बढ़ जाता है। सखी! यह जो कुसुमकली देखती हो, इस पर जिस दिन भौंरे गूँजेंगे उसी दिन इसका खिलना सफल होगा। स्त्री भी जिस दिन स्त्रीत्व का गौरव पाकर पति-देवता के प्रेम-पवित्र सोहाग से पुलकित हो जाय उस दिन धन्य होगी।" पास की एक सहेली बोल उठी—"हाँ सखी! हम तुमको किस दिन उस रूप में देखेंगी?" दमयन्ती लज्जित हुई।

इस प्रकार बातचीत करते-करते बगीचे में घूम-घामकर दमयन्ती ने, पोखर के किनारे जाकर, देखा कि एक बर्फ़ के समान सफ़ेद हंस



दमयन्ती ने देखा कि एक बर्फ़ के समान सफ़ेद हंस उसके पास आकर महाराज नल के गुण गाने लगा—पृ० ११८

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

नाचता-कूदता उसके पास आकर निषध देश के राजा महाराज नल के गुण गाने लगा। दमयन्ती ने हंस के मुँह से नल के अलौकिक गुण सुनकर सोचा कि वह भाग्यवान् कौन है। मनुष्य की तो बात ही क्या है, जिस पुरुष का गुण पक्षी तक गाता है वह नररूपी देवता न जाने कौनसी स्वर्गीय महिमा प्रकट करने के लिए पृथिवी पर उपजा है।

दमयन्ती को इस प्रकार अचम्भे में देखकर हंस ने कहा—"राजकुमारी! अगर तुम मंज़ूर करो तो मैं अभी निषध देश को जाऊँ।" दमयन्ती मुँह से तो कुछ नहीं बोली, परन्तु उसने जैसा कुछ भाव दिखाया उससे मालूम हुआ कि वह महाराज नल के रूप और गुणों पर मोहित हो गई है।

तब वह हंस वहाँ से नीले आकाश की ओर उड़ा। उसके तालाब से निकलते समय जल ऐसा उछला मानो उसने हंस के दोनों पैर छूकर सिफ़ारिश की हो कि दमयन्ती के मन की बात अवश्य कह देना। हंस प्रसन्न-चित्त से, मधुर शब्द बोलता हुआ, उत्तर को जाने लगा। दमयन्ती उसकी ओर टकटकी लगाये देखती ही रही। इस प्रकार, हंस को दूत बनाकर और सम्मिलन-देवता का स्मरण करके दमयन्ती ने नल के चरणों में अपने-आपको सौंप दिया।

खिलवाड़ और फूल चुनने के कारण सखियाँ दमयन्ती से कुछ दूर हो गई थीं। इससे वे नहीं सुन सकीं कि हंस ने दमयन्ती से क्या कहा, किन्तु हंस को उड़ते, और राजकुमारी को टकटकी लगाये, देखकर उन्हें कुछ अचरज अवश्य हुआ। सखियाँ जब पास आ गईं तब दमयन्ती ने पूछा—"तुम सब इतनी देर तक कहाँ थीं?" एक हँसोड़ सखी ने उत्तर दिया—गोइयाँ! हम सब फूल चुन रही थीं

और अपनी सखी के गले में डालने के लिए मालती की उम्दा माला गूँथती थीं।

दमयन्ती ने सोचा, कहीं इन्होंने हंस के साथ की मेरी बात-चीत को न सुन लिया हो। ये क्या निषध देश के राजा पुरुष-श्रेष्ठ नल की बात जानती हैं? दमयन्ती ने सखियों से पूछा—"निषध देश कहाँ है? और तुम लोगों ने राजा नल की भी कोई बात सुनी है?" एक सखी बोल उठी—"हाँ, उस दिन सुना था कि वे रूप में कामदेव, विद्या में बृहस्पति, बल में कार्त्तिकेय और न्याय करने में साक्षात् धर्म हैं। यदि विधाता की कृपा से वे हमारी सखी के—"इतना सुनते ही दमयन्ती ने उस सखी का मुँह दबाकर नक़ली कोप प्रकट किया, किन्तु उसके कोप में भी नज़र तिरछी थी; आँख की पुतली आनन्द से नाच रही थी और उसके कुँदरू से सुन्दर ओठों पर मुसकुराहट की झलक थी। असल बात यह है कि दमयन्ती सखियों से अपने को छिपा नहीं सकी।

[३]

एक दिन राजा खा-पीकर आराम-कोठरी में पलँग पर लेटे थे कि रानी आकर उनके चरणों के पास बैठ गई। रानी ने स्वामी के दोनों पैर अपनी गोद में लेकर हाथ फेरते-फेरते कहा—महाराज! आज आपसे एक बात पूछनी है।

राजा—बताओ रानी! क्या पूछना है?

रानी—महाराज! दमयन्ती इतनी सयानी हो गई। आप उसके विवाह का कुछ बन्दोबस्त क्यों नहीं करते, यही मैं जानना चाहती हूँ।

राजा—रानी! मैं बहुतेरे राजपुत्रों को जानता हूँ, किन्तु कोई भी दमयन्ती के योग्य नहीं जँचता।

रानी—और महाराज नल कैसे हैं ? सुना है कि वह अब तक क्वाँरे ही हैं। मेरी इच्छा है कि आप निषध देश के राजा के पास मन्त्री के द्वारा इस पैग़ाम को जल्दी भेजिए।

राजा—रानी ! है तो यह सम्बन्ध बड़ा उत्तम, किन्तु कौन जानता है कि नल इस सम्बन्ध को मंज़ूर करेंगे या नहीं। रानी ! तुम यह नहीं जानतीं कि नल नर के रूप में देवता हैं। वे बड़े भारी राज्य के मालिक हैं। मुझे हिम्मत नहीं होती कि उनसे यह प्रस्ताव करूँ। मेरी दमयन्ती का ऐसा भाग्य कहाँ कि वह निषध देश की रानी हो।

रानी—क्यों महाराज ! आप इसको अनहोनी क्यों समझते हैं ? मेरी दमयन्ती जैसी सुशीला और सिखाई-पढ़ाई हुई है, स्त्रियों में रत्नस्वरूप वैसी कन्या के लिए सब तरसते हैं। मेरा विश्वास है कि आप निषध देश के राजा से यह प्रस्ताव करेंगे तो वे कभी नामंज़ूर नहीं करेंगे। फिर महाराज ! फूल की सुगन्ध की तरह यश और सद्गुण की बातें तो आपसे आप फैल जाती हैं। नहीं तो कहाँ विदर्भ और कहाँ निषध ! निषध-नरेश की आपने जो कीर्ति बतलाई है उसे आपके राज्य में कौन ले आया ? इसी प्रकार, महाराज ! कौन कह सकता है कि मेरी दमयन्ती के गुणों की प्रशंसा निषध-राज के सिंहासन तक न पहुँची होगी ?

राजा ने कुछ अचम्भे में आकर कहा—रानी ! मैं निषध-राज के निकट यह प्रस्ताव करने में सकुचाता हूँ।

रानी—महाराज ! आप संकोच मत कीजिए। नाथ ! कीचड़ में उत्पन्न होने से कमल क्या देवता के चरणों में स्थान नहीं पाता ? महाराज ! गुण ही सब में प्रधान है। मेरी दमयन्ती रूप में रति, ऐश्वर्य में लक्ष्मी और गुणों में सरस्वती है। महाराज ! वस्तु का

विचार जन्मस्थान से नहीं होता। जो वस्तु का विचार जन्मस्थान से ही किया जाता तो मणि का आदर जगत् में कैसे होता? सम्भव है, निषध देश आपके राज्य से बढ़-चढ़कर हो, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि नारीत्व और देवीत्व गुण की एकमात्र मिलनभूमि आपकी बेटी दमयन्ती से आपका ऐश्वर्य बहुत बढ़ गया है। निषध देश के राजा को आपकी दमयन्ती का रूप और गुण अवश्य ही अच्छा लगा है। महाराज! मैं दिव्य दृष्टि से देखती हूँ, हमने जिस प्रकार नल पर मन गड़ाया है उसी प्रकार नल के हृदय में भी विदर्भ-देश और विदर्भ-राजकुमारी की छाया पड़ी है।

राजा—रानी! तुम्हारी बात से मुझे हिम्मत होती है। अच्छा, नल यदि दमयन्ती के रूप और गुण को पसन्द करते हैं तो फिर उनके पास मंत्री को भेजने की ज़रूरत ही क्या है? कन्या के स्वयंवर की चाल हम लोगों में वंश-परम्परा से चली आती है। मैं दमयन्ती के स्वयंवर करने का ढिंढोरा पिटवाता हूँ। मेरा दूत निषध-राज्य में जाकर दमयन्ती के स्वयंवर की बात कहेगा। अगर नल इस सम्बन्ध को चाहते होंगे तो वे स्वयंवर-सभा में अवश्य आवेंगे; और फिर हम लोगों का संकल्प सिद्ध हो जावेगा।

रानी—अच्छा, ऐसा ही कीजिए।

राजा की आज्ञा से राजकुमारी के स्वयंवर की बड़ी भारी तैयारी तुरन्त होने लगी। थोड़े ही समय में स्वयंवर का समाचार विदर्भ-राजधानी में फैल गया।

[४]

राजकुमारी के स्वयंवर की ख़बर सुनकर प्रजा के आनन्द की सीमा न रही। पुरवासी प्रसन्न होकर अपना-अपना घर-द्वार सजाने और सब लोग स्वयंवर के दिन की बाट देखने लगे।

स्वयंवर की बात सुनकर अनेक राज्यों के राजा और राज-सेवक कुण्डिनपुरी में आने लगे। धीरे-धीरे उस नगरी की अपूर्व शोभा हो गई। नगरी के बाहर अनगिनत खीमे खड़े किये गये। आये हुए राजाओं के अपार ठाट-बाट, हाथी-घोड़ों की चिग्घाड़ और हिनहिनाहट तथा सेना के कोलाहल से कुण्डिननगरी में, पर्व समय के समुद्र की भाँति हर्ष की तरङ्गें उठने लगीं। नये-नये वन्दनवारों से सड़कें सजाई गईं। अनगिनत ध्वजा-पताकाएँ राजधानी के महलों के ऊपर फहराने क्या लगीं मानो हवा में सिर उठाकर स्वयंवर का समाचार और विदर्भ देश का आनन्द-समाचार प्रकट करने लगीं। सारांश यह कि राजा भीम ने बेटी के स्वयंवर के समय तैयारी करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। धीरे-धीरे वह दिन आ गया जिस दिन कि स्वयंवर होने को था।

दमयन्ती के स्वयंवर का न्यौता पाकर महाराज नल बड़े ठाट-बाट से आ रहे थे। बहुत ही बढ़िया रूपवाली दमयन्ती को पाने की लालसा से इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वर्ग से आ रहे थे। रास्ते में उनसे नल की भेंट हुई। नल ने सोचा कि मनुष्य की बेटी के स्वयं-वर में देवताओं का आगमन! ऐसे आश्चर्य की बात तो पहले कभी नहीं देखी गई। न जाने विदर्भ की राजकुमारी कितनी सुन्दर है। राजा नल मन-रूपी कूँची से उस राज-दुलारी का सुन्दर चित्र खींचने लगे।

देवता लोग भी नल के अनोखे रूप और साज-बाज को देखकर अपने ऐश्वर्य को तुच्छ समझने लगे। उन्होंने अपने मन में यह पक्का विश्वास कर लिया कि स्वयंवर-सभा में नल जायँगे तो उस राज-कुमारी के हाथ की जयमाल इसी भाग्यवान् के गले में पड़ेगी। यह सोचकर देवताओं ने एक चालाकी की।

इन्द्र ने अग्नि, वरुण और यम को सम्बोधन करके कहा—"नल की सुन्दरता और वैभव को देखने से जान पड़ता है कि दमयन्ती नल को ही जयमाल पहनावेगी। मैं चाहता हूँ कि किसी तरह, नल को स्वयंवर-सभा में न जाने दूँ। ऐसा होने से ही हम लोगों का काम बनेगा।" जब सब देवताओं को यह बात पसन्द हुई तब इन्द्र ने कहा—"देवताओ! नल विनयी और साधु पुरुष हैं। इसके सिवा वे बात के बड़े धनी हैं। अगर हम लोगों के दबाव डालने से नल दूत बनकर राजकुमारी के पास जायँ और हम लोगों के इरादे को प्रकट करें तो राजकुमारी हम चारों में से किसी एक को अवश्य वर लेगी।" मनुष्य की बेटी पर अन्धे बने हुए देवताओं ने यह नहीं सोचा कि सूर्य की किरण से ही कमलिनी खिलती है; वसन्त की वायु बहने से ही प्रकृति के हृदय में प्रेम का अंकुर उगता है, और चन्द्रमा की किरण से ही चकोरी की प्यास बुझती है।

देवताओं ने अपना परिचय देकर नल से कहा—हे निषधराज! तुम हम लोगों को बहुत प्यारे हो। आशा है कि तुम हम लोगों की एक बात ज़रूर मानोगे।

नल ने नम्रता से कहा—देवताओं की आज्ञा पालने का मौक़ा मिलने से यह अधम धन्य होगा। कहिए, आप लोगों का कौन-सा प्यारा काम करूँ?

इन्द्र—हे प्रिय बोलनेवाले नल! तुम्हारी सुजनता पर हम लोग बहुत प्रसन्न हुए। हम लोग महासुन्दरी दमयन्ती को पाने के लिए स्वर्ग से आ रहे हैं। तुम दूत बनकर दमयन्ती से यह समाचार कहो और ऐसी कोशिश करो जिससे दमयन्ती हम चारों में से किसी एक के गले में जयमाल डाले।

यह सुनकर नल के हृदय में एकाएक महा खेद छा गया। उन्होंने सोचा कि मैंने इतने दिनों से जिसकी मोहनी मूर्त्ति को हृदय के सिंहासन पर बैठा रक्खा है—सोते-जागते और सपने में भी जो मेरे जीवन की संगिनी है, इस जीवन-रूपी संग्राम में जिसकी ढाढ़स-युक्त वाणी मुझको हिम्मत दिलावेगी, जिसको मैंने भविष्य-जीवन की एकमात्र सहेली मान रक्खा है उससे मैं कैसे कहूँगा कि तू दूसरे पर प्रेम कर; और ऐसा करने की कोशिश ही मैं कैसे करूँगा ? यह तो अनहोनी बात है ! यह तो सजीव देह से शक्ति को अलग करने का निष्फल उपाय है, यह तो अपने हाथ से सरासर अपना नाश करना है। कामदेव को लजानेवाले उस मुख पर खेद की काली छाया पड़ती देखकर देवताओं ने कहा—नल तुम अपने वचन को याद करो। तुम्हीं ने पहले मंज़ूर किया है। हम लोग तुम्हारे मन का भाव समझ गये, किन्तु हे निषधपति ! पुरुष का प्राण सत्य ही है, आशा है कि तुम इस बात को नहीं भूलोगे।

नल को एकाएक होश हुआ। उन्होंने सोचा—पुरुष का प्राण तो सचमुच में सत्य ही है। कुछ भी हो, मुझे सत्य की रक्षा करनी ही पड़ेगी। चाहे जितना बड़ा स्वार्थ क्यों न हो, सत्य के सामने उसको नीचा देखना ही पड़ेगा।

सत्यसन्ध नल का मुँह खिल गया। नल ने कहा—देवताओ ! मैं विदर्भ-राजकुमारी के पास अभी जाता हूँ, किन्तु मुझे कृपा करके इसका उपाय बता दीजिए कि राज-महल के भीतर मैं कैसे पहुँचूँगा; और राजकुमारी से भेंट किस प्रकार होगी।

नल की यह बात सुनकर देवता बहुत ख़ुश हुए। उस समय, इन्द्र ने नल को माया से छिपने का वर दिया। उस वरदान के प्रभाव से दूसरों की आँखें बचाकर, नल चाहे जहाँ आ-जा सकेंगे।

देवताओं का काम करने के लिए नल राजकुमारी के महल की ओर चले। अब नल के हृदय में दो ज़बर्दस्त पक्ष आकर लड़ने लगे। एक सत्य और दूसरा प्रेम।

[५]

आज दमयन्ती का स्वयंवर है। स्वयंवर के लायक़ शृंगार से सज-धजकर दमयन्ती, रसीली सहेलियों की बातचीत से प्रसन्न होती हुई, स्वयंवर-सभा में जाने की बाट देख रही है। इतने में किसी के ढकेलने से कमरे का दरवाज़ा अचानक खुल गया। दमयन्ती ने देखा कि सुन्दर वेषवाला एक जवान उस कमरे में आकर खड़ा हो गया है। सखियाँ और दमयन्ती उस बहुत सुन्दर जवान को अचानक आते देख-कर अकचका गईं। राजकुमारी दमयन्ती उठकर खड़ी हो गई; ख़ाली आसन मानो आग्रह से अतिथि का आदर करने लगा।

हँसमुख सखियों के चेहरे पर भयभरे अचरज की छाया देखकर दमयन्ती ने विधाता को प्रणाम किया और कहा—सदाचार में चतुर महात्माओं ने नियम कर दिया है कि रनिवास में किसी बेजान-पहचान के पुरुष का जाना बेजा है; तो भी जो आप छिपकर मेरे मकान में घुस आये हैं तो आप मेरे अतिथि हैं। कृपा कर मेरे नमस्कार को स्वीकार कीजिए। महाशय! यह महल का बाहरी कमरा है। इस-लिए यहाँ आपके योग्य आसन का इन्तज़ाम नहीं है। देखिए, मेरी सखियाँ भी आपके एकाएक आ जाने से डर गई हैं और अचरज में डूबी हुई हैं। महाभाग! आपके हाथ-मुँह धोने के लिए जल आदि देने में देर हो रही है। इस कारण आप इस बिना सहाय की बालिका पर नाराज़ न हूजिएगा।

बिना सहाय की बालिका! तुमने चुपचाप अपने जीवन के स्वामी

का जो स्वागत किया है वह मधुर, शान्त और उदार है। प्रेम से भरा हुआ तुम्हारा यह वचनरूपी अमृत ही इस मेहमान के लिए बहुत कुछ है। तुम्हारे हर्ष की साँस ही आज मेहमान के आदर के लिए जल आदि है; तुम्हारा हृदय-सिंहासन ही अतिथि के लिए आज आसन है। हृदय मानो कह रहा था—बालिका ! तू ने हृदय के इस स्वागत को नहीं समझा !

दमयन्ती ने कहा—"हे बड़भागी ! यहाँ और किसी आसन का इन्तज़ाम नहीं है। यद्यपि यह आसन आपके लायक़ नहीं है, तो भी कृपा कर आप इसी पर बैठ करके मुझे कृतार्थ कीजिए।" दमयन्ती का रूप देखकर नल अपनी सुध-बुध भूल रहे थे। उन्होंने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

दमयन्ती ने पुरुष को चुपचाप खड़ा देखकर नम्रता से कहा—महोदय ! कृपा करके कहिए कि आप कौन हैं और यहाँ क्यों आये हैं। यह तो ज़ाहिर ही है कि आप कोई साधारण आदमी नहीं। यदि आप मामूली आदमी होते तो हज़ारों प्रतिहारियों और दासियों से रक्षित इस ज़नाने महल के कमरे में आप कैसे आ सकते ? आपकी देह की सुन्दरता वीरता के साथ कैसी लुभावनी है ! आपके अङ्ग की सुन्दरता देखने से तो यही जान पड़ता है कि आप साक्षात् कामदेव हैं। किन्तु कामदेव तो अनङ्ग है—उसके तो कोई भी अङ्ग नहीं है; तो क्या आप अश्विनीकुमार हैं ? यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि अश्विनीकुमार का तो युगल-जोड़ा है। महाशय ! आप कौन हैं ? आप किस देश के हैं और आज इस स्वयंवर-सभा में जाने को तैयार बैठी हुई राजकुमारी के कमरे में आप क्यों आये हैं—यह बताकर मेरे अचरज को दूर कीजिए।

नल ने अपने बिना शान्ति के हृदय को कुछ स्थिर करके कहा—

राजकुमारी ! मैं देवताओं का दूत हूँ और आपको देवताओं की इच्छा सुनाने के लिए यहाँ आया हूँ ।

दमयन्ती—बताइए, देवताओं ने मुझे क्या आज्ञा की है ?

नल—सुन्दरी ! आपके स्वयंवर के लिए इन्द्र, अग्नि, वरुण, और धर्मराज यम आकर नगर के बाहर एक जगह ठहर गये हैं । वे आपके रूप और गुणों पर एकदम लट्टू हैं । उन लोगों की इच्छा है कि आप उनमें से किसी एक को वर लीजिए ।

दमयन्ती—हे भाग्यवान् ! आप उन लोगों के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करके कहिएगा कि मैं उन लोगों की इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगी । क्योंकि मैं अपना हृदय एक और मनुष्य को सौंप चुकी हूँ । देवता लोग ही धर्म की रक्षा करते हैं । उन लोगों से, नम्रता-सहित मेरी प्रार्थना है कि वे मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे मैं स्वयंवर-सभा में अपने चाहे हुए वर को पहचान सकूँ और उनके गले में माला पहना सकूँ ।

नल—चन्द्र के से मुखड़ेवाली राजकुमारी ! आप यह क्या कर रही हैं ? देवताओं के राजा इन्द्र, जगत् को पवित्र करनेवाले अग्नि-देवता, जल के स्वामी वरुण और मृत्यु के पति धर्म आपका पाणिग्रहण (विवाह) करने के लिए सभा में हाज़िर हैं । तीनों लोकों में पूज्य इन सब श्रेष्ठ देवताओं को छोड़कर क्या आप साधारण मनुष्य के गले में जयमाल डालेंगी ?

दमयन्ती—महाशय ! यह आप क्या कह रहे हैं ? इस जगत् में जिसके लायक़ जो चीज़ है, उसको उसी पर सन्तुष्ट रहना चाहिए । मैं आदमी हूँ । मैं नर-देवता को ही पति बनाकर धन्य हूँगी । मैं देवी नहीं बनना चाहती ।

नल--देवी ! देवता लोग सदा गुणों ही का आदर करते हैं। इन्द्र ने देवता होकर भी पुलोमा राक्षस की बेटी शची को और भगवान् अग्निदेवता ने माहिष्मती के राजा नीलध्वज की बेटी स्वाहा को अपनी स्त्री बनाया है। मनुष्य के लिए सबसे उत्तम देवी का पद आज आपको अपने आप बुला रहा है। मैं आशा करता हूँ कि आप उसे ज़रूर मंज़ूर करेंगी।

दमयन्ती—हे देवताओं के दूत ! आचरण के बल से ही स्त्री और पुरुष धन्य होते हैं। पुरुषों के लिए आदर्श-स्वरूप मेरे वे होनहार पति बल के लिए तीनों लोकों में मशहूर हैं, इसलिए मैं उनको देवता से घटकर कैसे कहूँ ? देखिए, वे इन्द्र भी—जिनके बायें भाग में सदा जवान बनी रहनेवाली इन्द्राणी शोभायमान हैं—आज मनुष्य की साधारण बेटी के रूप पर मोहकर उसके स्वयंवर में आये हैं। सबको शुद्ध रखनेवाले अग्निदेव भी आज स्वाहा देवी की सुन्दरता को भूलकर एक हीना नर-कन्या को चाह रहे हैं। बहुत ही शान्त वरुण देवता अपनी रूपवती वरुणानी की प्रेम से कोमल भुजाओं की शीतल भेंट को भूलकर तुच्छ मानवी के रूप पर लुभा गये हैं; और धर्मराज भी, आज न्याय की मर्यादा भूलकर, नारी के जीवन को देवी बनाने के लोभ से शोक के अथाह समुद्र में डुबोना चाहते हैं। मैं इन लोगों का भली भाँति आदर कैसे करूँगी ? महाभाग ! दूसरे के दिये हुए धन से किसी की इज़्ज़त नहीं बढ़ती ! अपने पैदा किये हुए धन से असली मान होता है। इसी से मैं देवताओं का पसन्द किया हुआ, देवीत्व नहीं चाहती। मैं उन लोगों की सिर्फ़ कृपा चाहती हूँ। दया करके उनसे कह दीजिएगा कि ऐसी कृपा वे मुझ पर बनाये रक्खें जिससे मेरा नारीत्व बना रहे। अपनी पसन्द के मनुष्य-पति को पाने से ही मेरा मनोरथ सफल होगा।

विदर्भ-राजकुमारी के चरित्र के इस बल को देखकर नल बहुत ख़ुश हुए और उन्होंने बिदा माँगी। दमयन्ती ने कहा—महात्मन्! आपका यह व्यवहार सराहना करने लायक़ नहीं। आप बिना पहचान कराये ही क्यों जाना चाहते हैं? शास्त्रों में कहा है कि दो बातें करने से ही मित्रता हो जाती है। आपसे जब मेरी इतनी बातचीत हुई है तब आपके साथ मेरी मित्रता ज़रूर हो गई; मेरी समझ में देवताओं के दूत के सामने यह कोई नई बात न होगी।

नल ने कहा—सुन्दरी! मेरा और कुछ परिचय नहीं। मैं देवताओं का दूत हूँ, सिर्फ़ इतना ही परिचय काफ़ी है।

दमयन्ती—बड़े खेद की बात है कि राजकन्या के महल में आये हुए सज्जन, न्याय की मर्यादा को तोड़कर, बिना परिचय दिये ही यहाँ से खिसकना चाहते हैं।

अब नल असमञ्जस में पड़े। उन्होंने सोचा कि अपना परिचय बिना दिये कैसे जाऊँ! नल ने कहा—राजकुमारी! साधु लोग अपने मुँह से अपना नाम कभी नहीं लेते। बतलाओ, मैं अपना नाम कैसे लूँ? और आप यह जानकर ही क्या करेंगी? अगर आपको जानने की बड़ी इच्छा ही हो तो यही जानियेगा कि मैं विदर्भ-राजकुमारी के स्वयंवर में आया हुआ एक राजकुमार हूँ।

दमयन्ती के चित्त में अचानक आशा की रेखा दीख पड़ी। उसने हंस के मुँह से महाराज नल के अलौकिक गुणों की और रूप की जो बात सुनी थी, वह आज इस अजनबी की मूर्त्ति में दिखाई दी। दमयन्ती सोचने लगी कि इस समय अगर हंस से एक बार और भेंट हो जाती तो आँख-कान का यह झगड़ा मिट जाता। अचानक उसके चित्त पर निषध-राज का चित्र खिंच गया। दमयन्ती ने देखा कि मेरी आँखें इस पुरुष के सामने ताकने से लजाती क्या हैं, मानो

संकोच चित्त को दबा रहा है। वह सोच रही है कि ये सुघड़ युवक अगर निषध-राजकुमार होते—

कुछ देर के बाद हृदय के वेग को रोककर नल ने दमयन्ती से कहा—राजकुमारी ! मैं देवताओं का दूत हूँ, इसलिए मुझसे कुछ पूछ-ताछ करना नियम के विरुद्ध है। क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आपके मन को किस पुरुष ने चुरा लिया है ?

दमयन्ती ने कहा—कुमार ! यह तो बड़े अचम्भे की बात है ! आप अभी तक मुझसे अपने को तो छिपाते ही जाते हैं किन्तु चतुराई से अपने प्रश्न का उत्तर मुझसे चाहते हैं। क्या आप नहीं जानते कि जो जैसा व्यवहार करता है उससे वैसा ही व्यवहार किया जाता है !

नल ने कहा—हे प्रिय बोलनेवाली ! दूत के लिए अपना परिचय देना मना है, इसलिए मैं अपना परिचय नहीं दे सकता। दिल्लगी करने का मेरा इरादा बिलकुल नहीं है, किन्तु आप अपने मेहमान का निरादर कर रही हैं।

यह सुनकर दमयन्ती बहुत लजा गई। हृदय तो प्रकट करना चाहता था, किन्तु दोनों ओंठ दबा देते थे। किसी भी तरह मुँह से वह बात नहीं निकली।

तब दमयन्ती का इशारा पाकर पास की एक सखी ने कहा—हे देवताओं के दूत! हमारी सखी ने निषध-राजकुमार नल को अपना मन दे दिया है। हमारी सखी सदा उन्हीं महापुरुष के ध्यान में मग्न रहती है। देवता लोग ऐसी कृपा करें, जिससे स्वयंवर-सभा में राजकुमारी अपने मन-चाहे के गले में जयमाल डाले।

"हे अच्छे स्वभाववाली ! क्या तुम लोगों ने निषध देश के राज-कुमार को कभी देखा है ? शायद देखा नहीं है; नहीं तो तुम लोगों के सामने यह पहेली दरपेश ही न होती। मैं ही निषध देश

का राजकुमार हूँ—" यह कहने के साथ ही देवदूत अन्तर्धान हो गये।

नल के मुँह से यह बात सुनकर कि 'मैं ही निषध देश का राजकुमार हूँ' दमयन्ती पुलकित हो गई; किन्तु, तुरन्त ही, नल के साथ किये हुए अपने बर्ताव की याद करके वह दुःखित मन से बोली—सखी! तब तो मैंने निषध-राजकुमार के साथ अन्याय किया है।

सखी—नहीं सखी! तुमसे इसमें कुछ भी अन्याय नहीं हुआ, बल्कि तुमने बेजान-पहचान के अजनबी के साथ काफ़ी भला बर्ताव किया है। मनुष्य तो किसी के भीतर की बात जानता नहीं! यदि मनुष्य अन्तस् की भी बात को जानता होता तो फिर देवता और मनुष्य में भेद ही क्या रह जाता? सखी! खेद मत करो; दूत का वेष धारण कर आये हुए निषधपति तुम्हारे सदाचार से तृप्त हुए हैं।

इतने में स्त्रियों को साथ लिये हुए रानी वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने स्वयंवर के लायक़ शृंगार से सजी हुई लड़की के सिर पर दूब और अक्षत छिड़ककर आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटी दमयन्ती! तुम्हारी कामना पूरी हो, देवता लोग तुम्हारे सहायक हों।" इसके बाद राजधानी की स्त्रियों ने एक-एक करके दमयन्ती के सिर पर दूब-अक्षत छिड़ककर आशीर्वाद दिया। माता के चरणों में दमयन्ती प्रणाम करके धाई के साथ स्वयंवर-सभा की ओर चली।

[६]

राजमहल के सामने ही स्वयंवर की सभा है। संगमरमर के बने ऊँचे खम्भों पर चँदोवा टँगा है। तरह-तरह के फूलों और पत्तों से खम्भे सजाये गये हैं। तरह-तरह के सुगन्धित फूलों की मालाएँ चारों ओर ख़ुशबू फैला रही हैं। स्वयंवर की सभा के चारों ओर चार नई मेहराबें बनी हैं। उनमें तरह-तरह के फूल-पत्ते और फल लगाये गये हैं।

भारत के अनेक राज्यों से आये हुए राजकुमार लोग अलग-अलग आसनों पर बैठे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो नीले आकाश में चमकनेवाले तारे उगे हुए हों। बढ़िया पोशाक पहने हुए ख़ूबसूरत नौकर-चाकर सभा में सफ़ेद चँवर डुलाकर राजकुमारों का पसीना दूर कर रहे हैं। बीच-बीच में गुलाब-जल का फ़व्वारा चलता है। हवा फ़व्वारों के छींटों से ठण्ढी होकर स्वयंवर-सभा को शीतल करती है। दर्शकों के बैठने के लिए सभा के चारों ओर मचान बनाये गये हैं।

शुभ मुहूर्त्त पर दमयन्ती ने स्वयंवर-सभा में प्रवेश किया। उसी समय राजमहल से स्त्रियों के गीत सुन पड़े। मेहराबों के पास ऊँचे मचान पर शहनाई बजने लगी।

जब दमयन्ती सभा में पहुँची तो हज़ारों पुरुषों की आँखें उस पर पड़ीं। उस भरी सभा में लोगों के ताकने से दमयन्ती का कलेजा धड़कने लगा। वह मन ही मन इष्टदेवता का स्मरण करके, सिर नीचा किये हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

सभा के सब राजकुमारों और दर्शकों ने आज राजकुमारी दमयन्ती के स्वयंवर के लायक़ शृंगार को देखकर सोचा कि यह विधाता की अनोखी कारीगरी का नमूना है। जान पड़ता है कि विधाता ने अपनी सृष्टि की सारी सुन्दरता मिलाकर इस शोभा की खानि को बनाया है। सभी राजपुत्र सोचने लगे कि देखें इस सुन्दरी के हाथ की जयमाल आज किस भाग्यवान के गले में पड़ती है।

राजपुरोहित की आज्ञा से तुरन्त शोर-ग़ुल और बाजे बन्द हो गये। वैतालिकों (नक़ीबों) ने आकर राजकुमारों का परिचय देना और उनके गुणों का बखान करना शुरू कर दिया, किन्तु दमयन्ती के कान में नक़ीबों की एक भी बात नहीं जाती थी। दमयन्ती जिस देवता को ढूँढ़ती थी उस देवता का पता न पाकर वह राजकुमारों

को यथायोग्य प्रणाम करती हुई स्वयंवर-सभा के दूसरे भाग में चली गई।

यह बड़ा कठिन स्थान है। यह स्थान प्रीति की दो धाराओं के मिलाप से पवित्र होगा। गंगा और यमुना के समान प्रीति की दो धाराओं के संगम-स्थान पर एक विकट उलझन आ पड़ी।

जब दमयन्ती वहाँ पहुँची तो वैतालिक बोल उठा—राजकुमारी! ये जो सामने चक्रवर्ती राजा के लक्षणोंवाले कुमार दिखाई देते हैं, और जिनकी विशाल भुजाएँ हैं, वे निषध देश के स्वामी महाराज नल हैं। इनमें नाम लेने के लिए भी आलस्य नहीं है। शास्त्रों का इन्हें ख़ूब ज्ञान है और धनुर्वेद में तो ये अपना सानी नहीं रखते। ये दीनों की रक्षा करते हैं, इन्होंने इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है और ये प्रजा को भी ख़ूब चाहते हैं। राजकुमारी! अगर आप चाहें तो इनको वर सकती हैं।

दमयन्ती का हृदय अभी तक इसी देवता को तो ढूँढ़ रहा था। आज, वैतालिक की यह मीठी बात सुनकर, हृदय की उछलती हुई प्रीति को शान्त करके दमयन्ती ने लजाती और मुसकुराती हुई नज़र उठाकर सामने देखा। अरे! यह क्या मामला है? स्वयंवर-सभा में नल की पाँच ऐसी मूर्त्तियाँ हैं जो कि आग के समान उजली हैं। भीम की कन्या यह देखकर चकराई और ठिठककर डर गई। उसके हाथ में जो फूलों की माला थी वह काँप उठी। माथे पर पसीना आ गया। देवताओं की चाल समझ दमयन्ती गिड़गिड़ाकर बोली—"हे देवताओ! आप लोग धर्म के रक्षक हैं; ऐसी कृपा कीजिए जिसमें मेरे सतीधर्म पर दाग़ न लगे और मैं अपने मन से वरे हुए पति निषध-राजकुमार को पहचान लूँ। हे देवताओ! मैं मनुष्य की तुच्छ बेटी हूँ। मुझे धर्मभ्रष्ट करके आप लोग देवता के ऊँचे पद



दमयन्ती गिड़गिड़ा कर बोली—"हे देवताओ ! आप लोग धर्म के रक्षक हैं; ऐसी कृपा कीजिए कि जिसमें मेरे सतीधर्म पर दाग़ न लगे"—पृ० १३४

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

से नीचे न गिरिए।" यह बात कहते-कहते, वर्षा के जल से धुली हुई कमलिनी की भाँति, सुन्दरी दमयन्ती की बड़ी-बड़ी आँखें आँसुओं से भर गईं। उस सती के आँसुओं की छवि से इन्द्र आदि देवताओं के गले की मन्दार-वृक्ष के फूलों की मालाएँ फीकी पड़ गईं।

दमयन्ती को एकाएक याद आया कि देवताओं के पैर धरती से कुछ ऊपर उठे रहते हैं और उनकी आँखों की पलकें भी नहीं गिरतीं। दमयन्ती ने हिम्मत करके उन एक ही से रूपवाली पाँच मूर्त्तियों पर नज़र गड़ाकर जान लिया कि उनमें से चार के नेत्रों की पलकें नहीं गिरतीं और उनके पैर भी भूमि से ऊपर हैं।

दमयन्ती ने इस फ़र्क़ को समझकर पाँचवें के गले में, भगवान् का पवित्र नाम लेकर, जयमाल पहना दी। देखा कि इन्द्र आदि चारों देवता तुरन्त ही अपना असली रूप धरकर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं—"धन्य दमयन्ती! तुम्हारी यह पवित्र कथा भारत के इतिहास में सुनहरे अक्षरों से सदा लिखी रहेगी।" यह कहकर देवता लोग गुप्त हो गये।

दमयन्ती ने जिस समय नल को जयमाला पहनाई उसी समय उस शान्त स्वयंवर-सभा में स्त्रियाँ मङ्गल-गीत गाने लगीं; शंख बजने लगे; लोगों का ग़ुल-गपाड़ा मच गया और भाँति-भाँति के बाजे बजने लगे।

सभी कहने लगे—दमयन्ती धन्य हैं, उन्होंने अपने मन के बल से देवताओं की एक नहीं चलने दी—उनकी छलना को व्यर्थ कर दिया। निषध-राजकुमार धन्य हैं, जिन्होंने ऐसा स्त्रीरूपी रत्न पाया है।

राजा भीम ने धूमधाम के साथ दमयन्ती का ब्याह कर दिया। आये हुए राजकुमार लोग दमयन्ती की इस अद्भुत निष्ठा से प्रसन्न होकर नये दम्पती (दूलह-दुलहिन) को धन्यवाद देते हुए अपने-अपने राज्य को लौट गये।

[७]

इन्द्र, वरुण, अग्नि और धर्मराज स्वर्ग को जा रहे हैं। रास्ते में कलियुग और द्वापर से भेंट हुई। इन्द्र ने पूछा—क्यों कलि! इधर कहाँ जाते हो?

कलि—सुना है कि आज विदर्भ-राजकुमारी मशहूर सुन्दरी दमयन्ती की स्वयंवर-सभा में देवताओं और मनुष्यों का अजीब जमाव हुआ है। इस नये दृश्य को देखने के लिए आज मैं वहीं जाता हूँ।

इन्द्र—कलि! लौट चलो। हम लोग उसी स्वयंवर-सभा से लौट रहे हैं। विदर्भ-राज की परम सुन्दरी बेटी ने हम लोगों के सामने ही निषध देश के राजा नल को जयमाला पहना दी। हम लोग नये दूलह-दुलहिन को आशीर्वाद देकर आ रहे हैं।

कलि—जो दिक्पालों के सामने अदना मनुष्य के गले में जयमाला डाल सकती है उस गर्वीली राज-कन्या को आशीर्वाद! आप लोग क्या कह रहे हैं?

इन्द्र—कलि! तुम क्या यह नहीं जानते कि सती समूचे ब्रह्माण्ड को भी जीत लेती है? विदर्भ-राजकन्या देवताओं के हज़ार लोभ दिखाने पर भी अपने सती-धर्म से ज़रा भी नहीं डिगी। यह तो हर एक के लिए गौरव की बात है। तुम उसके ऊपर इतने क्यों रूठे हो?

कलि—उसे इतना घमण्ड है कि उसने देवताओं को तुच्छ समझा। अच्छा, मैं उसका यह घमण्ड तोड़ूँगा।

इन्द्र आदि देवताओं ने कहा—"कलि! वृथा कोप करना बेजा है। तुम अपने घर जाओ और यदि चाहो तो निषध-राज्य में जाकर नये दम्पती को देखकर आँखें ठण्ढी कर आओ।" यह कहकर वे लोग सुरलोक को चले गये।

देवताओं की बात पर ऊपरी मन से शान्त-भाव दिखाकर कलि-

युग अपने स्थान को चला गया, किन्तु देवताओं के अपमान से वह आग में जलने सा लगा। फिर उसने द्वापर को सम्बोधन करके कहा—मैं देखूँगा कि दमयन्ती सुख से कैसे रहती है।

नल और दमयन्ती दोनों, ब्याह हो जाने पर, निषध देश को लौट आये। लक्ष्मी के समान दमयन्ती रानी को देखकर प्रजा की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। दमयन्ती ने प्रजा को मातृत्व की छाया से शीतल किया। विपद में फँसे हुए की विपद दूर कर, आश्रित की रक्षा कर और भूखे को अन्न देकर दमयन्ती लोक-माता धरती के समान शोभा पाने लगी।

समय पाकर दमयन्ती के एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई। बेटे का नाम इन्द्रसेन और बेटी का नाम इन्द्रसेना रक्खा गया। मातृ-भाव से भरपूर दमयन्ती सुख की गृहस्थी में, स्वामी के किये हुए पुण्य-कर्म की सहेली होकर, दिन बिताने लगी।

पृथ्वी पर कोई लगातार सुख नहीं भोग सकता। इसी से विधाता के राज्य में दुःख का प्रश्न आदमीयत की जाँच करता है। जो लोग इस जाँच में पूरे उतरते हैं वे सच्चे मनुष्य हैं। दमयन्ती इस जाँच में सोलहो आने पूरी उतरी थी, इससे वह इतनी पुनीत हो गई है कि भारत भर में सभी उसकी वाहवाह करते हैं।

नल के ऊपर कलि पहले ही से नाराज़ था, इससे वह सदा इस घात में रहता था कि कौनसा छिद्र पाऊँ कि नल की देह में घुस जाऊँ। एक दिन महाराज नल अशुद्ध अवस्था में सन्ध्या करते थे। इसी अवसर पर कलि उनके शरीर में घुस गया।

महाराज नल का एक छोटा भाई था। इसका नाम था पुष्कर। राजा नल जैसे मनुष्यता के पूरे अवतार थे, वैसे ही उनका भाई पुष्कर नरक के पिशाच का भद्दा ढाँचा था। ऐसा कोई बुरा काम न

था जो पुष्कर से न हो सके। स्वार्थ के लिए वह सब कुछ कर सकता था।

[८]

पुष्कर जूआ खेलने में बड़ा चतुर था। वह बड़े भाई की अपार कीर्ति, राज्य के विस्तार और प्रजा के वश में रहने आदि को देखकर मन ही मन जलता रहता था। नल की देह में घुसे हुए कलियुग ने एक दिन पुष्कर से कहा—"पुष्कर! तुम नल के साथ जूआ खेलो। हम और द्वापर, दोनों तुम्हारी सहायता करेंगे। हम लोगों की सहायता से तुम नल को हराकर निषध का राज्य ज़रूर पा जाओगे।" कलि के बहकाने से पुष्कर ने, कुमति के चक्कर में पड़कर, बड़े भाई को जूआ खेलने के लिए लाचार किया।

पहले क्षत्रिय राजाओं में एक यह रीति थी कि युद्ध में हो चाहे जूए में हो, ललकारने से उतरना ही पड़ता था। महाराज नल क्षत्रियों की उसी रीति के कारण पुष्कर से जूआ खेलने लगे और कलि जूए के भीतर रहकर नल का सर्वनाश देखने लगा।

जूए की धुन सिर पर सवार होने से महाराज नल की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। रात-दिन, खाना, पीना, सोना सब भूलकर वे सिर्फ़ जूआ ही जूआ खेलने लगे। धीरे-धीरे वे राज-पाट सब हार बैठे। अब सिर्फ़ वे रह गये और रह गई उनकी स्त्री रानी दमयन्ती।

पुष्कर ने जब देखा कि धीरे-धीरे बड़े भाई का सब कुछ मेरे हाथ में आ गया तब उसने प्रसन्न होकर कहा—मैंने तुम्हारा सब कुछ जीत लिया; अब तुम दाव पर दमयन्ती को रक्खो।

अब राजा नल को होश हुआ। वे सिंह की तरह गरजकर बोले—अरे मनुष्यरूपी पिशाच! तेरी क्या यही भलमंसी है? तू जूए में अन्धा होकर, माता-समान भौजाई के ऊपर बुरा भाव रखता है!

नल झटपट खेल छोड़कर उठ खड़े हुए। राजा की दीनता देखकर कलियुग हँसने लगा, किन्तु उसने यह नहीं समझा कि साधना भाग्य की गति को फेर सकती है। साधना भले कामों की माता है। महाराज नल के जी में आज साधना की ज़बर्दस्त इच्छा जाग उठी। इतने दिन बेपर्वाही की ठोकर से जिस मङ्गल-कलश को फोड़ डाला था आज साधना की उमङ्ग से उसमें फिर प्राण आ गये।

जब राजा ने देखा कि नगर में अब मेरे लिए जगह नहीं है, तब उन्होंने विपन्न-शरण वन में जाने की इच्छा की। क्योंकि जिसे कहीं भी आसरा नहीं उसको वन में ठौर ज़रूर मिलेगा, और जो शोकों से व्याकुल हो गया है, उसे वन में कुछ न कुछ चैन भी मिल ही जावेगा। राजा ने दमयन्ती से कहा—प्यारी! मुझ पर खोटे ग्रह की दशा है। प्राणसमान प्यारे इन्द्रसेन और इन्द्रसेना को लेकर तुम कुछ दिन नैहर में जा रहो। तब तक मैं अपने भाग्य को आज़माने के लिए जगह-जगह घूमूँगा। मुझे भाग्य से लड़ाई करके विजय पाना होगा।

दमयन्ती ने आँखों में आँसू भरकर कहा—महाराज! क्या आपको याद है कि जब आप जुए के नशे से पागल हो रहे थे तब मैंने कितने आँसू बहाकर आपका नशा दूर करने की कोशिश की थी? महाराज! याद है कि नहीं, प्रिय इन्द्रसेन और इन्द्रसेना के कोमल हाथों से आपको बाँध रखने का उपाय भी किया था? आप जिस दिन फूल से कोमल बच्चों के प्रेम को भूलकर चले गये थे, उसी दिन मैं समझ गई थी कि किसी बुरे नशे से आपकी बुद्धि मारी गई है। महाराज! मैंने उसी दिन इन्द्रसेन और इन्द्रसेना को, विश्वास-पात्र सारथि, वार्ष्णेय के साथ अपने पिता के घर भेज दिया और मैं विपद के समुद्र में डूबते हुए आपका साथ देने के लिए तैयार हूँ। महाराज! अगर आपका वह नशा उतर गया हो तो आपको इस

समय भी सहारा मिल सकता है। आपके बग़ल में, केवल एक आप ही का भरोसा रखनेवाली स्त्री का हृदय आपकी सारी विपदाओं से भिड़ जाने के लिए तैयार है।

राजा ने कहा—दमयन्ती ! मैं जानता हूँ कि स्त्री ही, दिशा भूले हुए, अभागे स्वामी की दुर्भाग्यरूपी रात के घने अँधेरे में मङ्गलकिरण बरसानेवाली अचल तारा है। सती स्त्री ही विपद के समुद्र में एकमात्र आसरे की नौका है। मेरे सैकड़ों जन्मों की तपस्या का इनाम दमयन्ती ! अभागे को छोड़ मत देना। प्यारी ! भाग्य के फेर में पड़कर मैं कुछ दिन देश-देश में घूमकर देखूँगा कि मेरा भाग्य पलटता है या नहीं। इसी लिए मेरी बहुत-बहुत प्रार्थना है कि तुम कुछ दिन नैहर में जाकर रहो।

दमयन्ती का चित्त व्याकुल हो उठा। उसने रोकर कहा—क्यों महाराज ! दासी ने इन चरणों में ऐसा क्या अपराध किया है कि आप इसको छोड़ना चाहते हैं ? आप मुझे अपना साथ छोड़कर, नैहर जाने को न कहें। आपके साथ रहकर ही मैं दुःख को भूलूँगी। वन में घूमते-घूमते जब आप थक जायँगे तब मैं पत्ते से हवा करके आपकी थकावट को दूर करूँगी। हे नाथ ! साध्वी स्त्री के लिए पति के वियोग से बढ़कर कोई दूसरी सज़ा नहीं है। मैं छाती रोपकर वज्र की चोट सह सकती हूँ, मैं बिना मुँह बिचकाये चुपचाप हलाहल विष भी पी सकती हूँ; किन्तु आपके पवित्र संग को त्यागकर किसी तरह नहीं जी सकती। हे नाथ ! दया करके मुझे अपने पवित्र चरणों से दूर न कीजिए।

नल ने कहा—अच्छा दमयन्ती ! तुम मेरे साथ चलो। मुझ अभागे के जीवन में, उजेले की महीन किरण की तरह, मार्ग भूले हुए बटोही के लिए ध्रुव तारे की तरह, तुम सदा मेरे साथ रहना।

[९]

गहरी रात में स्वामी और स्त्री दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर राजधानी से बाहर निकले। इस बात का कोई निश्चय नहीं कि कहाँ जायँगे और यह भी मालूम नहीं कि वन है किस तरफ़ को! भगवान् का नाम लेकर बिना किसी ठिकाने को जाने ही चल पड़े।

वे नगर छोड़कर एक मैदान में आये। घना अँधेरा है, कुछ भी दिखाई नहीं देता। वे दोनों उस रात के गाढ़े अँधेरे के भीतर से चलकर एक सघन वन में घुसे। वन में अँधेरा और भी गहरा मालूम होने लगा। नल और दमयन्ती ने, किसी प्रकार, उसी वन में रात बिताई।

धीरे-धीरे पूर्व दिशा में ललाई छा गई। धरती ने मानों रात का सब विरह भूलकर प्रभात के सूर्य को आदर से वर लिया। पृथ्वी पर जाग जाने की धूम मच गई।

एक दिन नल ने वन में, सोने के से पंखोंवाली कुछ चिड़ियों को देखकर, उन्हें पकड़ने के इरादे से अपनी धोती खोलकर फेंकी। कलियुग की माया से रचे हुए वे पक्षी नल की धोती लेकर आकाश में उड़ गये। नल अचरज करके सोच ही रहे थे कि उन पक्षियों को यह कहते सुना—"हे नल! जिनके कोप से तुम्हारा राज-पाट छूटा और तुम भूखे-प्यासे होकर वन-वन भटक रहे हो, जिनके प्रभाव से निषध की राजभक्त प्रजा ने विपत्ति के समय तुम्हारा साथ तक नहीं दियां, हम वे ही पासे हैं; तुमको वन में लजवाने और सताने के लिए ही हमलोगों ने पक्षी बनकर तुम्हारी धोती छीन ली है।" महाराज नल किसी तरह पत्तों से अपना शरीर छिपाकर दमयन्ती के पास आये। जिस राज-शरीर पर रेशमी कपड़ा शोभा पाता था,

उस पर आज पत्तों को लिपटा देख दमयन्ती आँसुओं की धारा बहाने लगी।

नल ने कहा—रानी शोक करने से क्या होगा ? भाग्य में जो लिखा है उसे तो भोगना ही होगा। ऐसी विपत्ति में पहले के सुख-चैन को भूलकर, वर्तमान समय की दुःख-दुर्दशा को ही अख़्त्यार कर लेना होगा। वर्तमान में जो काम किया जायगा उसी का फल भविष्य में भोगने को मिलेगा। ज्ञानियों का यही उपदेश है। पहले के बड़प्पन की बातों को याद कर तुम्हारी जैसी ऊँचे हृदयवाली स्त्री को दुःख न मानना चाहिए।

दमयन्ती ने आँसू पोंछकर कहा—हे निषध देश के राजा ! मैं सब जानती हूँ और सब समझती हूँ, किन्तु महाराज ! धूल से लिपटी हुई आपकी इस देह को देखकर जब आपकी चन्दन लगी हुई उस देह की याद आती है, जिस कोमल देह में कुंकुम लगाने में भी मुझे डर लगता था, उसको जब कंकड़-पत्थरों पर सोया हुआ देखती हूँ तब महाराज ! मुझसे धीरज नहीं धरा जाता—हृदय में अशान्ति आप ही से उमड़ आती है।

नल ने प्रेम से कहा—"प्यारी ! भगवान् के राज्य में सुख या दुःख कुछ नहीं है। भगवान् के राज्य में तो सभी सुख से भरा हुआ है। उन्होंने मनुष्य के लिए अपना अटूट भाण्डार खोल दिया है। हम लोगों के जीवात्मा को जब जिस चीज़ की ज़रूरत होती है तब वह उसे ले लेता है, इसलिए सुख-दुःख जो कुछ है सभी भगवान् का दान है। रानी ! जिस दिन देखोगी कि सुख के साथ दुख का भेद-रहित ज्ञान हो गया है उस दिन हृदय में ज़रासी भी अशान्ति नहीं रहेगी; उस दिन देखोगी कि हृदय में स्वर्ग की वीणा बज रही है; प्रेम-मय विश्व की निडर वाणी जीवन को ढाढ़स दे रही है।" दमयन्ती अपने

नेत्रों से नल का हँसता हुआ चेहरा और आनन्द देखकर सारा दुःख भूल गई।

महाराज नल, पत्नी को इस प्रकार उपदेश देते थे किन्तु उनके हृदय में चिन्ता की जो चिता जलती थी वह कहने योग्य नहीं। वह तेजस्वो वड़ा डीलडौल चिन्ता-रूपी घुन के लगने से हड्डी-हड्डी हो गया। महाराज नल को अपने लिए उतनी चिन्ता नहीं थी। जब वे देखते कि दमयन्ती के दोनों कोमल चरण वन में घूमने से लाल हो गये हैं, जब वे देखते कि वन की धूल लगने से दमयन्ती के काले-काले केश सफ़ेद से लगते हैं, और जब वे देखते कि उस मृगनयनी के नेत्रों में आँसू भर आये हैं तब उनकी छाती फटने लगती। वे सोचते कि हाय! जो राजरानी राजमहल में संगमर्मर के फ़र्श पर घूमा करती थीं, रनिवास में जिनके केशों को सैकड़ों दासियाँ सुगन्धित तेल से सँवारती थीं, और जिनके कान तक फैले हुए वड़े-वड़े नयनों में स्वर्ग की शोभा दिखाई देती थी, अहो दुर्दैव! आज वही वन में मारी-मारी फिरती हैं! किसी तरह हृदय के दुःख को भीतर ही दबाकर महाराज नल पत्नी को ढाढ़स दिया करते थे।

एक दिन नल ने सोचा कि दुष्ट कलियुग की कुटिलता से आज हमारी यह दुर्दशा है! मैं असहाय वन-वासी हूँ। सुना है कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण पासा खेलने में बड़े चतुर हैं। हमें, जैसे बने वैसे, राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर पासा खेलना सीखना चाहिए, किन्तु मेरे काम में दमयन्ती वाधक है।

यह सोचकर नल ने कहा—रानी! तुम इस प्रकार वनवासिनी होकर क्यों अपने मन से कष्ट भोगती हो? मैं चाहता हूँ कि तुम नैहर चली जाओ। कुछ दिन तक ग्रह की दशा भोग लेने के बाद मैं फिर तुमसे आ मिलूँगा। प्यारी! मेरी इस दुर्दशा में तुम क्यों कष्ट

सहोगी ? और फिर भी सोचो कि प्राण-समान प्यारे इन्द्रसेन और इन्द्रसेना हम लोगों के बिना न जाने कितना कष्ट पाते होंगे। इस अवस्था में यदि तुम अपने पिता के घर जाओगी तो वे बहुत प्रसन्न होंगे। उनका उदास चेहरा आनन्द से खिल उठेगा।

दमयन्ती ने कहा—स्वामी ! आपके साथ में मुझे ज़रा भी दुःख नहीं मालूम होता। दुःख की अवस्था में ही मनुष्य को हित-नाते की ज़रूरत होती है। प्यास लगने पर ही पानी अच्छा लगता है। नाथ ! आपके दुःख का समय क्या सिर्फ़ आप ही का है ? तो क्या आप मुझको अपने से जुदा समझते हैं ? महाराज ! स्त्री क्या पति के सुख की ही हिस्सेदार है—दुःख की नहीं ? स्वामी के दुःख का बोझ उठाने में जो स्त्री बड़प्पन समझती है और जो ऐसा करने में समर्थ होती है वही धन्य है। महाराज ! मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे नैहर जाने की आज्ञा न दें और जो जाना ही हो तो, चलो दोनों आदमी साथ ही विदर्भ चलें। मेरे पिता के घर आप बड़े आदर-मान से रहेंगे।

नल बोले—यह नहीं हो सकता। शास्त्रों में कहा है कि दिन बिगड़ने पर कभी अपने हितैषी या नातेदारों के घर नहीं जाना चाहिए। इसलिए तुम्हारी इस बात को मैं नहीं मान सकता। इसके सिवा, मैं जिस जगह ख़ूब ठाट-बाट से दल-बल लेकर गया था, वहाँ आज कौनसा मुँह लेकर पत्नी की आधी सारी पहने हुए जाऊँगा ? रानी ! यह मुझसे न होगा।

रानी—नाथ ! इस बात को मैं बख़ूबी समझती हूँ, किन्तु क्या कीजिएगा ? इस वन में आपके मुँह में कड़ुए, तीते, कषैले वन-फल कैसे दिया करूँ ? क्या कहूँ महाराज ! जिनको सोने की थाली में अमृत-समान खीर देते हुए भी जी हिचकता था उनको जब पत्तों के

दोनों में जंगली फल देना पड़ता है और जब आपकी प्यास बुझाने के लिए तालाब से कमल के पत्तों में पानी लाना पड़ता है तब मेरा कलेजा फटने लगता है।

नल—नहीं रानी! इसमें मुझे रत्ती भर भी दुःख नहीं। यदि दुःख है तो पराधीनता के अन्न में। रानी! वन में विचरनेवाले पक्षी को सोने के पींजरे में बन्द करके राज-भोग देने से कहीं वह प्रसन्न रह सकता है? प्यारी! मुझे ऐसा करने को मत कहना।

दमयन्ती और कुछ नहीं कह सकी। उसने राजा की उदास सूरत देखकर एक बूँद आँसू ढलका दिया।

नल ने सोचा कि इस अवस्था में कुछ दिन के लिए दमयन्ती को छोड़ने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं है, किन्तु दमयन्ती मुझे इस तरह छोड़ेगी थोड़े ही; वह तो मुझे छोड़कर नैहर भी नहीं जाना चाहती। तब मेरी इच्छा कैसे पूरी होगी? इस प्रकार सोच-विचार-कर नल ने स्थिर किया कि दमयन्ती को ही छोड़ जाना होगा; बिना इसे छोड़े इस अपार विपत्ति-सागर से किसी तरह पार नहीं हो सकूँगा। उनके मन में एकाएक यह बात आई कि खूँख़ार जानवरों से भरे जंगल में दमयन्ती को अकेली छोड़ जायँ तो वह अपनी रक्षा कैसे करेगी! फिर उन्होंने सोचा कि 'विपत्ति में फँसे हुए की रक्षा धर्म ही करता है।' हिम्मत से छाती को पक्की कर महाराज नल ने अपना कर्तव्य स्थिर करते हुए कहा—दमयन्ती! यह जो जंगल दिखाई देता है इसके उत्तर तरफ़ से एक रास्ता पूर्व को गया है। वही विदर्भ जाने का रास्ता है। बहुतसे व्यापारी और तीर्थ के यात्री उस रास्ते से आया-जाया करते हैं।

दमयन्ती ने घबड़ाकर कहा—"क्यों महाराज! दासी से ऐसी बात क्यों कहते हैं? क्या आप मुझको छोड़कर चले जायँगे? क्या

आप मेरे किसी व्यवहार से दुःख पाते हैं ? महाराज ! मैंने जान-बूझ-कर तो कोई अपराध किया नहीं है, अगर भूल से कुछ क़ुसूर हो गया हो तो क्षमा कीजिए । मुझे चरणों से अलग मत कीजिए, मैं आपके ही आसरे में हूँ । इस पतलीसी बेल को तरुवर से अलग करके धूल में मत मिलाइए ।" तदनन्तर दमयन्ती आँसुओं की धारा बहाने लगी ।

नल चुप हैं । घोर चिन्ता से पागल हो रहे हैं । फूलसी कोमल दमयन्ती उनके चरणों में गिरकर रोने लगी ।

नल ने कुछ सँभलकर कहा—प्यारी ! तुम घबराती क्यों हो ? मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता । मैं आत्मा को त्यागकर जीता भले रह जाऊँ, पर तुमको छोड़कर मैं जीता नहीं रह सकता ।

दमयन्ती ने कहा—महाराज ! अगर आप मुझे छोड़ना नहीं चाहते तो फिर आपने विदर्भ का रास्ता क्यों बताया ? मैं आपकी उदासीनता देखकर घबरा रही हूँ । जान पड़ता है कि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे ।

नल ने किसी तरह दमयन्ती को ढाढ़स दिया ।

[१०]

एक दिन गहरी रात को नल ने देखा कि दमयन्ती सोई हुई है । दमयन्ती की नींद से अलसाई हुई भुजाएँ नल के शरीर से अलग हो पड़ी हैं । भागने का यही अच्छा मौक़ा है । नल ने इधर-उधर दृष्टि घुमाई तो सामने एक छुरी नज़र आई । उसे देखकर नल ने सोचा कि दमयन्ती को छोड़ देना ही विधाता को मंज़ूर है । नहीं तो इस घने वन में छुरी कहाँ से आ गई । यह सोचकर, नल ने उस छुरी से रानी की आधी सारी फाड़ ली । आज महाराज नल मानो बन्धन से छूट गये हैं । वे सोचने लगे, कहाँ जाऊँ । इस अँधेरी रात में, तरह

तरह के भयानक जन्तुओं से भरे हुए घने वन में, दमयन्ती को अकेली छोड़कर कैसे जाऊँ? एक बार उन्होंने सोचा, नहीं जाऊँगा। फिर सोचा नहीं, ऐसी असहाय अवस्था में दमयन्ती को छोड़ जाने के सिवा भाग्य के साथ लड़ाई करने का और कोई उपाय नहीं है। इसलिए दमयन्ती को छोड़कर जाना ही पड़ेगा। फिर सोचा—यह बेचारी मेरे विरह में चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा देखेगी और मेरी प्यारी भूखों मरकर या फाँसी लगाकर प्राण अवश्य ही तज देगी। मुझे राजपाट से कुछ काम नहीं। देवी के समान यह स्त्री ही मेरा सर्वस्व है। इसको छोड़कर मैं इन्द्रासन भी नहीं चाहता। मेरे लिए तो यही पारस पत्थर है। मेरी दरिद्रता के अँधेरे में ऐश्वर्य्य का प्रकाश दमयन्ती से अवश्य ही चमक उठेगा। हृदय! शान्त हो; सारी दुनिया एक तरफ़ और अकेली दमयन्ती एक तरफ़। मैं दमयन्ती को नहीं छोड़ सकूँगा।

आशा की सन्तोष देनेवाली एक शक्ति अचानक फिर जाग उठी मानो कोई वाणी हृदय में लगातार गूँजने लगी कि 'सामने तुम्हारा भयंकर कर्तव्य है, पत्नी के प्रेम में फँसकर अपने कर्त्तव्य को मत भूलो। तुम राजा हो, तुम्हारे लिए हज़ारों प्राणी रोते हैं। एक आदमी की रुलाई के पीछे हज़ारों आदमियों की रुलाई को बिसारना राजनीति नहीं।' नल ने सोचा कि मेरी सन्तान-समान प्रजा दुष्ट भाई के अत्याचार से दुखी होकर ज़रूर कलपती होगी; यदि ऐसा न होता तो मेरे चित्त में आज ऐसा भाव उठता ही क्यो? यह सोचकर नल उठ बैठे। उन्होंने हाथ जोड़कर पत्नी को सम्बोधन करते हुए मन ही मन कहा—"देवी! मेरा अपराध न मानना। कठिन कर्तव्य की पुकार से ही मैं तुमको छोड़ता हूँ। हे धर्म! तुम मेरी दमयन्ती की रक्षा करना। हे वन-देवी! मैं तुम्हारी पवित्र गोद में अपनी प्यारी प्राण-सम्पत्ति को रक्खे जाता हूँ; दरिद्र की इस थाती को हिफ़ाज़त से

रखना। हे भगवन् ! तुम्हारे चरणों में दमयन्ती को सौंपे जाता हूँ। आज तुम्हारे ही पवित्र बुलावे से मेरा मोह-जाल कट गया है। मैं सुनता हूँ कि हज़ारों प्राणी मेरे लिए रोते हैं। प्रभो ! यह मेरे मनुष्यत्व की परीक्षा है। यह तुम्हारा ही पवित्र बुलावा है। इसलिए मेरी दमयन्ती का मंगलमय भविष्य तुम्हारे ही मंगल-पूर्ण हाथ में है।" अब नल चलने लगे। वे एक पग चलकर फिर पीछे देखते हैं; फिर दो-तीन पग बढ़कर पीछे उलटकर देखते हैं कि दमयन्ती ज्यों की त्यों सोई है कि नहीं!

इस संसार में प्रीति का खिंचाव ऐसा बलवान् है कि वह किसी तरह नहीं हटता। महाराज नल सब समझ-बूझकर भी फिर दमयन्ती की ओर लौटे। फिर सोचा—यह क्या ? कहाँ जाता हूँ ? मेरे जाने का रास्ता तो पीछे है। फिर दो-तीन पग बढ़े। अब उन्होंने सोचा कि मुझे इस खिंचाव को तोड़ना ही चाहिए। हृदय ! शान्त हो जाओ, तुम्हारे इस भयङ्कर कर्म के भरोसे ही मेरा भविष्य और सैकड़ों प्रजाओं का सुख-दुख है। धीरे-धीरे नल अँधेरे में छिप गये। जहाँ तक नज़र पहुँचती है वहाँ तक वे एक-एक बार पीछे फिरकर देख लेते हैं कि दमयन्ती मेरे पीछे-पीछे तो नहीं चली आती है। पैरों के तले पेड़ों के जो पत्ते दबते थे उनकी आवाज़ से वे समझते थे कि दमयन्ती, नींद टूटने पर, मुझे न देख घबड़ाकर मुझे पकड़ने के लिए दौड़ी आ रही है, किन्तु कुछ ही देर बाद उन्होंने सामने से एक जंगली जानवर को जाते देखा।

घोर अँधेरा है, कुछ भी दिखाई नहीं देता। नल ने उसी अँधेरी रात में आकाश की ओर आँखें उठाकर सात-ऋषियों के मण्डल को देखा और ध्रुव तारे को पहचानकर, जिधर को जाना था, उधर जाने लगे। क ओर पत्नी की हालत की और दूसरी ओर हज़ारों प्रजाओं

के रोने की याद आने से महाराज नल का धीरज जाता रहा। परोपकारी मनुष्य का हृदय दूसरे के दुःख में अपने सुख और शान्ति को—दुनिया को भी—लात मारकर कर्तव्य के मार्ग में दौड़ता है। इस गति को रोकना विधाता के लिए भी कठिन-सा जान पड़ता है। गङ्गाजी की ज़ोरदार धारा रोकने में मतवाले गजराज के भी छक्के छूट जाते हैं। जिस काम में भरपूर मङ्गल है वह ज़रूर पूरा होगा, विधाता के राज्य में, इसमें तिल भर भी इधर-उधर नहीं हो सकता। इसी से आज नल का हृदय खुला हुआ है, इसी से आज उनका चित्त जीत के पागलपन से मतवाला हो रहा है, इसी से वे प्राण से भी प्यारी पत्नी के प्रेम-बन्धन को तोड़कर परोपकार के मार्ग में सुध-बुध भूले हुए एक असहाय राहगीर हैं।

नल ने धीरे-धीरे एक भयङ्कर वन में घुसकर देखा कि एक जगह दावाग्नि जल रही है। उस आग के भीतर से कोई जीव गिड़-गिड़ाकर उनसे सहायता माँग रहा है। परोपकारी नल का हृदय इससे दुखी हुआ। उन्होंने देखा कि एक बड़ा भारी अजगर आग के बीच में पड़ा है, उससे चला नहीं जाता। अगर वह तुरन्त वहाँ से न हटा लिया जाय तो जलकर राख हो जायगा। यह समझ-कर, नल झटपट उस आग में घुसकर उस साँप को बाहर निकाल लाये। बाहर निकलते समय आग की लपट उनकी देह में लग गई। एक जीव की रक्षा करने से उनको जो सन्तोष हुआ था उसके सामने आग की लपट किसी गिनती में नहीं थी, किन्तु हाय रे दुर्दैव! निठुर साँप ने उनको काट लिया, तो भी महाराज नल ने उसको फेंक नहीं दिया, वे उसे ऐसे स्थान में ले आये जहाँ वह आफ़त से बचा रहे। नल ने देखा कि साँप के काटने से प्राण जाने का डर नहीं है, किन्तु उनकी देह उस साँप के विष से तुरन्त भद्दे रंग की और टेढ़ी हो

गई। उन्होंने सोचा कि वेष बदलते वक़्त मेरे शरीर की यह हालत मेरे लिए बहुत अच्छी है।

इतने में महाराज नल ने सुना—"हे नल! चिन्ता छोड़ो। मेरे विष से तुमको कोई दुःख न होगा। मैं कर्कोटक हूँ। हे राजन्! मैं तुमको ये दो कपड़े देता हूँ; इनसे बदन ढकने पर तुम अपनी पहले की कान्ति फिर पा जाओगे। तुम कोशल-पति महाराज ऋतुपर्ण के जल्दी सारथि बनो। तुम्हारा यह कुरूप चेहरा और कूबरपन वेष बदलने का बड़ा उम्दा ज़रिया है। हे राजा नल! मेरे काटने को विधाता की ही शुभ आज्ञा समझना।" यह कहकर कर्कोटक एका-एक ग़ायब हो गया।

नल दोनों कपड़ों को लिये हुए राजा ऋतुपर्ण के पास पहुँचे और राजा से सारथि की जगह देने के लिए प्रार्थना करते हुए बोले—"राजन्! मैं घोड़ों को चाल सिखाने में बड़ा चतुर हूँ। मैं निषध-नरेश नल का सारथि रह चुका हूँ।" ऋतुपर्ण ने ख़ुशी से उनको सारथि की जगह पर भर्ती कर लिया।

[११]

इधर दमयन्ती ने नींद टूटने पर देखा कि पूर्व दिशा में उषा की लाली छा रही है, किन्तु बग़ल में घोर अँधेरा है! महाराज कहाँ हैं? वे कहाँ गये? एक बार सोचा कि पास ही कहीं गये होंगे, अभी आते होंगे, किन्तु बहुत देर हो गई, अभी तक नहीं आये! तब क्या वे मुझे छोड़कर कहीं चले गये? हाय! हाय! ऐसा भी कहीं हो सकता है? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वे अभी आवेंगे, आशा तो उसे ढाढ़स देने लगी, किन्तु हृदय साफ़ कहने लगा कि नल तुम्हें छोड़कर चले गये।

धीरे-धीरे जब बहुत समय बीत गया, तब दमयन्ती घबराकर उसी वन में नल को ढूँढ़ने लगी। जल्दी-जल्दी चलने से, उसके सिर के बाल खुल गये। वह इधर-उधर भटकने और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—"हे नाथ! आपके प्रताप से डरकर शत्रु हथियार रख देते हैं, आपके बर्ताव से मित्र का हृदय शीतल होता है, फिर आप मुझको इतना क्यों सताते हैं? मैंने आपके चरण-कमलों में ऐसा क्या अपराध किया है जिसके लिए आपने मुझे छोड़ दिया? हे शास्त्रों के जानकार! आपने बहुतसे धर्म-शास्त्र पढ़े हैं, किन्तु उनमें क्या कहीं पति की भक्त स्त्री को छोड़ देने की बात देखी है? आप जिसको इतना प्यार करते थे उसे ही अकेली छोड़कर क्यों चले गये?" दमयन्ती रोने लगी।

दमयन्ती रोती-रोती समझ गई कि निठुर देवता की कठिन आज्ञा से महाराज नल ने ऐसा किया है। यह भी उसी की चाल है। यह सोचकर दमयन्ती कहने लगी—हे पापी प्राण! तू अब किस लिए पड़ा है? तेरे जीवन की सब साध तो पूरी हो चुकी। तू जल्द निकल जा। सब गुणों के जाननेवाले मेरे देवता-समान स्वामी तेरे कारण दुःख की आग में झुलस रहे हैं। हे राजन्! तुम तो दुखिया को सहारा देते हो। किसी के आँसू देखने से तुम्हारा धीरज छूट जाता है। आज तुम्हारी दमयन्ती रो-कलप रही है। क्या तुम मन की आँखों से यह नहीं देखते हो?

इस प्रकार विलाप करती-करती दमयन्ती पगली की तरह वन में चारों ओर घूमने लगी। कहीं मृग को देखकर वह पूछती है—"हे हिरन! तुम लोग वन में चारों ओर घूमते हो, तुमने कहीं मेरे हृदय-नाथ को तो नहीं देखा है?" वह एक अशोक के पेड़ के नीचे पहुँच-कर बोली—हे अशोक! तुम स्त्रियों को बहुत प्यारे हो; देखो, मैं

अभागिनी पति के वियोग में बहुत दुःख पा रही हूँ; दया करके मेरा शोक तो मिटाओ। मुझे बता दो कि मेरे प्राणप्यारे कहाँ हैं।

शोक से व्याकुल दमयन्ती इस प्रकार विलाप करते-करते एक भयानक अजगर के मुँह में जा पड़ी। साँप को मुँह फैलाकर निगलने के लिए आते देखकर दमयन्ती का प्राण सूख गया। उस बेचारी ने सोचा कि हाय! हाय! मनुष्यों में देवतारूप प्राणनाथ की प्रेमभरी गोद से अलग होकर अन्त को साँप के मुँह में जाना पड़ा! महाराज के प्रति मेरा कर्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ। इस प्रकार सोचकर वह जान लेकर भागी, किन्तु लगातार तीन दिन तक भूखी रहने से उसकी देह धीरे-धीरे बेक़ाबू हो गई थी। इससे दमयन्ती और भाग नहीं सकी। वह दुष्ट अजगर के मुँह के सामने जा पड़ी। अचानक एक व्याध ने वहाँ पहुँचकर, अजगर के मुँह में एक तेज़ हथियार मारा। साँप मारा गया। जान बचानेवाले के प्रति दमयन्ती एहसान प्रकट करने लगी।

अब दमयन्ती एक और नई आफ़त में पड़ी। दुष्ट बहेलिया दमयन्ती को साँप के मुँह से बचाकर, उसके अनोखे रूप को देखते ही, बोला—अजी! मैं तुमको देखकर लट्टू हो गया हूँ। तुम मेरे ऊपर कृपा करो।

दमयन्ती ने कहा—तुमने मेरा प्राण बचाया है, तुमने मुझे साँप के मुँह से बचाकर नया जन्म दिया है, इसलिए तुम मेरे पिता-समान हो। तुम ऐसी बुरी बात क्यों कहते हो? मेरे आदर्श-चरित्र स्वामी मुझको छोड़कर चले गये हैं, उनके लिए मैं मौत से बढ़कर कष्ट पा रही हूँ। दया करके बताओ कि इस वन में तुमने उनको कहीं देखा है?

शिकारी चुप था। दमयन्ती की सुघड़ाई उसको मारे डालती थी। उसने कहा—अरी सुन्दरी! मैं नहीं समझता कि तुम क्या कहती

हो; तुम मेरे घर चलो, अपने निर्दयी स्वामी को भूल जाओ। मैं प्राण देकर तुम्हारी पूजा करूँगा।

यह बात सुनकर दमयन्ती के क्रोध की आग भड़क उठी। क्रोध के मारे सती का शरीर थर-थर काँपने लगा।

उसके दोनों नेत्र अग्नि की तरह चमक-चमककर, महिषासुर के युद्ध में देवी के नेत्रों की तरह, नाचने लगे। सती दमयन्ती की देह से निकली हुई क्रोध की अग्नि में जलकर शिकारी भस्म हो गया।

इस प्रकार, व्याध के हाथ से बचकर, दमयन्ती सोचने लगी कि अब कहाँ जाऊँ, कहाँ जाने से प्राणनाथ को पाऊँगी। यह सोचकर वह रोते-रोते वन के उत्तरी हिस्से में गई। वहाँ उसने देखा कि एक सीधा रास्ता सामने से चला गया है और उसी रास्ते से कई व्यापारी व्यापार करने जा रहे हैं। दमयन्ती उन व्यापारियों के साथ हो गई। बनियों के मुखिया ने उसको ढाढ़स दिया और दूसरे बनियों ने उसका आदर किया।

धीरे-धीरे रात हुई। सब लोगों ने आराम करने के लिए एक तालाब के किनारे बैलों का बोझा उतार दिया और माल को बीच में रखकर सब लोग सो गये। दमयन्ती एक तरफ़ धूल में लेट रही। जब आधी रात को सब व्यापारी सो गये तो कुछ जङ्गली हाथी तालाब में पानी पीने आये। किनारे पर लदे हुए बैलों और बनियों को देखकर वे क्रोध से गरजने लगे। बँधे हुए बैलों से जंगली हाथियों की लड़ाई छिड़ गई। बहुतेरे व्यापारी उन लड़ते हुए पशुओं के पैरों तले कुचलकर मर गये। नादान बनियों ने सोचा कि बुरे लक्षणोंवाली इस स्त्री के साथ रहने से ही देवता लोग नाराज़ हो गये हैं। इसलिए, इसको तुरन्त मार डालना चाहिए; नहीं तो हम लोग देवता के कोप से छुटकारा नहीं पावेंगे। दमयन्ती ने उन लोगों की यह सलाह सुन ली। बस, वह

उसी दम उन लोगों की आँख बचाकर वहाँ से चल पड़ी, और जिधर का रास्ता मिला उधर ही को जाने लगी। अँधेरे में रास्ता न सूझता था। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से वह वहाँ से बहुत दूर निकल गई।

रात बीती, सबेरा हुआ। बिना ठौर-ठिकाने के, तेज़ी से चलने के कारण, उसके कपड़े फट गये और सारे शरीर पर धूल छा गई। अब दमयन्ती लाचार होकर एक नगर में गई। वहाँ के ऊधमी लड़कों ने, उसकी ऐसी सूरत देखकर, उसे पगली समझा। इसलिए वे उसका पीछा करके उसको चिढ़ाने लगे। आसरा पाने के लिए दमयन्ती सामने के राजमहल की ओर गई। पता लगा कि यह चेदि देश के राजा सुबाहु का महल है। दमयन्ती जब उस महल के दरवाज़े पर पहुँची तो राजमाता खिड़की से उस दीन वेषवाली स्त्री को देखकर तरस खा गईं। उन्होंने एक लौंडी से कहा कि तुम इस स्त्री को तुरन्त मेरे पास ले आओ।

दमयन्ती के बाल बिखरे हुए थे। उसकी सारी भी चिथड़े-चिथड़े हो गई थी। जब इस वेष से दमयन्ती ने राज-भवन में जाकर राजमाता को सिर नवाया तो राजमाता ने लौंडी से कहा—तुम झटपट इसको नहाने के कमरे में ले जाकर नहला-धुला दो।

लौंडी उसको नहाने के घर में ले गई। दमयन्ती ने बदन का धूल-धक्कड़ धोकर राजमाता का दिया हुआ एक कपड़ा पहना। राजमाता की दया से उस सुन्दरी का चेहरा चमक उठा।

तब राजमाता ने उससे पूछा—बेटी! तू ऐसी पगली की तरह वन-वन क्यों घूमती थी?

दमयन्ती का शोक उमड़ आया। आँसुओं से उसकी छाती भीगने लगी। राजमाता ने आँचल से उसकी आँखें पोंछकर कहा—बेटी! यहाँ तेरे डरने की कोई बात नहीं। बेखटके तू मुझको अपना

हाल बता दे। तेरी हालत देखने से तो यही जान पड़ता है कि तू बहुत दुःख में है। मुझसे जहाँ तक होगा वहाँ तक, मैं तेरे दुःख को दूर करने का उपाय करूँगी। सिर में सेंदुर देखने से मालूम होता है कि तू सुहागिन है। बेटी ! तेरी ऐसी दुर्दशा क्यों है?

दमयन्ती ने हृदय के शोक को दबाकर कहा—"मैया ! मैं बड़ी ग़रीबिनी हूँ। मेरे स्वामी, दिनों के फेर से, घर-बार छोड़कर वन में रहते थे। मैं उनको, बुरी हालत के दुःख से, सदा व्याकुल देखती थी और मेरा कोई कष्ट देखकर उनका भी कलेजा फटने लगता था। बीच-बीच में वे मुझसे इस तरह की बात भी कह देते थे कि 'मुझे भाग्य के साथ लड़ाई करके अपनी हालत बदलनी होगी।' मैं रोती तो वे बड़े प्रेम से मेरी आँखों के आँसू पोंछ देते। मा ! आज चार दिन हुए, वे अँधेरी रात में मुझको घने वन में छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। मैं चार दिन से वन-वन भटककर उनको ढूँढ़ती फिरी किन्तु कहीं उनका दर्शन नहीं हुआ।" धीरे-धीरे उसने उन सब विपत्तियों का कच्चा हाल सुना दिया जो उस पर इन चारों दिनों में बीती थीं। महल की स्त्रियाँ उसके पातिव्रत्य का परिचय पाकर हक्का-बक्का हो गईं।

"बेटी ! तुम मेरी लड़की की तरह मेरे यहाँ रहो। यहाँ तुम्हें किसी तरह का डर नहीं है। मैं तुम्हारे स्वामी को ढुँढ़वाऊँगी।" कहकर राजमाता ने अपनी लड़की से कहा—बेटी सुनन्दा ! यह तुम्हारी उमर की है, इसलिए तुम इसको अपनी सखी समझना।

दमयन्ती को सुनन्दा अपने कमरे में लिवा गई। दमयन्ती राजमहल में राजमाता का प्रेम और सुनन्दा का सखित्व पाकर निडर हो रहने लगी।

[१२]

इधर विदर्भदेश के राजा ने जमाई और बेटी के देश त्यागने की बात सुनकर, उनको ढूँढ़ने के लिए देश-देश में आदमी भेजे। वे लोग अपने मालिक के हुक्म से—गाँव-गाँव, नगर-नगर, जंगल-जंगल—नल और दमयन्ती की खोज में रात-दिन घूमने लगे।

एक दिन सुदेव नामक एक ब्राह्मण ने दैवयोग से चेदि-राज्य की राजपुरी में, सुनन्दा के साथ दमयन्ती को टहलते देखा। दमयन्ती ने, पिता के घर से आये हुए, सुदेव ब्राह्मण को पहचाना और उसे पास बुलाकर माता-पिता का कुशल-समाचार पूछा। थोड़ी दूर पर खड़ी होकर सुनन्दा उन दोनों की बातचीत सुनती थी। उसने जब सुना कि उसकी सखी विदर्भ देश की राज-कन्या है तब वह बड़े अचरज से माता के पास दौड़ी गई। उसने जाकर माता से कहा—"मा! दीन वेष में आई हुई मेरी सखी कोई मामूली स्त्री नहीं है। वह विदर्भ-राज की लड़की और निषध-नरेश महाराज नल की रानी दमयन्ती है।" यह सुनकर राजमाता ने अचरज से कहा—सुनन्दा! तुम यह क्या कहती हो? तब तो दमयन्ती अपने नाते की ही है। परन्तु उसकी ऐसी हालत क्यों हुई? मैंने अब तक कुछ भी हाल नहीं जान पाया। तुम क्या कहती हो, कुछ समझ में नहीं आता। दमयन्ती की ऐसी दशा होती तो विदर्भ-नरेश मुझे ख़बर ज़रूर देते। दमयन्ती कहाँ है? उसको मेरे पास बुला तो लाओ।

सुनन्दा ने दमयन्ती से जाकर कहा—"सखी! तुमको मा बुलाती हैं।" दमयन्ती सुदेव ब्राह्मण को ठहराकर राजमाता से भेंट करने के लिए महल में गई।

राजमाता ने कहा—बेटी दमयन्ती! तुमने इतने दिन मुझको अपना परिचय क्यों नहीं दिया? आज मैंने सुनन्दा के मुँह से सब

सुन लिया है। बेटी ! मैंने तुमको कभी देखा ही नहीं था। तुम तो मेरी गोद की लड़की हो। तुमने मुझसे छिपाया क्यों ? मैंने तुम्हारा असली परिचय न पाकर न जाने कब कैसा वर्ताव किया हो। ख़ैर, उसका कुछ ख़याल मत करना।

राज-महल में धूम मच गई। चारों ओर यही चर्चा होने लगी कि जो नई स्त्री आई है, वह विदर्भ की राज-कुमारी और निषध-राज की रानी है। वह राजमाता की रिश्तेदारिन है। आज विदर्भराज के भेजे हुए एक ब्राह्मण ने आकर दमयन्ती को पहचाना है।

राजमाता की आज्ञा से सुदेव की बड़ी ख़ातिरदारी हुई। दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में राजमाता ने बहुतसे कपड़े और गहने देकर दमयन्ती को बड़े आदर-मान से विदर्भ देश को भेजा।

[१३]

दमयन्ती ने नैहर आकर माता-पिता के चरणों की वन्दना की। प्राणों से प्यारी लड़की के वियोग से राजा-रानी का मन बहुत उदास हो गया था। आज दमयन्ती को देखकर उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। नैहर में दमयन्ती का बड़ा आदर-मान होने लगा, किन्तु यह उसको अच्छा नहीं लगता था। नल के विरह की आग उसके हृदय को सदा जलाती रहती थी। माता-पिता से इतना आदर पाकर भी दमयन्ती दिन-दिन दुबली और पीली होने लगी। राजा ने नल को ढूँढ़ने के लिए, फिर देश-देश में आदमी भेजने का बन्दोबस्त किया। दमयन्ती ने उन सब आदमियों से कह दिया—"आप लोग देश-देश में घूमते समय एक पद कहिएगा। अगर कोई आदमी इसका उत्तर दे तो आप लोग उसका सब हाल-हवाल मालूम कर लीजिएगा।" दमयन्ती ने हर एक दूत को यह पद लिख दिया—

अरे आधे वसन के तुम चोर हो कहँ छिप रहे।
देखो तुम्हारे विरह में उसने घनेरे दुख सहे॥
वह प्रेम प्यारी का बिसर, तुम क्यों निठुर ऐसे भये?
तेरे बिना उस दुःखिनी के प्राण होठों आ गये॥१॥
वह अन्न-जल छूती नहीं रो-रो बिताती रात-दिन।
कैसे कहूँ जो हो रही उसकी दशा है आप बिन॥
उस विजन वन में रात को सोती हुई को छोड़कर।
तुम चल दिये क्या धर्म है यह फिर न देखा लौटकर॥२॥
कार्य पति का मुख्य है पत्नी-सुरक्षा जानिए।
स्वामी बिना अबला सती का विफल जीवन मानिए॥
हा! गया सुख का दिन, रहे छिप शूर होकर भी डरे।
मलिना कमलिनी हो रही, कब प्रात होगा हे हरे॥३॥
दिन सोचकर दुर्भाग्य का धृति धीरता न कभी तजो।
होगा मिलन फिर भी फिरे दिन ईश के पद को भजो॥४॥

देश-देश में, राज्य-राज्य में, जाकर दूत लोग इस पद्य को पढ़कर सुनाते, पर उन्हें कहीं से कुछ भी उत्तर नहीं मिला।

एक दिन, पर्णाद नामक एक ब्राह्मण ने अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण की सभा में जाकर दमयन्ती का सिखाया हुआ वह पद पढ़ा; किन्तु कोई उस कविता का उत्तर न दे सका।

ऋतुपर्ण राजा का बदशकल कुबड़ा सारथि बाहुक उस पद को सुनकर पर्णाद से एकान्त में बोला—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपको इस का उत्तर दे सकता हूँ। आप लौटते समय मुझसे इसका उत्तर लेते जाइएगा।

पर्णाद जब स्वदेश को लौटने लगा तब बाहुक ने उसको दमयन्ती के पद के उत्तर में आगे लिखी पंक्तियाँ लिखकर दे दीं—

उस दूर कोशल देश में ऋतुपर्ण की नगरी जहां।
आधे वसन का चोर दुख से है बिताता दिन वहां॥
वह स्वर्ण-पक्षी वस्त्र लेकर जब हमारा उड़ गया।
हा! तब तुम्हारे चित्त में कुछ कम विषाद नहीं भया॥१॥
प्यारी तुम्हारे प्रणय का साखी हमारा नयन है।
जो आँसुओं के नीर में रहता किये ही शयन है॥
यह भूल ही तबसे गया है—नींद कहते हैं किसे?
ईश्वर करे अब शीघ्र ही दर्शन तुम्हारे हों इसे॥२॥

पर्णाद नाम के ब्राह्मण ने विदर्भ राज्य में लौटकर, राज-महल में आकर, दमयन्ती से कहा—राजकुमारी! मैंने निषध-नरेश को खोजते-खोजते अनेक देशों में भटककर, अन्त में कोशल-राज ऋतुपर्ण के कुबड़े सारथि से यह उत्तर पाया है।

दमयन्ती ने पर्णाद के दिये हुए पत्र को एक बार, दो बार, तीन बार—कई बार पढ़ा। पढ़कर वह समझ गई कि यह मेरे जीवननाथ की ही चिट्ठी है। बहुत दिनों तक दर्शन न पाने के कारण खेद के विष से जो देह जर्जर हो रही थी, उसमें आज आशा का अमृत बरस गया।

दमयन्ती ने हड़बड़ाकर पूछा—हे द्विजवर! कृपा करके बताइए कि ऋतुपर्ण राजा के सारथि का नाम क्या है और उनका चेहरा कैसा है।

पर्णाद—राजकुमारी! सारथि का नाम बाहुक है। वह बहुत दुबला-पतला और काले रङ्ग का है। फिर भी चेहरे से ऊँचे ख़ान्दान का मालूम पड़ता है।

यह बात सुनकर दमयन्ती को धोखा हुआ। उन्होंने रानी से कहा—मा! ऋतुपर्ण राजा के सारथि ही बहुत करके निषध-पति

हैं। मैं उस सारथि को देखना चाहती हूँ। सुदेव शर्मा एक बार कोशल देश में जाकर यह कह आवें कि 'दमयन्ती फिर स्वयंवर करेगी।' स्वयंवर का न्यौता पाकर जब महाराज ऋतुपर्ण विदर्भराज्य में आवेंगे तब उनके साथ वह सारथि ज़रूर आवेगा।

रानी—यह कैसे हो सकता है? शायद वह सारथि न भी आवे। राजा के सिर्फ़ एक ही सारथि तो होता नहीं।

दमयन्ती—"नहीं मा! इसके लिए मैंने एक तदबीर सोची है। कोशल देश यहाँ से बहुत दूर है। अगर सुदेव वहाँ जाकर कहे कि कल ही विदर्भ-राजकुमारी का स्वयंवर है तो राजा ऋतुपर्ण उस सारथि को ज़रूर साथ ले आवेंगे। मा! मैं जानती हूँ कि निषध-पति घोड़ा हाँकने में अपना जोड़ा नहीं रखते। एक दिन में, इतनी दूर, महाराज नल के सिवा और कोई नहीं आ सकेगा।" रानी ने बेटी की बात मानकर सुदेव को कोशल-देश में भेज दिया। सुदेव ने कोशल-राज के दरबार में जाकर कहा—कल, विदर्भ-राजकुमारी का फिर से स्वयंवर होगा।

स्वयंवर में पहुँचने के लिए महाराज ऋतुपर्ण तुरन्त तैयार हो गये। उन्होंने बाहुक को बुलाकर कहा—सारथि! अगर तुम एक ही दिन में मुझे विदर्भ-देश पहुँचा सको तो मैं तुमको मुँह माँगा इनाम दूँगा।

नल समझ गये कि यह सिर्फ़ दमयन्ती की चालाकी है। इसलिए वे अपनी बात के पूरी होने की आशा कर राज़ी हो गये और उन्होंने चुने हुए घोड़ों को रथ में जोता। रथ हवा की चाल से आकाश-मार्ग में जाने लगा।

राजा ऋतुपर्ण को बाहुक अनेक देश दिखाता गया। एकाएक घोड़ों

की लगाम खींच ली गई और रथ में जुते हुए चारों घोड़े धीरे-धीरे पृथिवी पर उतरे।

ऋतुपर्ण ने पूछा—बाहुक! रथ की चाल धीमी क्यों हुई?

बाहुक—महाराज! हम लोग विदर्भ-राज्य के पास पहुँच गये।

राजा—अयँ! इतने थोड़े समय में, तुमने इतनी दूर का रास्ता कैसे तय कर लिया!

बाहुक—महाराज! मैंने पहले समय में महाराज नल से घोड़ा हाँकने की विद्या सीखी थी। इस विद्या के प्रभाव से मैं घड़ी भर में चार सौ कोस तक रथ ले जा सकता हूँ। ये देखिए, ताप्ती और भद्रा आदि विदर्भ-राज्य की नदियाँ हैं।

राजा—भद्र, मैं तुम्हारा घोड़ा हाँकना देखकर बहुत ख़ुश हुआ हूँ। बताओ, तुमको क्या इनाम दूँ?

बाहुक ने नम्रता से कहा—महाराज! आप पासा खेलने में चतुर हैं। मुझे वही विद्या सिखा दीजिए।

राजा ऋतुपर्ण ने कहा—मैं तुमको वह विद्या सिखा दूँगा। परन्तु एक शर्त है—मैं तुमसे, उसके बदले में, घोड़ा हाँकने की विद्या सीखना चाहता हूँ।

विदर्भ-नगर के बाहर, बाहुक ने राजा ऋतुपर्ण को घोड़ा हाँकने की, और ऋतुपर्ण ने उसे जुआ खेलने की, विद्या सिखा दी।

ऋतुपर्ण ने विदर्भ में पहुँचकर स्वयंवर का कोई भी चिह्न न देखा। इससे उन्हें अचरज हुआ। उन्होंने सोचा, तो क्या किसी ने मुझे धोखा दिया है! अब उनको होश हुआ। वे सोचने लगे कि "दमयन्ती क्या फिर स्वयंवर कर सकती है! जिसने देवताओं को छोड़कर निषध-पति के गले में जयमाल डाली थी, उसके फिर स्वयंवर करने की ख़बर पर विश्वास करके मैं यहाँ आया हूँ! अफ़सोस!"

राजा ऋतुपर्ण बहुत सिटपिटाये। कुछ सोच-विचार कर तय किया, "जब यहाँ आ गया हूँ तब एक बार विदर्भराज से मिल ही लेना चाहिए।" ऋतुपर्ण विदर्भ-राजधानी में आये।

राजा भीम को कोशल देश के राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार जानकर बड़ा अचरज हुआ। वे तुरन्त उनके पास गये। यथा-योग्य मिल-भेंटकर बड़े आदर-मान से उनको वे राज-महल में ले आये। राजा भीम की आज्ञा से सारथि और घोड़ों के रहने का ठीक-ठीक बन्दोबस्त हुआ।

ऋतुपर्ण ने कहा—विदर्भराज! मुझे एक बड़ा ही चतुर सारथि मिला है। रथ पर घूमते-घूमते, एकाएक जी में आया कि बहुत दिन से आपसे भेंट नहीं हुई। इसी से आज बिना ख़बर दिये ही आपका मेहमान हो गया।

कोशलपति के आने का समाचार पाकर दमयन्ती के चित्त में एक नया भाव उठा। उसने अपनी प्यारी सखी केशिनी को बुलाकर कहा—केशिनी! तुम कोशलराज के सारथि को एक बार देख लो आओ।

केशिनी ने उस कुरूप और कुबड़े सारथि के पास जाकर बड़ी नम्रता से पूछा—महाशय! आप लोग कहाँ से और किस मतलब से यहाँ आये हैं? मुझे बतलाइए। मेरी सखी दमयन्ती इस बात को जानना चाहती हैं।

बाहुक—मेरे मालिक कोशलराज कल एक ब्राह्मण के मुँह से विदर्भ-राजकन्या के स्वयंवर की बात सुनकर आये हैं। मैं उनका सारथि हूँ।

केशिनी—महाशय! आपके साथ सारथि की पोशाक पहने हुए जो और एक आदमी है, वह कौन है?

बाहुक—वे निषधराज नल के यहाँ पहले सारथि थे; उनका नाम वार्ष्णेय है। नल जब जुए में सब कुछ हार गये तब उनकी चतुर रानी ने अपने प्राण समान प्यारे बेटे और बेटी को इनके साथ विदर्भ भेज दिया। फिर इनको ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि की जगह मिल गई।

केशिनी—आप जानते हैं कि आजकल नल कहाँ हैं ? आपने अपने साथी वार्ष्णेय से राजा नल के विषय में तो कुछ नहीं सुना है ?

बाहुक—भद्रे ! मैं नल का कुछ हाल नहीं जानता। शायद, वे आजकल वेष बदलकर किसी गुप्त मतलब को साधने की धुन में हैं। मैं समझता हूँ कि मेरे साथी वार्ष्णेय भी नल के बारे में इससे अधिक कुछ नहीं जानते।

"महाशय ! राजकुमारी दमयन्ती पति के विरह में, सन्ध्या समय की कमलिनी की तरह, कुम्हलाकर दिन काट रही है। पति के वियोग से व्याकुल दमयन्ती ने लापता महाराज नल को ढूँढ़ने के लिए एक पद्य देकर देश-देश में दूत भेजे थे। उन दूतों में से, पर्णाद नामक ब्राह्मण ने ऋतुपर्ण की राजधानी में एक सारथि से उस कविता का उत्तर पाया। वह क्या आपही का लिखा हुआ है ?" केशिनी के मुँह से दमयन्ती की हालत सुनकर छिपे हुए वेष में महाराज नल बहुत दुःखित हुए। उनकी आँखों में आँसू भर आये।

अचरज से बाहुक के अकचकाकर चुप हो रहने और उसकी खेद से डबडबाई हुई आँखें देखकर केशिनी सोचती हुई राज-महल में लौटी।

केशिनी के मुँह से ऋतुपर्ण के वेष बदले हुए सारथि की बात सुनकर दमयन्ती को सन्देह हुआ कि वही नल हैं। उसके हृदय में शोक उमड़ आया। उसने अपने को सँभालकर कहा—केशिनी ! तुम एक बार और उस सारथि के पास जाओ। उस आदमी का कोई

अनोखा काम देखो तो तुरन्त आकर मुझसे कहना । सखी ! न जाने क्यों, तुम्हारे मुँह से सारथि की बात सुनने के समय से मेरा चित्त अशान्त हो रहा है मानो मेरी टूटे तारों की प्रेम-वीणा नई तान से सुर दे रही है । केशिनी ! जाओ, देर मत करो ।

कुछ देर बाद, केशिनी ने पति के विरह से व्याकुल दमयन्ती के कमरे में लौटकर कहा—राजकुमारी ! सारथि की अजब लीला देखकर मैं चकरा गई हूँ । मैंने पहले और कभी ऐसे विचित्र मनुष्य को नहीं देखा था । दुनिया के सभी पदार्थ तो उनके नौकर से हैं । सखी ! मैंने देखा कि उनके ताकने से ख़ाली घड़ा जल से भर जाता है, बिना ही आग के सूखा तृण और काठ जल उठता है । सखी ! और ज़ियादा क्या कहूँ, सारथि के हाथ का मसला हुआ फूल कुम्हलाने या सूखने के बदले और भी खिलकर महकने लगता है । सखी ! ऐसी अचरज-भरी बात मैंने कभी नहीं देखी थी । यह आदमी क्या कोई जादूगर है या प्रत्यक्ष देवता ?

दमयन्ती ने तड़फड़ाकर कहा—"सखी ! मैं सब समझ गई । मेरा सारा सन्देह दूर हो गया—वे देवता ही हैं । मेरे हृदयराज के वही राजा हैं । सखी ! यह तो जाड़े से ठिठुरती हुई धरती पर वसन्त का सुखदायी स्पर्श है; रेगिस्तान की तपी हुई भूमि में मन्दाकिनी की शीतल धारा है; आमों के उजड़े हुए बाग़ में कोयल की मीठी कुहुक है ।" केशिनी के अचरज का ठिकाना न रहा ।

इसके बाद दमयन्ती ने माता-पिता की सलाह से, सारथि के वेष में आये हुए बाहुक को—पहचानने के निमित्त—अपने कमरे में बुलाने के लिए केशिनी को भेजा ।

केशिनी ने जाकर राजकुमारी की इच्छा प्रकट की तो वह

सारथि एक आधी फटी हुई धोती और दो कपड़े लेकर केशिनी के संग चला।

राजभवन में बाहुक जल्दी आ पहुँचा। उसने सोचा कि हाय रे दुर्दैव! मैं जिस राजभवन में एक दिन चतुरङ्गिनी सेना लेकर ठाट-बाट से आया था आज अभाग्य के फन्दे में पड़कर वहीं इस दीन-वेष में आना पड़ा! बाहुक को साथ में लिये केशिनी दमयन्ती के कमरे में गई।

विरह से व्याकुल दमयन्ती का उदास चेहरा देखकर नल बहुत दुःखित हुए। दमयन्ती ने यद्यपि इस कुरूप और कुबड़े सारथि को नल की छिपी हुई सूरत समझ लिया था तथापि उसका सन्देह अभी दूर नहीं हुआ था। इससे उसने कहा—"हे सारथि! स्वामी के साथ वन में रहनेवाली स्त्री को घोर वन में अकेली सोती छोड़कर चला जाना क्या ऊँचे हृदयवाले स्वामी का काम है? जिन महापुरुष ने स्वयंवर-सभा में आये हुए देवताओं से भी ज़ियादा इज्ज़त लूटकर स्वयंवर की माला पाई थी; जिन्होंने अग्नि को गवाह करके प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं तुम्हारा हुआ;' उनका बिना कोई अपराध के—स्वामी को ही प्राणों का आधार समझनेवाली—स्त्री को असहाय अवस्था में छोड़ देना क्या उनके सत्य-प्रतिज्ञ नाम की इज्ज़त बढ़ाता है?" यह बात कहते-कहते दमयन्ती की आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी।

नल ने रुके हुए स्वर से कहा—देवी! मनुष्य की इच्छा से कोई काम नहीं होता, सब कामों के मालिक भगवान् हैं। वे ही इस बड़े भारी विश्वयन्त्र को चलाते हैं। इसलिए सज्जन इस मङ्गलमय जगत् को आँसू बहाकर कभी कलङ्कित नहीं करते। ख़ास कर, गूढ़

बातों से भरे इस जगत् में कार्य और कारण के सम्बन्ध को जान लेना बड़ा ही कठिन है। कार्य क्या है, कारण क्या है और किस कार्य की जड़ में भगवान् का कौनसा शुभ उद्देश भरा हुआ है—इसको पृथिवी की माया में लिपटे हुए प्राणी नहीं समझ सकते। इसी से इतनी अशान्ति है। देवी! जिस दिन मनुष्य को इसका ज्ञान होता है उसी दिन उसकी मनुष्यता पूरी होती है; उसी दिन ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता का बड़ा मिलाप होता है; उसी दिन मनुष्य को निर्वाण-समाधि मिलती है। जिस दिन बाहरी जगत् के साथ भीतरी जगत् का मिलन साफ़ समझ में आ जाता है उस दिन हृदय में फिर कोई अशान्ति नहीं रहती। 'स्वामी का पद साध्वी स्त्री के लिए पवित्र तीर्थ है,' इसी ज्ञान को स्त्रियाँ अटल सत्य मानें। स्वामी का आचरण देखकर उसके बारे में जी में बुरा ख़याल रखना स्त्री के सती-धर्म में बट्टा लगाता है। ख़ास कर, ख़ूँख़ार जानवरों से भरे जङ्गल में सोती हुई पत्नी को छोड़ जाने से ही स्वामी को तुम अपराधी नहीं कह सकतीं और ऐसे समय में तो तुम उसको और भी अपराधी नहीं कह सकतीं जब कि उस पापी कलि का प्रभाव उस पर जमा हुआ रहा हो। मानिनी! खेद मत करो।

दमयन्ती और कुछ नहीं कह सकी। सारथि की ये बातें सुनकर उसका रहा-सहा सन्देह मिट गया। इतने दिनों से, हृदय के भीतर, जीवननाथ का वह जो ध्यान किया करती थी, देखा कि आज वह पूजा पूरी हुई है। दमयन्ती ने बाहुक की ओर नज़र फेरकर ताड़ लिया कि यही—राख में छुपी आग के समान, राहु से ग्रसे चन्द्रमा के समान—कलि के सताये हुए पुण्यश्लोक नल हैं। जब दमयन्ती अधीर हो गई तब नल ने "रानी! तुमको त्यागने के दिन से मेरी आँखों से आँसुओं की जो धारा जारी हुई है वह आज तुम्हारी



बहुत दिनों के वियोग के बाद आज दो दुःखित प्राण मिल गये—पृ० १६७

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आँखों के पानी में मिल जाय" कहकर बड़े प्रेम से दमयन्ती के आँसू पोंछ दिये।

बहुत दिनों के वियोग के बाद आज दो दुःखित प्राण मिल गये। दमयन्ती का सायंकाल के कमल-सा कुम्हलाया हुआ मुखड़ा देखकर नल को दुःख हुआ! नल का ऐसा बिगड़ा हुआ चेहरा देखकर दमयन्ती भी रोने लगी। इस प्रकार, आँसुओं के जल से दोनों की विरह से जलती हुई छाती ठण्ढी हुई।

जुदा होने के बाद से अब तक की अपनी-अपनी बीती हुई विपद की कहानी दोनों ने एक-दूसरे को कह सुनाई।

कर्कोटक के दिये हुए दोनों कपड़े बदलकर नल अब असली रूप में हो गये। दुर्भाग्यरूपी राहु से छूटे हुए पूर्णचन्द्र के समान पति को देखकर आज दमयन्ती की प्रीति-नदी में तरङ्गें उठने लगीं।

रात बीतने के साथ-साथ यह अचरज से भरा समाचार सब पर ज़ाहिर हो गया। विदर्भ देश के निवासी, आज राजा के जमाई से राजकन्या की फिर से भेंट देखकर ख़ुशी से उत्सव मनाने लगे!

राजा ऋतुपर्ण ने नल से क्षमा माँगकर बिदा ली।

इसके बाद निषध-पति महाराज नल विदर्भ-राज के घर प्राण से प्यारे पुत्र, कन्या और प्यारी पत्नी से मिलकर कुछ दिन सुख से रहे और फिर अपने राज्य को लौट आये।

महाराज नल के लौटने की बात सुनकर पुष्कर उदास हुआ।

राजधानी में पहुँचते ही नल ने पुष्कर को पासा खेलने के लिए ललकारा। पुष्कर ने ताने की हँसी हँसकर कहा—"इतने दिन देश-विदेश में घूमकर ऐसा क्या ले आये हो जो पासा खेलने की

हिम्मत करते हो ?" नल ने कहा—सो दिखा दूँगा, तुम आओ तो सही।

जूआ शुरू हुआ। तुरन्त पुष्कर सब कुछ हार गया, केवल उसका प्राण बाक़ी रह गया। तब नल ने कहा—पुष्कर! अब सिर्फ़ तुम्हारा प्राण बाक़ी है। मैं चाहूँ तो उसे भी ले सकता हूँ, किन्तु मैं ऐसा नहीं किया चाहता। तुम अपने पहले अधिकार को फिर पाओगे। आशा है, अब तुम ईर्ष्या और घमण्ड छोड़कर मुझ पर प्रीति करोगे।

देवता के समान बड़े भाई नल के अमृत ऐसे वचन सुनकर पुष्कर चरण पकड़कर बार-बार क्षमा माँगने लगा। महाराज नल ने उसके अपराध को क्षमा कर दिया।

इसके बाद, महाराज नल पहले की तरह प्रजा का पालन करने लगे। निषध देश की प्रजा और भारत के दूसरे-दूसरे राजा लोग महाराज नल और महारानी दमयन्ती की उदारता और निष्ठा की बातें सुनकर 'धन्य धन्य' करने लगे।

साध्वी दमयन्ती ने नल के लिए जो कष्ट सहा था उसका वर्णन नहीं हो सकता। दमयन्ती की ऐसी एकाग्रता, निष्ठा और संयम ने हिन्दुओं के पुराणों और इतिहासों को बड़प्पन दिया है। न जाने कितने दिन बीत गये, अभी तक सती के सतीत्व की कथा भारत के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखी हुई है। जब तक हिन्दू-धर्म रहेगा तब तक यह इसी प्रकार घर-घर में आदर पावेगी।

चौथा आख्यान

शैव्या

चौथा आख्यान

—:०:—

शैव्या

[१]

आजकल का अवधप्रान्त पहले कोशल कहलाता था। पवित्र जल-वाली सरयू के किनारे कोशल की राजधानी अयोध्या नगरी थी। अयोध्या के भवन आकाश को चूमते थे। उस धन-जन से भरी-पूरी अयोध्या में महाराज हरिश्चन्द्र राज्य करते थे। सोमदत्त राजा की बेटी शैव्या उनकी रानी थी।

शैव्या रूप में जैसी बेजोड़ थी वैसी ही गुणवती भी थी मानो विधाता ने सारी सुघड़ाई लगाकर शैव्या की देह को बनाया था। शैव्या जैसी रूप-गुणवाली स्त्री को पाकर हरिश्चन्द्र धन्य हुए थे। मतलब यह कि, शैव्या के साथ रहने से एक ओर जैसे महाराज हरिश्चन्द्र को प्रजा के पालने में शौक़ हुआ था वैसे ही दूसरी ओर हृदय की अच्छी आदतों के खुल जाने से वे एक आदर्श पुरुष हो रहे थे। शूरता को बतलानेवाली उनकी विशाल देह में जैसे वीरता मौजूद थी वैसे ही उनका हृदय भी मनोहरता का ख़ज़ाना था। महारानी शैव्या राजा के हृदय-सरोवर में खिली हुई कमलिनी की तरह शोभा पाती थी। शैव्या ही हरिश्चन्द्र का शान्ति-सुख, शैव्या ही उनका उत्साह

और उनका सब कुछ थी। देह अलग-अलग होने पर भी उन दोनों के प्राण हृदय के मिलन से एक हो गये थे।

एक दिन राजा, दुपहर के समय, भोजन के बाद आराम करने के कमरे में पलँग पर लेटे हुए थे। इतने में, मन्दिर से लौटी हुई शैव्या उस कमरे में आकर उनके पैरों के समीप बैठ गई।

"शैव्या! आज तुम ऐसा क्यों करती हो? फूलों की माला की शोभा देवता के गले में होती है, और मणि की शोभा राजा के मुकुट में ही। अयोध्या का राजमहल तुम्हारे समान, तीनों भुवनों की सुन्दरियों से भी सुन्दर, स्त्रीरूपी फूल से सुगन्धित है। शास्त्र में कहा है कि साध्वी स्त्री ही स्वामी के हृदय की देवी है। तुम मेरे उस अधिकार को क्यों छीनना चाहती हो? मैंने तीनों लोकों को ढूँढ़-कर जो रत्न पाया है वह मेरा रत्न आज अनुचित स्थान पर क्यों पड़ा है? शैव्या! तुम मेरी कामना के लिए कौस्तुभमणि हो, तुम धूप में तपे हुए स्वामी के लिए शीतल चन्दन हो।" यह कहकर राजा ने प्यार से रानी को, दोनों हाथ पकड़कर, छाती की ओर खींचा।

शैव्या तनिक सिटपिटाकर बोली—नाथ! आपके आदर और प्रेम से मैं बड़भागिनी हूँ, किन्तु, स्वामी! नारी का नारीत्व स्वामी की छाती में नहीं मिलता; वह तो स्वामी के चरणों में है! इतने दिनों तक मैंने अपनी उस साधना के स्थान को नहीं पाया था। आज देवी के मन्दिर में आचार्यजी से यह उपदेश पाया है। नाथ! स्वामी के पास स्त्री का जो यह श्रेष्ठ अधिकार है उसको मुझसे न छीनिए।

राजा—प्यारी! आज तुमको नये रूप में देख रहा हूँ। तुम्हारी वह टेढ़ी चितवन आज मानो जगत् के उदार प्रेम से सीधी हो गई है, मानो तुम आज दोनों हाथों से कल्याण और पवित्रता लेकर जगत् में

नये जीवन की सूचना कर रही हो। मैं धन्य हूँ, जो स्त्रियों में रत्न-स्वरूप तुम मेरे हृदय-सिंहासन की देवी हुई हो।

रानी—नहीं महाराज, मैं तो दासी हूँ। स्त्री स्वामी के पास देवी बनकर धन्य नहीं होती, वह उनके पास दासी बनने से सार्थक होती है। स्त्री का हृदय स्वामी की पूजा करके धन्य होता है और स्वामी का हृदय पत्नी को प्रेम देकर पवित्र होता है। महाराज! यही तो प्रेम है। इस प्रेम में जहाँ वासना की आग जलती है वहाँ सुख का घर जलकर ख़ाक हो जाता है। वह प्रेम नहीं है। वह तो जवानी का कपट से सना हुआ आमोद है; लालसा की झूठी तृष्णा है; काम की अग्निज्वाला है। महाराज! कामना का चुम्बन शान्ति देनेवाली अमृत की धारा नहीं है; वह तो सत्यानाश की उबलती हुई मदिरा है। प्रेम का अङ्कुर उसमें सदा के लिए सूख जाता है। प्रेम में जहाँ कामना है वह स्थान केवल अमङ्गल का मरघट है।

हरिश्चन्द्र ने कहा—रानी! मैं तुम्हारी बात समझ गया। तुमने इस ग्रीष्म की दुपहरिया में प्रणय से विह्वल स्वामी के पास जिस बात की भूमिका बाँधी है उसे मैं भली भाँति समझ गया हूँ।

रानी—महाराज! समझ गये? क्यों नहीं समझोगे। सूर्य्य की किरणें क्या सदा मेघ में छिपी रह सकती हैं? आपकी जो कीर्ति-कहानी सदा के लिए पृथिवी पर चमकती रहेगी वह क्या कभी छिप सकती है? आपको बड़प्पन के मुकुट से सजे हुए देखने के लिए मेरा जी तरस रहा है। महाराज! वासना का अन्त नहीं है, एक के पूर्ण होने पर एक और वहाँ पहुँच जाती है। एक बार बीती हुई बातों को याद कीजिए। जब गरमी में राजधानी के राजमहल अग्नि के कुण्ड-समान गरम हो जाते तब इन्हें छोड़कर आप बर्फ़ से ढके हुए हिमाचल की शान्त शीतल चोटियों पर जा रहते; फिर वर्षाऋतु आने पर,

संगमर्मर के पहाड़ों से लिपटनेवाली नर्मदा में जल-विहार करने की इच्छा होती। वासना से छुट्टी यहीं थोड़े मिल जाती? नर्मदा-तीर के कास-फूल जब वर्षा की बिदाई के गीत गाते, जब सूर्य्य की किरणों में पीलापन दिखाई देता, मीठी बोलीवाले हंस जब नीले आकाश के बदन में सफ़ेद कमलों की माला पहनाकर उत्तर में मानसरोवर को जाते, तब आपके हृदय में एक और नई वासना की उमङ्ग उठती। आप फिर, मुझे साथ लेकर, मानसरोवर को चल देते किन्तु लालसा से छुटकारा वहाँ भी न होता। जिस समय आप देखते कि मानसरोवर में खिले हुए कमल-दल, ओसरूपी आँसू गिराकर, शरद की बिदाई का रङ्ग प्रकट कर रहे हैं उस समय आप राजधानी को लौट आते, किन्तु नाथ! सुख की उस गृहस्थी में भी और एक लालसा कोई मोहिनी मूर्ति धरकर आपके हृदय को खींचा करती। जब आप देखते कि यह धरती शरद के बाद फूलों से फूल-सी हो गई है, सूर्य्य की किरणें सुहावनी लगती हैं, और जब आप देखते कि मलयाचल की झीनी-झीनी हवा बहती है और चिड़ियाँ मस्त होकर चहक रही हैं तब आपका हृदय फिर निकुञ्ज में रहने को ललचता। महाराज! तब आप मुझे साथ लेकर फिर बग़ीचों में चले जाते। विचारकर देखिए, वासना की निवृत्ति है कहाँ? यह काल-समुद्र की लहर की तरह जीवन को कितना डाँवाडोल कर देती है! मैं इस बात को नहीं समझती थी, इसी से किसी गुप्त सुख का भ्रम मेरी दृष्टि को रोके हुए था। मैं भविष्य को नहीं देखती थी। मैंने अपने प्रेम-प्यासे पति के हृदय में लालसा की धधकती हुई आग को घी डालकर धीरे-धीरे बढ़ा दिया था। महाराज! मेरा वह भ्रम मिट गया है। मैं समझ गई हूँ कि सुख निवृत्ति में है—सुख कर्तव्य को पूरा करने में है।

राजा ने मन ही मन सोचा—ऐसी प्रतिभा से चमकती

सुन्दरता की प्रतिमा की सलोनी शोभा को मैंने पहले कभी नहीं देखा था। आज शैव्या मेरी केवल पत्नी ही नहीं है, बल्कि वह आज मेरी प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली भाग्य-देवी भी है। फिर रानी से कहा—शैव्या, जान पड़ता है वासना की ज्वाला से मैंने हृदय को रेगिस्तान की ख़ुश्क धरती से भी भयानक बना दिया है, किन्तु प्राणप्यारी! मेरा वह मोह काटने से भी नहीं कटता है।

रानी—नाथ! मैं ख़ूब जानती हूँ कि आप मुझे कितना प्यार करते हैं, किन्तु वह प्यार ही सीमा लाँघकर भयानक हो गया है। आपकी जो जीवन-नौका कर्त्तव्य-रूपी समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरों को चीरती-फाड़ती नये वेग से जा रही थी वही अब अँधेरे में, दूसरे रास्ते, विपद की ओर जा रही है। क्या आप इसे समझते हैं?

राजा—रानी! अगर तुम पर मेरा प्यार है, अगर मैं तुम्हें पहचानता हूँ तो इसे सच समझना कि मेरी वह नौका डूबने न पावेगी। मुझ भूले-भटके के लिए तुम ध्रुव नक्षत्र हो।

रानी—महाराज! मैं आपसे आदर पाकर बड़भागिन हूँ। मैं जानती हूँ कि आप दया की प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं, मनुष्यत्व के उज्ज्वल चित्र हैं। इसी भरोसे पर मैं आपकी भूल दिखाने की हिम्मत करती हूँ। राजन्! आप एक बार अपने कर्त्तव्य-पालन का विचार करें; अपनी प्रजा पालने की निपुणता का स्मरण करें। आप देखें कि प्रजा-पालन के पवित्र मंत्र पर ही कोशल का राज-सिंहासन रक्खा हुआ है। दुराचार को दण्ड देने से कोशलराज की हुकूमत ने इज़्ज़त पाई है, किन्तु महाराज! आप, मेरे ही कारण, बहुधा राजकीय कर्त्तव्य पालने में टालमटोल कर देते हैं। अब समझ गये न, मैं क्या कहना चाहती हूँ।

राजा—रानी ! मेरा चित्त ठिकाने पर आ गया। अब मैं सब समझ गया हूँ। मुझे अब याद आ रहा है। तुम्हारी प्रेम से पवित्र पुकार मानो मेरे आलसी शरीर में उत्साह भर रही है। तुम्हारी मधुर दृष्टि ने मुझे रास्ता दिखा दिया है। अब मुझे वही करना होगा जिससे तुम सुखी रहो।

रानी—अवश्य कीजिए। महाराज ! आप आदर्श राजा हैं। आपके छत्र के नीचे असंख्य राजा प्रीति के मंत्र से मोहित होकर मिले हुए हैं। आप समुद्र की तरह गम्भीर हैं। दुनिया के मामूली मोह-मद से आपका हृदय चञ्चल कैसे हो सकता है ?

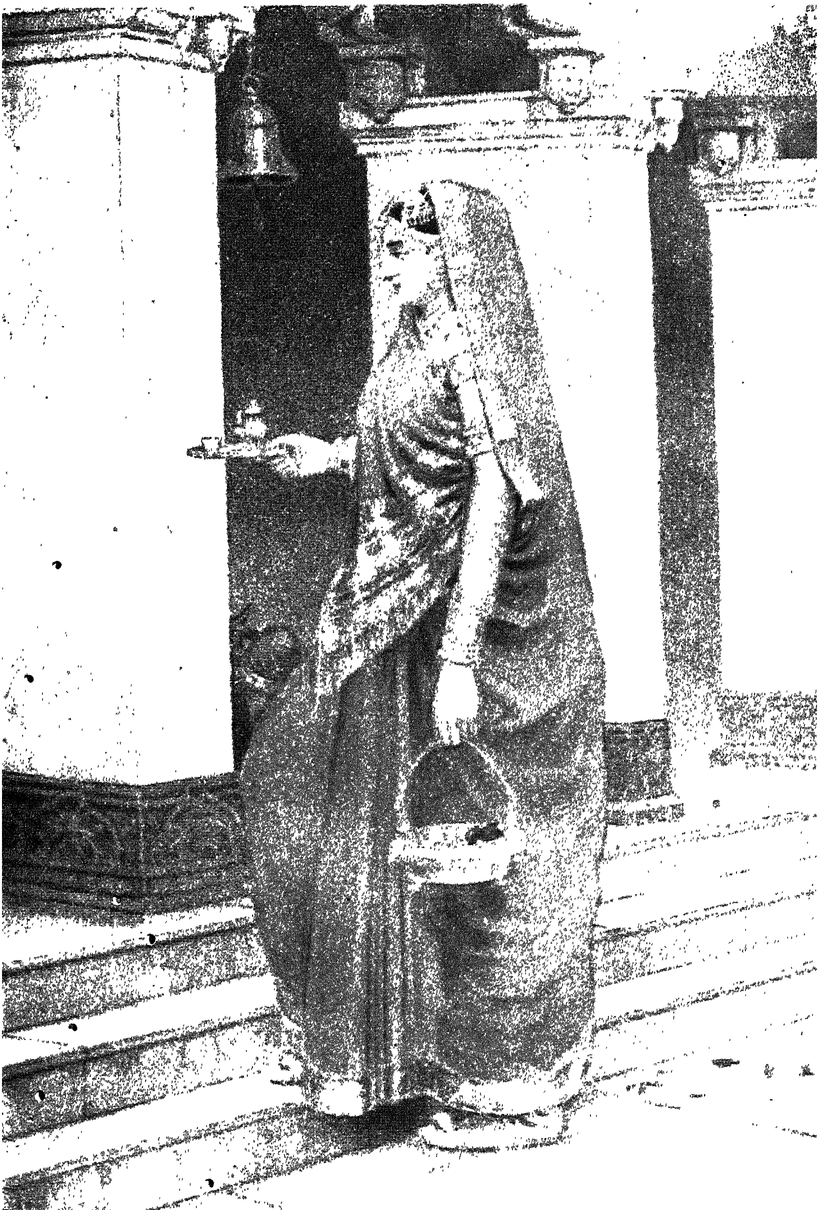
इस प्रकार की बातचीत में बहुत समय बीत गया। स्वामी की आज्ञा लेकर शैव्या, मन्दिर में जाने के योग्य कपड़े पहनकर, सहचरी और दासी की बाट देखने लगी।

थोड़ी देर में सहचरी और दासियाँ आ पहुँचीं। लाल रेशमी साड़ी पहने शैव्या रानी, तारापुञ्ज से समुज्ज्वल आकाशगङ्गा के मार्ग में विचरनेवाली सुराङ्गना की भाँति, मन्दिर की ओर चली। रानी के एक हाथ में, सोने के बने पुष्पपात्र में, तरह-तरह के सुगन्धित फूल और दूसरे हाथ में जल तथा पूजा की और सामग्री थी।

[२]

मन्दिर से लौटने पर शैव्या ने, आराम करने के कमरे में जाकर, देखा कि महाराज सो गये हैं। उसने, स्वामी के पैरों के नीचे बैठकर, धीरे से उनके दोनों पैर अपने सिर पर रखते हुए कहा—हे विधाता ! स्वामी के ये चरण ही मेरे लिए परम तीर्थ हैं। अबला के हृदय में शक्ति दो कि मैं इस परम तीर्थ के निकट वासना छोड़कर अमर फल पा सकूँ।

आदर्श महिला



यह कहते-कहते शैव्या की आँखों से दो बूँद आँसू टपककर राजा के चरणों पर जा गिरे।

इस बात का फ़ैसला करना सहज नहीं कि संसार में कौन छोटा है और कौन बड़ा। इसी तरह, इस बात का निश्चय करना भी बड़ा कठिन है कि किसका क्या काम है। रानी ने सोये हुए राजा के दोनों चरणों को हाथों में लेकर सिर पर रक्खा। कमल के समान चरणों की रज से सती का सेंदुर लगा हुआ माथा पवित्र हुआ तथापि राजा की नींद नहीं टूटी, किन्तु दो बूँद आँसू गिरते ही राजा जाग उठे। उन्होंने आँखे खोलकर देखा कि कमरे में शोभा की अपूर्व बाढ़ आ गई है।

राजा ने तुरन्त शय्या से उठ रानी को गले लगाकर कहा—शैव्या! तुम रोती क्यों हो? तुम्हारे एक बूँद आँसू ने मेरी सारी साधना को व्यर्थ कर दिया। आज दुपहर में तुम्हारी डबडबाई हुई आँखें देखकर मैंने जो शिक्षा पाई है उसे मैं हमेशा याद रक्खूँगा। देखो देवी, आज तुम्हारे इस आँसू की सफ़ाई से यह दिये की ज्योति मलिन-सी हो गई है।

रानी ने मधुर कण्ठ से कहा—नाथ! आप धन्य हैं और आपसे अधिक धन्य मैं हूँ कि जिसने आपके ऐसा देवियों को भी दुर्लभ स्वामी पाया है।

राजा ने प्रेम-पूर्ण दृष्टि से रानी की ओर देखकर कहा—शैव्या! तुम्हारे समान स्त्री-रत्न को हृदय में धारण कर मैं धन्य हुआ हूँ, तृप्त हुआ हूँ।

रानी ने कहा—स्वामी! देवता के गले में फूलों की माला शोभा पाती है, इसमें देवता धन्य हैं कि फूलों की माला?

राजा ने प्रेम से कहा—दोनों ही धन्य हैं।

रानी ने हँसकर कहा—नहीं महाराज, यहाँ अन्याय मत कीजिए।

इस प्रकार की बातचीत में राजा-रानी की सुख की रात बीती।

सचमुच ही वह सुख की रात थी। जिस दिन नया जीवन मिलता है, जिस दिन अपने आपको भूला हुआ मनुष्य अपने को पहचान लेता है, जिस दिन राह भूला हुआ मनुष्य अपना रास्ता ठीक कर लेता है, और जिस दिन तत्त्वज्ञान का विकास होता है, वही दिन असल में बड़े सुख का है। आज हरिश्चन्द्र पत्नी की आँसू-भरी आँखों में स्वर्ग की पवित्रता देखकर और उसके अमृत-समान वाक्य सुनकर धन्य हुए हैं। आज उसी पुण्यात्मा रानी के खेद-भरे आँसुओं से, उसकी प्रेम-पूजा के नैवेद्य से और सच्ची सरलता से, वह अनर्थ कट गया है। वर्षा से बिगड़ा हुआ नीला आसमान शरदृतुरूपी सुन्दरी के प्यारे स्पर्श से साफ़ होकर पुण्य के तारों से जगमगा गया है। यह क्या राजा हरिश्चन्द्र के थोड़े सुख का दिन है?

इस प्रकार, राजा हरिश्चन्द्र ने बड़े सुख से कई वर्ष बिताये। यथासमय रानी शैव्या का पाँव भारी हुआ। राजमहल में आनन्द की लहरें उछलने लगीं।

समय आने पर रानी के एक सुन्दर पुत्र हुआ। कोशल-राज, कुमार के शुभ आनन्द के जलसे में मग्न होकर, आनन्द की लहरें लेने लगे। राजपुरोहित ने कुमार के जन्म-संस्कार की विधि से पूजा करा दी। बालक के रूप की ज्योति से सौरीघर जगमगा गया। ऐसा जान पड़ने लगा मानो सूतिकागार की दीपावली तुरन्त जनमे हुए बालक की अङ्ग-शोभा के आगे फीकी पड़ गई। आशा की मोहिनी वीणा शैव्या के हृदय में बजने लगी। नये कुँवर के मुँह को देखकर शैव्या सब दुःख भूल गई।

उस दिन कोशल देश में आनन्द सैकड़ों धाराओं में बहने सा लगा। नगर के बीच नौबतख़ाने पर, मङ्गल-बाजे बजने लगे। नगर की स्त्रियाँ कुँवर के जन्म की ख़ुशी में प्रसन्नता से सोहर गाने लगीं। नये कुँवर के राज़ी-ख़ुशी रहने के लिए हरिश्चन्द्र ने ख़ज़ाना खोल दिया। ग़रीब-दुखिया, लँगड़े-लूले आदि बहुत धन पाकर असीस देने लगे। ज़मीन चाहनेवालों को ज़मीन मिली, अन्न चाहनेवालों को अन्न मिला। ब्राह्मणों ने हज़ारों गायों के साथ बहुत कुछ भेंट पाई। राजा ख़ुश होकर दोनों हाथों से दान करने लगे। क़ैदी छोड़ गये। वे राजकुमार की जय मनाते हुए प्रसन्नचित्त से घर गये।

'राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र हुआ,' सुनकर देव-कन्याएँ जय-जय शब्द करने लगीं। नगर की स्त्रियों ने राजकुमार को देखने के लिए सौरीघर के द्वार पर बड़ी भीड़ लगा दी। ब्राह्मणों ने दोनों हाथ उठाकर नये जनमे हुए राजकुमार को हृदय से आशीर्वाद दिया। हरिश्चन्द्र के प्रेमी सामन्त राजा लोग क़ीमती रत्न आदि भेंटें देकर राजकुमार के हँसते हुए मुखड़े को देखकर ख़ुश हुए। नगर की प्रजा ने, राजकुमार के देखने को आकर, उस भारी भवन को प्रीति-पूर्ण बातों से गुँजा दिया। महाराज हरिश्चन्द्र ने देखा कि प्रजा की उस आनन्द-पूर्ण जय-जयकार से राज-महल की शोभा कई गुनी बढ़ गई है।

राजा और रानी दोनों लड़के के लुभावने रूप को एकटक देखने लगे।

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह राजकुमार दिन-दिन बढ़ने लगा। हरिश्चन्द्र ने कुमार का नाम रोहिताश्व रक्खा। नाम-करण का दस्तूर हो जाने से राजकुमार और भी अधिक सुन्दर हो गया। धीरे-धीरे, बालक के सुन्दर मुँह में दो-एक दाँत निकल आये। बालक की तोतली

बातें सुनकर रानी और राजा मग्न हो जाते थे। बच्चे को देखकर उनका हृदय इस तरह उछलने लगा जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र उछलता है।

एक दिन राजकुमार रोहिताश्व ने माता के साथ बग़ीचे में घूमते-घूमते कहा—माँ! मुझे हिरन का बच्चा मँगा दो, मैं उसे पालूँगा।

रानी शैव्या ने तुरन्त बग़ीचे की मालिन को हुक्म दिया कि कुमार के लिए एक सुन्दर हिरन का बच्चा ले आ।

रानी के हुक्म की तुरन्त तामीली करने के लिए मालिन बग़ीचे की दूसरी ओर पशुशाला को दौड़ी गई। वहाँ देखा तो हिरन का एक भी बच्चा नहीं। मालिन ने डरते-डरते आकर रानी से यह बात कही।

इधर कुमार रोहिताश्व मृग-छौने के लिए माता से हठ करने लगा।

रानी ने कहा—बेटे! यहाँ इस समय मृग-छौना नहीं है। मैं महाराज से कहकर तुम्हारे लिए हिरन का बच्चा मँगा दूँगी।

रानी ने हज़ार समझाया किन्तु कुमार रोहिताश्व ने मृग-छौने के लिए ज़िद नहीं छोड़ी। रानी के इशारे से बग़ीचे की मालिन एक सुन्दर चिड़िया ले आई। रानी ने उस चिड़िया को दिखाकर कहा—"बेटा! देखो, यह कैसी बाँकी चिड़िया है!" कुमार चिड़िया को पाकर मृग-छौने की बात भूल गया।

रानी शैव्या कुँवर को गोद में लेकर महल में आई। उसने राजा हरिश्चन्द्र से कहा—नाथ! आज बग़ीचा घूमते समय मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई थी।

हरिश्चन्द्र ने मुश्किल की बात सुनकर पूछा—रानी, किस मुश्किल में पड़ी थीं?

शैव्या ने सब कह सुनाया। हरिश्चन्द्र ने कुँवर का मुँह चूम-

कर प्रेम से कहा—अच्छा बेटा! मैं तुमको बहुत उम्दा मृग-छौना ला दूँगा।

[२]

एक दिन अमरावती में देवताओं की सभा बैठी। उस सभा में तरह-तरह की हँसी-ख़ुशी के साथ अप्सराओं का नाच-गान आरम्भ हुआ। तिलोत्तमा, रम्भा, उर्व्वशी, और मेनका आदि अप्सराओं का नाच होने लगा। कुछ नवसिख, नई उम्र की, अप्सराओं के बे-ताल हो जाने से देवताओं की उस बड़ी सभा की गम्भीरता नष्ट हो गई। देवराज इन्द्र ने उन अप्सराओं को शाप दिया—तुम लोगों ने इस देवसभा की गम्भीरता नष्ट कर दी है, इसलिए तुम दुःख से भरी पृथिवी पर जाकर दण्ड भोगो।

इन्द्र के चरण पकड़कर अप्सराओं ने बार-बार क्षमा माँगी और गिड़गिड़ाकर कहा—हे देवताओं के राजा! एक तो हम सीखी-सिखाई नहीं हैं, दूसरे जवानी के जोश ने हमको पागल-सा बना दिया था, इसी से हम लोगों के बेजाने ताल-भङ्ग हो गया। कृपा करके अभागिनियों के भूल से किये अपराध को क्षमा कीजिए।

इन्द्र के इस भयङ्कर शाप और अप्सराओं की गिड़गिड़ाहट को देखकर देवता लोग सोचते थे कि इनको सज़ा कुछ ज़ियादा दी गई है। इधर इन्द्र का चित्त भी अप्सराओं की गिड़गिड़ाहट से कुछ नरम हो गया। अब वे देवताओं के हृदय के भाव को समझकर अप्सराओं से बोले—"मेरी बात टल नहीं सकती। तुम पृथिवी पर जाकर महर्षि विश्वामित्र के तपोवन के पास रहो। तुम लोग जिस दिन अयोध्या के महाराज हरिश्चन्द्र को देखोगी उसी दिन शाप से छुटकारा पा जाओगी।" अप्सराएँ घोर निराशा में उसी आशा को हृदय में धरकर धीरे-धीरे देवलोक तजकर विश्वामित्र के

आश्रम* के पास चली आईं। उन्होंने देखा कि उस तपोवन में गुच्छे के गुच्छे फूल खिले हुए हैं और उनपर चारों ओर से भौंरे आ-आकर गूँज रहे हैं। वृक्षों पर चिड़ियाँ चहक रही हैं। तपोवन के तालाब में कमल, कुमुद आदि जल में उपजनेवाले फूल हवा के झोंके से हिलते हुए उस तालाब की ऐसी अनोखी शोभा बढ़ा रहे हैं मानो जल में और थल में फूलों का मेला है। अप्सराएँ विश्वामित्र के तपोवन के आगे स्वर्ग के सुख को भूल गईं।

विश्वामित्र हर घड़ी उस तपोवन में ही नहीं रहते थे। वे कभी हिमालय की चोटियों पर घूमते हुए प्रकृति की सुन्दरता देखते फिरते तो कभी तीर्थों की यात्रा कर हृदय को तृप्त करते; कभी एकान्त गुफा में समाधि लगाकर ब्रह्मानन्द का सुख लूटते और कभी तपोवन में आकर यज्ञ आदि किया करते।

अप्सराएँ उस तपोवन में निडर सरल मृगों को, तरह-तरह के जलचर पक्षियों से शोभायमान तालाब को, खिली हुई वनलताओं के सुहावने दृश्य को, फलदार हरे पेड़ों से लदी हुई वनभूमि की हरियाली को और सारसों से झलकते हुए नीले आकाश को देखकर स्वर्ग का सुख भूल गईं। पाँचों सखियाँ आनन्द से तपोवन में विचरा करतीं। भौंरों की गूँज और कोयलों की कुहुक में वे अपना स्वर मिलाकर गीत गातीं। नये बादल देखकर जब मोर पूँछ फैलाकर नाचने लगते तब वे भी घाँघरा फहराकर प्रेम से उन्हीं की तरह नाचने लगतीं। कभी-कभी जब फूलों का रस पीकर भौंरे मतवाले होकर गूँजते फिरते तब वे उन्हें फूलों से उड़ाकर उनके पीछे-पीछे दौड़तीं। उस समय उनके गोरे-गोरे पैरों की नूपुर-ध्वनि

* वर्तमान शाहाबाद (बिहार) ज़िले के बक्सर स्टेशन के पास चरित्र-वन नामक स्थान।

ग़ज़ब करती थी। कभी वे चाँदनी रात में मदमाते नयनों से तपोवन में फूलों की सम्पदा और तारों से जगमगाते हुए नीले आकाश की अलहदगी देखतीं। कभी उनकी हँसी की छटा से प्रकृति की उजली शोभा और भी बढ़ जाती। कभी बाँसों की रगड़ से निकली हुई सुरीली तान सुनकर उन्हें बड़ा मज़ा मालूम पड़ता। इस प्रकार वे पाँचों सखियाँ हृदय से वनदेवी के उस उम्दा संगीत को सुनते-सुनते सुध-बुध भूल जातीं।

[४]

शाप के फन्दे में फँसी अप्सराएँ विश्वामित्र के तपोवन के पास रहती थीं। उन्हें वैसा आनन्द लूटने की आदत थी जैसा कि स्वर्ग में रहनेवालों को प्रिय है। इसलिए वे मन की मौज से कभी गीत गातीं, कभी नदी-किनारे बैठकर ग़प-शप करतीं, कभी नदी के निर्मल जल में पैठकर जलक्रीड़ा करतीं और कभी तरह-तरह के फूलों की माला गूँथकर एक-दूसरे को पहनाकर हँसी-दिल्लगी में समय बिताती थीं; किन्तु इतने मज़े में रहकर भी बीच-बीच में उनको उस स्वर्गीय जीवन के सुख की याद आ ही जाती थी।

इस प्रकार उन मदमाती पाँच सखियों के मनमाने घूमने-फिरने और फूल चुनने से आश्रम के फूलदार वृक्षों की शाखाएँ टूट गईं और उनकी ख़ूबसूरती मारी गई। अप्सराओं की क्रीड़ा-केलि से लताकुञ्जों में रौनक़ न रही।

एक दिन बड़े भारी तपस्वी विश्वामित्र हिमाचल की सैर कर तपोवन को लौटे। उन्होंने देखा कि मेरे तपोवन में घुसकर कोई फूल ले गया है और वृक्ष-लताएँ किसी के ऊधम से नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं।

संसार-त्यागी मुनि लोग आश्रम के वृक्षों और लताओं को बेटे-बेटी के समान मानते हैं। संसारी लोग गृहस्थी में रहकर जैसे पुत्र-

कन्याओं का लालन-पालन करते हैं वैसे ही मुनि लोग भी पुष्प-वृक्षों को फूल-फलों से सजे-धजे देखने के लिए, उन्हें चारों ओर से घेर देते हैं—लताओं को हिफ़ाज़त से वृक्ष की डालियों पर चढ़ा देते हैं। अपनी ग़ैरहाज़िरी में इसे किसी दुष्ट की मस्ती समझकर विश्वामित्र बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने दूसरे दिन तपोवन में आकर देखा कि मेरे आने से पहले ही कोई सब फूल चुन ले गया है, और फूलों की लताएँ वृक्षों की डालियों से अलग नीचे गिरकर धूल में लोट रही हैं। कितनी ही मञ्जरियाँ छोटे-छोटे पत्तों के साथ भूमि में गिरकर मैली हो रही हैं। इससे विश्वामित्र को क्रोध हुआ। उन्होंने तपोवन के वृक्षों और लताओं से कहा—अब जो कोई यहाँ फूल चुनने आवे उसको तुम बाँध रखना; मैं उसको सज़ा दूँगा।

तपस्या में अजब शक्ति है! तप के बल से मनुष्य देवता के अधिकार को ले लेता है। तपोवन के पेड़ और बेलें मुनि की आज्ञा पालने को तैयार हुईं।

दूसरे दिन शापग्रस्त अप्सराएँ मौज से गीत गाती उस तपोवन में घुसीं। तपोवन में उनके आते ही वृक्ष और लताएँ धीरे-धीरे काँपने लगीं। मद-माती अप्सराओं ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। पाँचों सखियों ने ज्योंही फूल चुनने को हाथ बढ़ाया त्योंही वे लताओं से बँध गईं। बन्धन खोलने की उन्होंने बहुत कोशिश की, पर वे किसी तरह नहीं खोल सकीं। ऋषि के शाप के सामने अप्सराओं का शारीरिक बल थक गया। तब वे लाचार होकर राजा हरिश्चन्द्र का नाम ले-लेकर रोने लगीं।

[५]

मंत्री, प्रधान सेनापति और बहुतसी सेना को साथ लेकर राजा हरिश्चन्द्र वन में शिकार खेलने आये हैं। चित्रित मृग की खोज

में सेना चारों ओर शोर मचाती फिरती है किन्तु हज़ार उपाय करने पर भी कहीं वैसा मृग नहीं मिलता। राजा सोच रहे थे कि 'यहाँ बहुतसे हिरन रहते हैं किन्तु आज न जाने कैसा बुरा दिन है कि एक भी हिरन नहीं दिखाई देता।' इतने में एक सुन्दर चित्रित मृग राजा के पास से भागता हुआ देख पड़ा। राजा ने उस पर बाण छोड़ा, पर वह उसके लगा नहीं। अचूक निशाना लगानेवाले हरिश्चन्द्र सोचने लगे—हैं! यह क्या हुआ? आज मेरा निशाना क्यों चूक गया? न-जाने आज मेरे भाग्य में क्या बदा है!

अचानक उन्होंने सुना कि कोई उस वन में उनका नाम ले-लेकर दुःख-भरी आवाज़ से चिल्ला रहा है। इससे परोपकारी राजा का चित्त अकुला उठा। वे तुरन्त उधर को दौड़े जिधर से रोने का शब्द आ रहा था। राजा ने देखा कि बहुत ही सुन्दर पाँच स्त्रियाँ लताओं में बँधी हैं और छुड़ाने के लिए उनको पुकार रही हैं। उनके निराशा झलकानेवाले उदास मुखड़ों को देखकर हरिश्चन्द्र उनका बन्धन खोलने लगे। राजा के शरीर की क़ूवत मुनियों की मानसिक शक्ति के आगे आज पहले-पहल परास्त हुई। राजा जब भरसक उपाय करके भी बन्धन नहीं खोल सके तब उन्होंने तलवार से लता-बन्धन काटकर अप्सराओं का उद्धार किया। बन्धन से छूटी हुई अप्सराएँ एहसान से दब गईं। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—महाराज हरिश्चन्द्र! आप भूल न जाइएगा। हम अप्सरा हैं। देवराज इन्द्र के शाप से इस पृथिवी पर आकर शाप का फल भोगती थीं। आज आपके दर्शन से हमारा छुटकारा हो गया। हम आशीर्वाद करती हैं, आपका मङ्गल हो। महाराज! धर्म ही सबका सहायक है। सुख-दुःख में धर्म और सत्य पर दृष्टि रखिएगा। अब बिदा होते समय इस शुभ मुहूर्त में हम लोगों की ईश्वर से प्रार्थना है कि आपके यश की ज्योति से

धरती चमक जाय। महाराज! हम अब इन्द्रलोक को जायँगी। देखिए, आकाश से वह रथ उतर रहा है, इसे देवताओं की स्त्रियाँ हाँक रही हैं।

अचरज से चुप्पी साधे हुए राजा हरिश्चन्द्र ने देखा कि एकाएक वह देवताओं का रथ आ गया। शाप से छूटी हुई पाँचों सखियाँ राजा हरिश्चन्द्र के गले में खिले हुए पारिजात की माला डाल गईं और कह गईं कि इस पारिजात की सुगन्ध की तरह आपकी कीर्त्ति चारों ओर फैले।

यह देखकर राजा चकित रह गये। फिर वे सोचते-विचारते दल-बल-सहित अपनी राजधानी को लौट आये।

[६]

राजा हरिश्चन्द्र सिंहासन पर बैठकर राज-काज कर रहे हैं, इतने में देहधारी क्रोध के समान विश्वामित्र वहाँ आ धमके। राजा, मन्त्री और दूसरे अनुचरों ने महर्षि के सामने सिर झुकाया, पर महर्षि का क्रोध ठण्ढा न हुआ। विश्वामित्र ने भौंहें चढ़ाकर क्रोध से कहा—हरिश्चन्द्र! तुमने ऐश्वर्य के घमण्ड में फूलकर मेरे शाप को व्यर्थ कर दिया है। तुम्हारा इतना हौसला?

राजा हरिश्चन्द्र ने नम्रता से कहा—हे महर्षि! मैंने बिना जाने अपराध किया है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

महर्षि—तुम्हारा यह अपराध क्षमा करने योग्य नहीं। क्या राजा का यह काम है कि वह तपोवन में शिकार खेलने जाय? फिर, अपराध के कारण, लता से बँधकर जो अपने अपराध का दण्ड भोग रही थीं उनका विलाप सुनकर तुमने मेरे उस शाप को भी व्यर्थ कर दिया। यत्न से पाली हुई मेरी कुसुम-लताओं को तुमने काट दिया! तुम्हारा इतना बड़ा दिमाग़?

अब शाप देने के लिए महर्षि ने चुल्लू में पानी लिया। विश्वामित्र का क्रोध देखकर मानो धरती थर-थर काँपने लगी। दिशाओं में सन्नाटा छा गया। हरिश्चन्द्र संकट देखकर, महर्षि के चरणों में गिरकर, क्षमा माँगने लगे।

राजा की गिड़गिड़ाहट देखकर विश्वामित्र को कुछ दया आ गई। उनकी भ्रुकुटी जो ऊपर को तनी थी वह कुछ नीचे उतर आई। महर्षि ने कहा—राजा! तुम अपने इस अन्याय के लिए मुझे कुछ दान दो।

राजा—महाभाग! आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हुआ। आप जो कहें, मैं देने को तैयार हूँ।

महर्षि—देखना राजा! सत्य से पीछे पैर मत रखना। मैं जो चाहता हूँ सो सुनो। मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ। मुझे इतना धन दो जिससे वह यज्ञ पूरा हो सके।

राजा—देव! यज्ञ के लिए दान करना तो राजा का मुख्य काम ही है। इसलिए यह तो मेरे अपराध का दण्ड नहीं हुआ।

महर्षि—तब तुम अपनी समुद्रों-सहित धरती मुझे दान में दे दो।

यह बात सुनकर राजा का कलेजा काँप उठा। उन्होंने कुछ देर चुप रहकर कहा—महर्षि! मैंने आपकी बात मानकर समस्त पृथिवी का दान कर दिया।

विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर कहा—राजा! तुमने दान तो किया, किन्तु दक्षिणा बिना दान पूरा नहीं होता—इस बात को तो जानते ही होगे। इसलिए तुम इस दान की दक्षिणा में मुझे एक हज़ार मोहरें और दो।

हरिश्चन्द्र ने कहा—अच्छा, मैंने दक्षिणा में आपको एक हज़ार मोहरें भी दीं।

विश्वामित्र—महाराज ! तुम अभी मुझे सारी पृथिवी दान में दे चुके हो। इसलिए तुम्हारा राज्य, तुम्हारी राजधानी, तुम्हारे महल और तुम्हारा ख़ज़ाना सब कुछ अब मेरा है।

राजा के कान खड़े हुए। वे सोचने लगे—तो क्या मैं अकेला रह गया ! मेरी प्राणप्यारी शैव्या और प्राणाधिक रोहिताश्व क्या अब मेरे नहीं रहे ?

महर्षि—महाराज ! स्मरण रहे, आज से रानी और राजकुमार इन दोनों पर ही तुम्हारा अधिकार है। इसके सिवा जो और किसी चीज़ को तुम अपनी समझोगे तो दिये हुए दान को ले लेने का महापातक तुम्हें लगेगा।

राजा ने कहा—महर्षि ! मैं आपको एक पखवारे में इस दक्षिणा की रक़म दूँगा। कृपा करके दास की प्रार्थना पूरी कीजिए।

"अच्छा, यही सही; किन्तु महाराज ! एक बात और है। आज से सारी पृथिवी पर मेरा अधिकार है। दिये हुए धन पर अधिकार रखना ठीक नहीं। तुम आज रात बीतने से पहले ही इस पृथिवी पर से कहीं दूसरी जगह चले जाना। एक पखवारे के बाद मैं तुमसे भेंट करूँगा। उस समय तुमसे मेरी दक्षिणा मिलनी चाहिए।" यह कहकर महर्षि तुरन्त वहाँ से चले गये।

राजा सोचने लगे—यह क्या हुआ ! मैं एक पखवारे में एक हज़ार मोहरें कहाँ से दूँगा ?

यह सोचते-सोचते वे राजमहल में रानी के पास गये। रानी शैव्या देवी ने राजा का उदास मुँह देखकर घबराहट से पूछा—स्वामी ! आज आप इतने विकल क्यों हैं ? आपके सुन्दर मुख पर हँसी नहीं है, कमल-सी आँखें आँसुओं से छल-छल कर रही हैं, मानो किसी दुर्भाग्य ने आकर आपके सदैव खिले रहनेवाले मुख को

मलिन कर डाला है। नाथ! आज आप ऐसे उदास क्यों हैं? आपके चेहरे पर खेद की छाया देखकर मुझे बड़ा डर लगता है। कृपा कर इसका कारण जल्दी बतलाइए।

पत्नी की प्रेम-भरी बातें सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा—रानी! आज मेरे जीवन का नया दिन है। कोशल का यह राजसिंहासन, कोशल का धन-भाण्डार और कोशल की प्रजा आज से मेरी नहीं; और तो क्या, धरती माता का भी आज मैं त्यागा हुआ पुत्र हूँ; जो बिना घर-द्वार का है उसका आसरा वृक्ष के नीचे है; किन्तु रानी! आज इस अभागे हरिश्चन्द्र का शोक से विकल शरीर वृक्ष के नीचे भी स्थान नहीं पावेगा।

रानी ने बड़ी घबराहट से पूछा—नाथ! आप यह क्या कह रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आता। आप तो कोशल देश के चक्रवर्त्ती सम्राट् हैं, आपके झण्डे के नीचे पृथिवी के सारे राजा हाथ जोड़े खड़े हैं। आज आपके मुँह से मैं यह कैसी बात सुन रही हूँ? आपके मन में कुछ उन्माद तो नहीं हो गया है! ज़रूर ऐसा ही कुछ हुआ है। नहीं तो आज आपके उदास मुँह से ऐसी बेमतलब की बातें क्यों निकलतीं? आप तो मेरे पास आकर कितनी ही प्रेम-पूर्ण बातों में संसार का हाल बताते, और कितनी ही अच्छी-अच्छी कहानियाँ कहकर जी की उमङ्ग दिखाते थे। महाराज! दासी को उलझन में मत डालिए। मेरा कलेजा होनहार विपत्ति के डर से धक-धक कर रहा है। जल्दी बताइए, क्या विपदा पड़ी है। आप सच जानिए, चाहे जितनी आफ़तें क्यों न आवें, हम लोगों का यह प्रेम से मिलना नहीं रुकेगा। प्रेम कुछ पृथिवी की वस्तु नहीं है। वह तो पृथिवी के बाहर किसी बड़े उत्तम स्थान की चीज़ है। एक-दूसरे पर प्रेम करनेवाले दम्पति के हृदय में ही उसका सिंहासन है। महाराज इस अपूर्व प्रेम-जगत्

के आप राजा हैं और मैं रानी हूँ। इसलिए दुनिया की हज़ारों आफ़तें भी हम लोगों के हृदय को सता नहीं सकेंगी। आप इतने उदास होकर मेरे पास क्यों आये हैं? मुझे आपके इस प्रेम-पवित्र मुख पर हँसी की झलक ही अच्छी लगती है। स्वामी! आज किस दुर्भाग्य से मुझे इस मुखड़े पर आँसू देखने पड़े? प्रभो! दया करो, जल्दी बताओ कि आप इतने उदास क्यों हैं।

हरिश्चन्द्र ने उदास मुँह से, विश्वामित्र के आश्रम की सारी घटना कह सुनाई।

रानी शैव्या ने सुनकर हर्ष से कहा—महाराज! इसके लिए इतनी चिन्ता और उदासी क्यों? आप राजा हैं। दान देना राजा का धर्म है। आपके इस अनोखे दान से कोशल के छत्र का दण्ड ऊँचा हुआ है। नाथ! संसार का सुख कितने दिन के लिए है? उसके लिए प्रतिज्ञा को न तोड़कर आपने जो सच्चे दान-वीर की तरह दान किया है, यह तो कोशलराज के ही योग्य काम है। नरनाथ! इसके लिए इतना खेद! हे कोशलेश! चिन्ता को छोड़िए। देव! इस धरती पर सत्य सबसे ऊँचा है। आपने सत्य की रक्षा करके रत्नों से जड़े हुए जिस किरीट को पाया है वह अनमोल है। इसकी चमक से कोशल का राज-सिंहासन सदा जगमगाता रहेगा। संसारी दरिद्रता में ही तो अनूठे आनन्द का विकास है। हे ज्ञानवीर! आज आप इस बात को क्यों भूलते हैं?

हरिश्चन्द्र ने आँसू पोंछकर कहा—शैव्या! तुम्हें इतना ज्ञान है! अँधेरे में पड़े हुए स्वामी की बग़ल में प्रकाश की बत्ती लिये रहने से एकाएक तुम्हारे सुन्दर मुख पर जो यह शोभा फैल रही है, देवी! उसे मैंने इतने दिन तक नहीं देखा था। मैं तो हृदय को केवल कामना की छोटीसी कोठरी बनाये बैठा था। आज तुमने उसकी

रुकावट को दूर करके खुले हुए आकाश की विपुलता के साथ उसे मिला दिया है। देवी ! आज मैंने पृथिवी के बाहर आकर जो नया सबक़ सीखा है उसको मुझे ज़िन्दगी भर याद रहेगी। रानी ! अब मैं राज्य का दान करके दुखी नहीं हूँ। मैं अब ख़ूब समझ गया कि मैंने ज़रासी पृथिवी का दान करके अपार विश्वरूप के विशाल विश्व को पा लिया है। रानी ! अब मैं दरिद्र नहीं हूँ। आज विश्वराज का अटूट रत्न-भाण्डार मेरे हाथ लगा है।

रानी—और क्या महाराज ! आप तो दाता हैं, न कि दान लेनेवाले। भगवान् का दान अनन्त है, इसी से वे पूर्णरूप हैं। स्वामी ! मैं कम-समझ स्त्री हूँ, तुमको मैं क्या समझाऊँगी ? त्याग से ही मनुष्य धन्य होता है। इस माया की पृथिवी पर मनुष्य जिस दिन कर्त्तव्य के सामने अपनपौ को भूल जाता है उसी दिन वह सार्थक है। नाथ ! आज आप इसी से धन्य हुए हैं ! चिन्ता छोड़िए। एक बार देखिए, चिन्मयी जगज्जननी की प्रेमभरी गोद आपके ही लिए ख़ाली पड़ी है।

राजा का उदास मुखड़ा सौभाग्य के गर्व से चमक उठा।

राजा ने कहा—शैव्या ! मैंने महर्षि को पृथिवी दान कर दी है। इसलिए, इस पृथिवी पर रहने का अब मुझे कोई अधिकार नहीं। मैं इस पृथिवी के बाहर जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि तुम रोहिताश्व को लेकर नैहर जा रहो।

शैव्या ने हरिश्चन्द्र की बात से घबराकर कहा—नाथ ! मुझे ऐसी अनुचित आज्ञा मत दीजिए। प्राचीन मुनियों ने स्त्री का दूसरा नाम सहधर्मिणी कहा है। पुरुष सुख या दुःख जिस दशा में रहे उसमें उसकी संगिनी स्त्री भी है। नाथ ! स्वामी के साथ स्त्री का विधाता का बनाया हुआ यही पवित्र सम्बन्ध है। आप राजा हैं,

और शास्त्रों के मर्म को जानते हैं, फिर स्त्री को ऐसी अनुचित आज्ञा क्यों देते हैं? आप मुझे नैहर जाने को कहते हैं किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकती। आपके साथ छाया की तरह जाना ही मेरा मुख्य काम है। इसलिए आप जहाँ जायँगे वहाँ मैं आपके साथ जाऊँगी। यह स्त्री का कर्त्तव्य है, इसलिए आपकी कोई बात मुझे इस कर्त्तव्य के रास्ते से नहीं हटा सकेगी।

तब हरिश्चन्द्र ने कहा—शैव्या! अब मैं तुम्हें नैहर जाने के लिए नहीं कहूँगा। मैंने पृथिवी दान करके तुमको पाया है। मैं इतने दिनों तक भोग-विलास में तुमको लालसा का खिलौना समझता था, किन्तु आज इस दीनता के बीच तुम्हारी गम्भीर पवित्र मूर्त्ति देखकर मुझे हिम्मत हुई है। देवी! मैं देखता हूँ कि अभागे बिना आश्रयवाले के पास तुम ममता की मूर्ति से अमङ्गल दूर करने के लिए स्नेह का हाथ फैला रही हो।

रानी—महाराज! आपने ठीक कहा है। स्त्री स्वामी के विलास ही के लिए नहीं है। स्त्री दु:ख के समुद्र में स्वामी की जीवन-नौका के लिए दिशा बतलाने की कल है। स्त्री ही रास्ता भूले हुए पति को ध्रुव तारा है और विपत्ति में पड़े हुए पति के लिए स्त्री प्रत्यक्ष ढाढ़स है। आपकी विपद को गले से लगाने के लिए मैं आपके आगे चलती हूँ।

अब शैव्या ने हरिश्चन्द्र का हाथ थाम लिया। राजा ने कहा—मैं आज ही राजधानी छोड़ दूँगा। इसके लिए तुम तैयार हो रहो। रानी! मैंने तुमसे एक और बात नहीं कही। महर्षि को मैंने एक हज़ार मोहरें दक्षिणा में देने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु इसके पहले ही मैं अपना सर्वस्व और समुद्रों-सहित धरती उनको दान कर चुका हूँ। इससे, राज्य के ख़ज़ाने से उनको वह दक्षिणा देने का अधिकार मुझे नहीं रहा। दक्षिणा देने के लिए मैंने महर्षि से एक पख-

वारे की मुहलत ली है। रानी! समझ में नहीं आता कि मैं एक पखवारे में उनको दक्षिणा कैसे दे सकूँगा।

रानी—महाराज! अब यह सोचने का समय नहीं है। चलिए, हम लोग आज ही राजधानी से निकल चलें।

राजा—देवी! आज हम लोग काशी को रवाना होंगे। काशी शिव के त्रिशूल पर बसी हुई है, इसलिए वह पृथिवी के भीतर नहीं। चलो रानी! हम लोग वहाँ जाकर बाबा विश्वनाथ और देवी अन्नपूर्णा के चरणों में भक्ति से फूल और जल चढ़ाकर कृतार्थ होंगे।

इधर अयोध्या की प्रजा राजा के इस पृथिवी-दान का समाचार पाकर बहुत ही दुःखित हुई। मंत्री और सेनापति आदि सरकारी ओहदेदारों के सामने, क्रोध की प्रत्यक्ष मूर्त्ति के समान, विश्वामित्र ऋषि ने राजा को जैसी कड़ी-कड़ी बातें सुनाई थीं और समुद्रों-समेत धरती के चक्रवर्त्ती राजा ने जिस कोमल वाणी से महर्षि की कृपा के लिए प्रार्थना की थी, उसी की चर्चा अब अयोध्या भर में घर-घर होने लगी। सब लोगों ने तय कर लिया कि राजा के साथ हमलोग भी अयोध्या से निकल चलेंगे।

धीरे-धीरे सन्ध्या हुई। सूर्य देवता, मानो कुल-दीपक हरिश्चन्द्र को मुनि से सताये जाते देख, क्रोध से लाल हो पश्चिम समुद्र में डूबने चले गये; चिड़ियाँ मानो राजा के दुःख से व्याकुल हो कोलाहल करने लगीं। मन्दिर में सन्ध्या-समय की आरती का श्रेष्ठ बाजा मानो खेद की ध्वनि ज़ाहिर करने लगा। राजा और रानी दोनों दुखे हुए हृदय से आज देवता के चरणों में प्रणाम कर बिदा माँग आये।

[७]

रात में सन्नाटा छा रहा है। जीव-जन्तु चुपचाप सोये हुए हैं। आकाश में धीरे-धीरे बादलों के उमड़ आने से रात का अँधेरा

गाढ़ा होता जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि रात्रिदेवी ने राजा और रानी के दुःख से चुप होकर काले कपड़े से अपना मुँह ढक लिया है। पृथिवी सुनसान है। बादलों के टुकड़ों से ढक रहे रात्रि के आकाश में दो-एक तारों की चमक दिखाई देती है। इसी समय रानी और कुँवर रोहिताश्व को लेकर राजा राजमहल से निकल पड़े। मंत्री, अन्यान्य राज-कर्मचारी और अयोध्या की बहुतसी प्रजा राजा के पीछे-पीछे जाने लगी।

धीरे-धीरे सब लोग राजधानी से निकलकर मैदान में आ गये। राजा ने हृदय के शोक की तरङ्ग को रोककर रोती हुई प्रजा से कहा—तुम लोग अब घर लौट जाओ; मेरे साथ मत चलो। शोक से रँगे हुए इस पवित्र दृश्य को शायद महर्षि न सह सकें। मैं तुम लोगों के भविष्य, और अयोध्या के राजसिंहासन की हालत को सोचकर चिन्ता कर रहा हूँ। मंत्री, शान्त होओ। मेरे साथ आने का अब तुम लोगों को अधिकार नहीं। तुम कोशलदेश के राजसिंहासन के दाहिने हाथ हो। आशा है, इस बात को याद रखकर काम करोगे।

मंत्री और अयोध्या के लोग रोने लगे। सब ने कहा—जिस राज्य में महाराज हरिश्चन्द्र नहीं वह राज्य मरघट के समान है। महाराज! आपके ऐसे राजा को छोड़कर हम लोग यहाँ कैसे रहेंगे? कोशल का राजसिंहासन आपके सदृश आदर्श राजा के पवित्र चरणों की रज पड़ने से पवित्र हुआ है।

राजा ने समझा-बुझाकर मंत्री और प्रजा को बिदा किया। इतने में आकाश बादलों से ढक गया। मूसलधार वर्षा क्या होने लगी मानो प्रकृति सुन्दरी राजा के दुःख से आँसू बहाने लगी। अनन्त आकाश मानो कड़ककर निठुर विश्वामित्र की निर्दयता को बार-बार धिक्कारने लगा।

कुमार रोहिताश्व को छाती से लगाकर रानी के साथ हरिश्चन्द्र उस मूसलधार वृष्टि में एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। हाय! जो महाराज हरिश्चन्द्र सैकड़ों राजाओं के थामे हुए राज-छत्र सिर पर धारणकर शोभा पाते थे, वे आज प्रतिज्ञा पालने के लिए बिना ही छत्र के पेड़ के नीचे नंगे पैर वर्षा के पानी में भीग रहे हैं। जो रानी राजमहल में सैकड़ों दास-दासियों से घिरी रहकर ऐश्वर्य और विलास में, तुरन्त खिली हुई कमलिनी की तरह, शोभा पाती थी वह आज खुली जगह में, वृक्ष के नीचे भीगे कपड़े पहने काँप रही है। जो राजकुमार राजा-रानी की आँखों की पुतली है, और जो सूर्यवंश की कीर्त्ति का पाया है, वह आज माता-पिता के पहने हुए कपड़ों के भीतर वर्षा से देह को बचा रहा है! सदा से पवित्र अयोध्या का राजसिंहासन इसी विख्यात कीर्त्ति से सजा हुआ है।

धीरे-धीरे वर्षा बन्द हुई। आकाश में दो-एक तारों के साथ-साथ शुक्र तारा दिखाई दिया। राजा-रानी ने पूर्व आकाश की ओर आँखें फेरीं तो देखा कि उषा की सुनहरी किरणें पृथिवी के अँधेरे को दूर करने के लिए आ रही हैं, किन्तु इनके सामने तो भयावने अँधेरे का राज्य है! राजा और रानी ने प्यारे रोहिताश्व को गोद में ले लिया। वे वृक्ष के नीचे से चलकर मैदान के बीचवाले रास्ते से चलने लगे।

लगातार तीन दिन चलकर वे काशी पहुँचे। वरणा और असी नामक दो नदियों के संगम पर, गङ्गा के किनारे, हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ काशी है। हरिश्चन्द्र ने वरणा के किनारे खड़े होकर देखा कि किनारे के मन्दिरों और ऊँचे महलों की परछाइं वरणा के नीले जल में पड़कर तरङ्गों के ताल पर नाच रही है। मोक्ष पाने की इच्छावाले कितने ही योगी, ऋषि और गृहस्थ पत्थर की सीढ़ियों पर बैठकर वरणा की बहार देख रहे हैं। वरणा-तट की सुन्दरता और घास से

ढके हरे मैदान की शोभा देखकर हरिश्चन्द्र पुलकित हुए। वरुणा से लिपटकर जो हवा ठण्ढी हो गई थी वह उनकी थकावट को दूर करने लगी।

रानी शैव्या के साथ हरिश्चन्द्र काशी की अपूर्व शोभा, सड़कों की भीड़ और भक्त नर-नारियों की भक्तिपूर्ण पवित्र मूर्त्ति देखकर प्रसन्न हुए। राजकुमार रोहिताश्व माता-पिता की गोद में लेटे-लेटे नये देश के नये दृश्य अकचकाकर देखने लगा।

धीरे-धीरे वे लोग मणिकर्णिका-घाट पर पहुँचे। वह स्थान उन्हें बड़ा मनोहर लगा। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा—"शैव्या! देखो, वरुणा की लहरें कैसी सुन्दर नाच रही हैं! मणिकर्णिका पर कितने लोगों की भीड़ है! पत्थर का कैसा सुन्दर घाट है। मेरी तो यह इच्छा होती है कि अब जितने दिन पृथिवी पर रहना हो उतने दिन इसी मणि-कर्णिका-घाट के एक कोने में पड़ा रहूँ। देखो शैव्या, इस घाट पर कितने संन्यासी रहते हैं। चलो, हम लोग भी एक तरफ़ टिक रहें।

संन्यासियों से भरे मणिकर्णिका-घाट के एक कोने की धूल को रानी ने अपने कपड़े से झाड़कर राजा और पुत्र को बिठाया। वह आप भी पास ही बैठकर लोगों के शोर-ग़ुल के बीच अपने भविष्य को सोचने लगी। बिना संगी-साथी के उस नये स्थान में जीवन की बीती हुई बातें याद आने लगीं। वह सोचने लगी—कहाँ अयोध्या का राजसिंहासन और कहाँ आज मणिकर्णिका की भूमि पर लेटना! हाय रे दुर्दैव! क्या तेरे मन में यही था?—रानी शोक से सुध-बुध भूल गई। आज उसे जगत् सूना-सा दिखाई देता है। आँखों के आगे दुर्भाग्य का अँधेरा इतना गाढ़ा हो गया है कि नहानेवाले हज़ारों स्त्री-पुरुष उसे नहीं सूझते। हाय! चिन्ता में पड़ी योगिनी उस भीड़-भरे मणिकर्णिका-घाट पर ऐसे सोच रही

है मानो पृथिवी में और कोई मनुष्य ही नहीं है। इस प्रकार सोचते-सोचते शैव्या की आँखों में आँसू भर आये।

शैव्या की आँखों में आँसू देखकर हरिश्चन्द्र सब समझ गये। उन्होंने कहा—"क्यों शैव्या, तुम रोती हो?" शैव्या ने कहा—नहीं, रोती तो नहीं हूँ किन्तु नाथ! आँसू ही तो इस समय हम लोगों का एक-मात्र सहाय है। महाराज! अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठने में आपको कितना कष्ट होता था और आज वही आप धूल में सोये है! जिस राजकुमार को महलों में फूलों की शय्या पर नींद नहीं आती थी वह राजकुमार शोर-गुल में खुले मैदान में पत्थर के घाट पर सोया हुआ है! महाराज! मेरी छाती फट रही है। यह दृश्य मुझसे नहीं देखा जाता।

तब हरिश्चन्द्र ने कहा—रानी! रञ्ज मत करो। इस जगत् में सुख या दुःख कुछ भी नहीं है। जिसको हम लोग सुख का सामान समझते हैं शायद वह सुख न हो और हम लोग दुःख समझकर जिससे डरते हैं शायद वही सुख हो। लीलामय भगवान् के राज्य में यह बात पहले से सबकी समझ में नहीं आती। रानी! सुख-दुःख दोनों में ही भगवान् की सत्य शुभ आज्ञा मौजूद है। पृथिवी पर जिस दिन मनुष्य इस बात को अच्छी तरह समझ जायगा कि—

सभी कर्म सुख-दुःख-मय तापर करो न ध्यान।
फल ईश्वर के हाथ है यह निश्चय जिय जान॥
एहि असार संसार में कारज करि निष्काम।
आत्मज्ञान उपजै जबहिं जीव होहिं सुखधाम॥

प्यारी! भ्रम के अँधेरे में हम लोगों को यह दिखाई नहीं देता, इसी से हम अन्धकार को भयानक मानते हैं। जिस दिन हृदय में आत्मज्ञान जाग उठेगा, जिस दिन आत्मज्ञान जगत् के ज्ञान में मिल

जायगा उस दिन देखोगी कि अब कुछ कष्ट नहीं है। इस संसार में चारों ओर केवल सुख और शान्ति का राज्य है—चारों ओर आनन्द और ख़ुशी की बहार है। रानी! शोक को छोड़ो। सभी हालतों में कर्त्तव्य को याद रखना चाहिए। हालत को—अवस्था को—मनुष्य नहीं बनाता। अच्छी तरह समझे रहो यह काम भगवान के ही हाथ में है। हम लोगों की जो यह रक्त-माँस से बनी देह है, उसकी ख़ुशामद करते रहने से आत्मा की तृप्ति नहीं होती; आत्मा की तृप्ति तो कर्त्तव्य-मार्ग के पालन से होती है। जो भाग्यवान् उस मार्ग से चलते हैं वे ही इस संसार में सच्चे मार्ग के पहचाननेवाले हैं—उनको कुमार्ग से चलकर कष्ट भोगना नहीं पड़ेगा। चलो रानी, तुमको यह बात अच्छी तरह समझा दूँ।"

अब राजा मणिकर्णिका की दाहिनी तरफ़, मसान घाट की ओर बढ़े। सोये हुए रोहिताश्व को गोद में लेकर शैव्या राजा के पीछे-पीछे जाने लगी।

धीरे-धीरे वे मसान घाट के पास पहुँचकर शिव के मन्दिर के चबूतरे पर बैठ गये। राजा ने जलती हुई चिता की ओर उँगली दिखाकर कहा—"रानी! संसारी देह का नतीजा देखती हो न? इस जलती चिता के भीतर की देह संसारी माया में मामूली कष्ट से व्याकुल हो जाती थी, किन्तु आज चिता की आग में भी वह शान्ति पा रही है।" रानी ने सोचा, अहा! मरघट कैसा पवित्र स्थान है! यह तो पृथिवी के कोलाहल से आकर शान्ति के मन्दिर में जाने का रास्ता है। मरघट में पड़े हुए और चिता में जलते हुए मुर्दों को देखकर रानी शैव्या समझ गईं कि संसार अनित्य है। वे माया के बन्धन को और मनुष्य के वृथा अहंकार के भेद को समझ गईं। राजा ने कहा—"रानी! ये जो लाशें देखती हो,

लिये रहती हैं। स्वामी, आप तो सब समझते हैं, फिर क्यों इतने व्याकुल होते हैं। शोक न कीजिए। कौन कहेगा कि आपके सुयश की ढेरी में कल्याण का बीज अंकुरित नहीं है?

' राजा ने टूटे स्वर से कहा—"देवी! मैं सब जानता हूँ, किन्तु आज होनहार की बात सोचकर मुझसे रहा नहीं जाता। कहाँ अयोध्या का राजसिंहासन और कहाँ मणिकर्णिका की धूल में लोटना! कहाँ राजसी ठाट और कहाँ आज भूख का कष्ट; कहाँ सैकड़ों दास-दासियाँ सेवा किया करती थीं और कहाँ भाई-बन्धुओं से अलग अशान्त पड़े रहना; कहाँ दुखिया प्रजा का दुःख दूर करने के लिए राजभाण्डार का खुला रहना और कहाँ इस अभागे के सिर पर ऋण का बोझा! शैव्या! इस संसार में क़र्ज़दार होना बड़े दुःख की बात है। ऋण बड़ी बुरी तकलीफ़ों की जड़ है। जो क़र्ज़दार है उसके जी में तो डरावनी अशान्ति रहती है और उसे बाहर से लोगों की फटकार अलग सहनी पड़ती है। आज, सड़क के किनारे सोये हुए, इस बेफ़िक्र मज़दूर को देखकर मालूम होता है कि यह मुझसे बहुत श्रेष्ठ है। रानी! आज सबेरा होने के साथ-साथ ऋषि के भयङ्कर कोप की याद आ रही है। जब भौंहें चढ़ाये हुए ऋषि की आग-सी शकल की याद आती है तब मेरा धीरज छूट जाता है।" हरिश्चन्द्र विकल हो गये। शैव्या ने स्वामी के आँसुओं में अपने आँसुओं को मिला दिया; पत्थर की सीढ़ी पर आँसुओं की धारा बह चली।

धीरे-धीरे सबेरा हुआ। वृक्षों पर बैठकर चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। सबेरे की शीतल मन्द बयार ने सोये हुए जीवों के शरीर में नया बल भर दिया। पूर्वीय आकाश लाल रूप धारण करके हँसते-हँसते पृथिवी पर कर्म के गीत सुनाने लगा। शैव्या सबेरे की ठण्ढ में ज़रासा सो गई।

राजा हरिश्चन्द्र न जाने क्या-क्या सोच रहे हैं। पूर्व आकाश में अचानक सूर्य को देखकर वे व्याकुल हृदय से बोल उठे—"भगवन् सूर्यदेव ! अभागी सन्तान का प्रणाम लीजिए। आज आपकी आँखें लाल-लाल क्यों हैं? आप पृथिवी पर आनन्द की किरणें बरसाते हैं; आपकी पवित्र सुन्दर मोहिनी मूर्त्ति देखकर जीवधारी लोग हाथ जोड़ आपका स्तोत्र पढ़ते हैं; किन्तु देव ! आज आपकी ऐसी रौद्र मूर्त्ति क्यों देखता हूँ ? क्या आपने भी अभागे पर क्रोधित होकर आँखें लाल कर ली हैं ? क्यों न कीजिएगा ? 'कुसमय मीत काको कौन ?'" इस प्रकार चिन्ता से बेसुध होकर हरिश्चन्द्र पत्थर पर गिर पड़े। रात भर जागते बीती, सबेरे की ठण्ढी हवा ने हरिश्चन्द्र के शोक से तपे हुए प्राण को और भी व्याकुल कर दिया। हरिश्चन्द्र ने देखा कि ऋषि के क्रोध की अग्नि में सारा संसार जल गया है। चारों ओर धायँ-धायँ कर आग जल रही है ! कहीं भागने का उपाय नहीं। प्राणप्यारा रोहिताश्व और प्राण से प्यारी शैव्या—सभी भस्म हो गये। आज अकेले हरिश्चन्द्र अपना कर्मफल भोगने के लिए जगत् को लीलनेवाली उस अग्नि में जल रहे हैं। इस प्रकार कष्ट से विकल होकर उन्होंने आँख खोली। देखा कि विश्वामित्र ऋषि दाहिना हाथ फैलाकर कह रहे हैं—लाओ महाराज, मेरी दक्षिणा। रात बीतने के साथ-साथ तुम्हारी ली हुई मुहलत का भी एक पक्ष बीत गया, आज सोलहवाँ दिन है।

हरिश्चन्द्र ने दुखे हुए हृदय से महर्षि के चरणों में प्रणाम किया। रानी शैव्या ने उठकर महर्षि को प्रणाम करने के बाद उनके चरणों की रज सोये हुए कुमार के सिर पर चढ़ाई।

विश्वामित्र ने राजा को चुप देखकर कहा—"हरिश्चन्द्र ! मेरी दक्षिणा दो। अब देर क्यों लगा रहे हो ?" हरिश्चन्द्र फिर भी चुप

हैं। तब विश्वामित्र ने डाँटकर कहा—"राजा! क्या तुम्हारा यही कर्त्तव्य है? हमारे साथ चाल चलना चाहते हो! यदि दक्षिणा नहीं देना चाहते तो यह बात तुम्हें पहले ही कह देनी थी! तुम इतने दिन से मुझे क्यों नाहक़ हैरान कर रहे हो? जो हो, अब मैं जानना चाहता हूँ कि आज तुम मुझे दक्षिणा की रक़म दोगे या नहीं?" राजा ने घबराकर कहा—"भगवन्! मैं दक्षिणा की रक़म का अभी तक कुछ भी बन्दोबस्त नहीं कर सका। कृपा करके एक पखवारे तक और ठहरिए।" यह बात सुनकर विश्वामित्र ने कहा—नहीं, अब एक दिन भी नहीं ठहरूँगा। आज ही मुझे दक्षिणा मिलनी चाहिए। अगर आज दक्षिणा मुझे मिल न गई तो जान लेना कि आज दिन डूबने के साथ-साथ मेरे क्रोध की आग से सूर्यवंश का नाम तक नहीं रहने पावेगा। राजा! फिर भी कहता हूँ कि मुझे आज ही दक्षिणा मिलनी चाहिए।

हरिश्चन्द्र ने ऋषिवर की ओर आँख उठाकर देखा कि क्रोध से भरी उनकी देह काँप रही है और आँखें आग बरसा रही हैं। राजा ने विकल होकर कहा—"ऋषिवर! मैं तो निराधार हूँ—मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मैं दक्षिणा कहाँ से दूँ? भीख माँगना क्षत्रिय का धर्म नहीं। कहीं नौकरी मिल जाय तो कर लूँ, किन्तु इस काशी में तो कहीं उसका भी ठिकाना नहीं।" यह सुनकर विश्वामित्र बोले—"मालूम होता है, दक्षिणा देना तुम्हारी शक्ति से बाहर है। भला तुमने मुझे इतने दिन रास्ता क्यों तकाया? तुमने आशा देकर इतने दिन मेरी तपस्या में बाधा क्यों दी? लो, मैं जाता हूँ।" विश्वामित्र वहाँ से दो ही चार पग चले होंगे कि रानी शैव्या ने क्रोधित ऋषि के दोनों पैर पकड़कर कहा—देव! पास में कुछ भी न रहने पर मति ठिकाने

नहीं रहती। यह जीव का धर्म है। संसार में यह धर्म मनुष्य के चित्त के साथ मिल-सा गया है। आप लोग अन्तर्यामी हैं। महाराज के हृदय की अवस्था को समझकर आप शान्त हो जायँ। उपाय न देखकर ये दक्षिणा नहीं दे सके। दया करके दक्षिणा की रक़म देने का उपाय आप ही बता दीजिए।

रानी शैव्या की इस विनती को सुनकर विश्वामित्र ने कहा—करूँ क्या? दक्षिणा की रक़म मिले बिना मेरी इच्छा पूरी नहीं होगी। इसी से इतने दिन तक बाट देखता रहा। देखो, मनुष्य इस पृथिवी पर बिलकुल निराधार कभी नहीं होता। सदाचार, परोपकार आदि मनुष्य की आत्मा के आधार हैं और इस संसारी जीवन का आधार उसकी देह है। अब तुम समझो कि दक्षिणा की रक़म देने का उपाय क्या है?

बात तो ठीक है, इतने दिन हम लोग इसको नहीं समझ सके।—यह सोचकर शैव्या ने स्वामी के मुँह की ओर देखकर कहा—महाराज! आपने दक्षिणा देने के उपाय को समझा? तुम मुझे बेचकर महर्षि की दक्षिणा दे दो।

पत्नी के मुँह से यह बात सुनकर हरिश्चन्द्र ने व्याकुल होकर कहा—"रानी, तुम यह क्या कहती हो? अगर ऋषि के कोप से जल भी जाना पड़े तो मुझे मंज़ूर है परन्तु मुझसे ऐसा बुरा काम नहीं होगा।" यह सुनकर विश्वामित्र का क्रोध और भी भड़क उठा। उन्होंने शेर की तरह गरजकर कहा—"राजा! क्या यही तुम्हारी भलमनसी है? दक्षिणा देना मंज़ूर करके अब चालबाज़ी से उसे हज़म किया चाहते हो? अच्छा, अब मैं तुमसे दक्षिणा नहीं माँगूँगा।" अब शाप देने के लिए ऋषि ने हाथ में जल लिया।

विश्वामित्र के क्रोध को और उन्हें चुल्लू में जल लेते देखकर

टूटी लता की तरह शैव्या ऋषिवर के चरणों में गिरकर दया की प्रार्थना करने लगी। विश्वामित्र ने शैव्या की गिड़गिड़ाहट सुनकर कहा—तुम्हारी विनती का ढँग और दीनता, महाराज हरिश्चन्द्र की ढिठाई भुलाकर, मुझको प्रसन्न कर रही है। जो हो, अगर तुम हरिश्चन्द्र की सहधर्मिणी और अर्द्धाङ्गिनी हो तो स्वामी की विपत्ति में अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन करो।

शैव्या सब समझ गई। ऋषि की बात से उसको ज्ञान हुआ। उसने सोचा कि मैं महाराज की सहधर्मिणी हूँ—अर्द्धाङ्गिनी हूँ। इसलिए महाराज ने दक्षिणा देने की जो प्रतिज्ञा की है उसमें मेरी भी प्रतिज्ञा हो चुकी। अब राजा हरिश्चन्द्र से शैव्या बार-बार विनती करने लगी कि आप मुझे बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुका दीजिए। शैव्या की उस मर्मभेदिनी बात को सुनकर और ऋषिवर के क्रोध को देखकर हरिश्चन्द्र मूर्च्छित हो गये। शैव्या ज़ोर से रो-रोकर कहने लगी—ऋषिवर! मेरे जीवन-देवता तो मुझे अनाथ करके चल बसे। अब मैं इस घृणित जीवन को रखकर क्या करूँगी? आपके पवित्र चरणों का दर्शन करते-करते मैं नदी में डूब मरूँगी। अपने प्यारे रोहिताश्व को आपके श्रीचरणों में सौंपे जाती हूँ। दया करके अनाथ बेटी की अन्तिम प्रार्थना पूरी कीजिए।

विश्वामित्र ने कहा—शैव्या! सब बातों में भाग्य ही बलवान् है। शोक छोड़ो। तुम्हारे स्वामी सिर्फ़ मूर्छित हैं। पल भर में मूर्च्छा मिट जायगी। तुम्हें अपना कर्तव्य पालने के लिए यही अच्छा मौक़ा है।

स्वामी को मूर्च्छित जानकर शैव्या कुछ शान्त हुई। फिर वह महर्षि को प्रणाम करके पास ही एक स्थान पर बिकने के लिए जा बैठी।

वहाँ पर एक बूढ़ा ब्राह्मण घूमता-फिरता आ गया। शैव्या ने उसको देखकर कहा—"हे महाशय! क्या आप मुझे मोल ले

सकते हैं? मैं बड़ी विपत्ति में हूँ।" बूढ़े ने कहा—"हाँ, मुझे एक दासी की ज़रूरत है।" शैव्या ने कहा—"तो कृपा करके मुझे ख़रीद लीजिए।" बूढ़े ने पूछा—"तुमको कौन बेचता है?" शैव्या ने कहा—"मेरे स्वामी पर हज़ार मोहरों का क़र्ज़ है। दया करके आप हज़ार मोहरों में मुझे ख़रीद लीजिए।" बूढ़े ने कहा—इतनी मोहरें मेरे पास नहीं हैं। मैं पाँच सौ मोहरें दे सकता हूँ। चाहो तो यह पाँच सौ मोहरें ले लो।

रानी शैव्या ने पाँच सौ मोहरें विश्वामित्र को देकर कहा—"ऋषिवर! मेरे दाम पाँच सौ मोहरें मिली हैं, इन्हें लीजिए।" विश्वामित्र ने वह रक़म ले ली। अब शैव्या ने कहा—"मुनिवर! दासी बनने के पहले मैं एक बार महाराज के चरणों का दर्शन करके उनसे अन्तिम बिदा माँगना चाहती हूँ।" विश्वामित्र ने कहा—हरिश्चन्द्र की मूर्च्छा अभी नहीं टूटी है। तुम ब्राह्मण के घर जाओ। उनकी मूर्च्छा टूटने पर ही मैं यहाँ से जाऊँगा।

शैव्या ने ऋषि को प्रणाम किया; फिर वह मूर्च्छित स्वामी को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण के पीछे-पीछे चली। उस समय कुमार रोहिताश्व शैव्या का आँचल पकड़कर रोने लगा। यह देखकर विश्वामित्र ने ब्राह्मण से कहा—"ब्राह्मण देवता! तुम अपनी ख़रीदी हुई दासी के लड़के को भी अपने घर ले जाओ। इसके लिए तुमको कुछ देना नहीं होगा।" ब्राह्मण ने कुछ सोचकर इसे मंज़ूर कर लिया। रोहिताश्व को गोद में लेकर रानी ब्राह्मण के पीछे-पीछे जाने लगी।

विश्वामित्र ने ज्योंही हरिश्चन्द्र के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"हरिश्चन्द्र! उठो" त्योंही वे उठ बैठे और सामने रानी तथा कुँवर रोहिताश्व को न देखकर घबराहट से बोले—भगवन्, मेरी शैव्या और कुमार रोहिताश्व कहाँ गये? उनको न देखकर तो मुझे चारों ओर सूना लगता है। जल्दी बताइए, वे कहाँ हैं।

विश्वामित्र ने कहा—तुम्हारी स्त्री अपने को बेचकर, तुम्हारे ऋण का आधा हिस्सा चुकाकर, कुमार रोहिताश्व-सहित ख़रीदार ब्राह्मण के घर चली गई।

हरिश्चन्द्र गला फाड़-फाड़कर रोने लगे। उनकी रुलाई से दिशाएँ रो उठीं।

विश्वामित्र ने कहा—"हरिश्चन्द्र! जो हो गया सो हो गया, उसके लिए अब क्या पछताते हो?" हरिश्चन्द्र ने कहा—ऋषिवर, मेरी शैव्या दासी हो गई! सैकड़ों दास-दासियाँ जिसकी आज्ञा पालने के लिए सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं, अयोध्या के राजमहल में जो बड़ी इज़्ज़त से विचरती थी, वह मेरी प्राण से प्यारी अयोध्या की रानी शैव्या आज दासी हुई! मुनिवर! मुझ अभागे की ऐसी हँसी मत उड़ाइए। सच बताइए, मेरी शैव्या और कुमार रोहिताश्व कहाँ हैं।

विश्वामित्र ने कहा—"हरिश्चन्द्र! मैं क्या झूठ कहता हूँ?" उन्होंने, चादर में बँधी शैव्या की दी पाँच सौ मोहरें दिखाकर कहा—"यह देखो हरिश्चन्द्र! तुम्हारी साध्वी पत्नी ने उस दक्षिणा की आधी रक़म चुका दी है जिसका देना तुम मंज़ूर कर चुके हो। अब बाक़ी पाँच सौ मोहरें तुम जल्दी चुका दो।" हरिश्चन्द्र कुछ भी स्थिर नहीं कर सके कि क्या कहें, और क्या करें। पागल की तरह वे न जाने क्या सोचने लगे। अन्त में उन्होंने कहा—"मुनिवर, रानी शैव्या तो दासी हो गई! और मैं कर्मक्षेत्र के भयंकर भँवर में खड़ा हूँ! मैं अब इस प्रेतभूमि में रहना नहीं चाहता। अरे दुर्भाग्य! भयावने युद्ध में जिसका आश्रय करके मैं आगे बढ़ा था, जो दारुण विपत्ति के समुद्र में मुझ डूबते हुए के लिए नौका-समान सहारा थी, वह आज मुझ अभागे के लिए अपने को बेचकर दासी हो गई! जाय, सब जाय; सत्य तुम जाओ—धर्म तुम जाओ। इस पापी की

देह पर अब तुम लोगों को रहने का अधिकार नहीं। मेरी इस देह पर अब प्रेत का अधिकार है। जैसे होगा वैसे मैं प्यारी का उद्धार करूँगा। मेरी ये विशाल भुजाएँ शत्रुओं के सामने यम के दण्ड की भाँति शोभा पाती रही हैं। आज मैं इन्हीं भुजाओं के बल से क्षत्रिय-धर्म को बचाकर दास बनूँगा और उसी दासत्व से मिले हुए धन के बदले में अपनी शैव्या को छुड़ा लाऊँगा। अगर ऐसा नहीं कर सकूँगा तो यहीं गंगाजी में जीवन को त्याग दूँगा।" अब हरिश्चन्द्र वहाँ से चलने के लिए तैयार हुए।

क्रोध से काँपते हुए विश्वामित्र ने कहा—हरिश्चन्द्र ! यह तुम क्या कहते हो ? मेरा ऋण चुकाये बिना ही तुम आत्म-हत्या करोगे ? क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि आत्म-हत्या करना महापाप है ? मेरा ऋण न चुकाकर तो पाप कर ही रहे हो, ऊपर से आत्म-हत्या करके पाप का बोझा और क्यों बढ़ाओगे ? हरिश्चन्द्र ! सुनो, आज यदि तुम मेरी दक्षिणा की रक़म नहीं दोगे तो समझ लो कि मेरा यह दबा हुआ क्रोध सत्यानाश करने की ज्वाला फैलावेगा। समुद्र में बड़वानल और वन में दावानल होने की बात तुमने सुनी होगी, आज तुम्हारे अपराध से मेरा रोषानल तुम्हारे वंश को भस्म कर देगा। हरिश्चन्द्र ! तुम्हें अभी तक इतना अभिमान है ! तुम इस समय दो रास्तों के मोड़ पर आ पहुँचे हो। एक रास्ते में तुम्हारी प्रतिज्ञा है, और दूसरे रास्ते में अनन्त नरक। सोच लो, तुम किस रास्ते जाओगे।

हरिश्चन्द्र ने दुखी होकर कहा—नरक के रास्ते। अब मुझे कुछ सोचना-विचारना नहीं है। पत्नी के विरह से मैं मौत का सा दुःख पा रहा हूँ। पृथिवी मुझे इस समय नरककुण्ड-सी जान पड़ती है। ऋषिवर ! मेरी प्रतिज्ञा भले ही टूट जाय; मैं जब पत्नी और पुत्र की रक्षा करने के अयोग्य हूँ तब मेरे नरकवास में और क्या बाक़ी है ?

विश्वामित्र ने कहा—"हरिश्चन्द्र! अपने पाप से वंश का सत्यानाश करना कौन-सी राजनीति है?" हरिश्चन्द्र ने उकताकर पूछा—"तो आपकी क्या राय है?" विश्वामित्र ने कहा—हरिश्चन्द्र! तुम अपनी साध्वी पत्नी के दृष्टान्त पर चलो। प्रतिज्ञा को तोड़कर महापाप मत करो; वंश में कलङ्क मत लगाओ। अयोध्या का राजवंश पवित्रता की किरणों से सदा से उजला है। भाग्य मनुष्य का दास नहीं है, मनुष्य ही भाग्य का दास है। मनुष्य इस पृथिवी पर कर्मों का फल भोगता है। तुम भी अपने पूर्वजन्म का कर्म-फल भोगने के लिए पृथिवी पर आये हो। तुम वंश का नाश करने नहीं आये हो—यह अधिकार तुम्हें नहीं है।

हरिश्चन्द्र ने ऋषि की इस बात को सुनकर व्याकुल हृदय से कहा—"मुनिवर! आप ज़रा ठहरिए। मैं भी पत्नी की तरह अपने को बेचकर आपको दक्षिणा देता हूँ।" फिर वे पास ही, दास बिकने के अड्डे पर जाकर बोले—"हे काशीवासी ब्राह्मणो! अगर आप लोगों में से किसी को दास की ज़रूरत हो तो पाँच सौ मोहरें देकर काम करने में होशियार इस हट्टे-कट्टे दास को मोल ले लीजिए।" किसी को आते न देखकर हरिश्चन्द्र ने फिर कहा—"हे काशीवासी क्षत्रियो! अगर आप लोगों में से किसी को दास की ज़रूरत हो तो पाँच सौ मोहरों के बदले युद्ध में चतुर इस दास को ख़रीद लीजिए।" इस बार भी किसी को न आते देखकर हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि 'क्या मुझे किसी नीच जाति की सेवकाई करनी पड़ेगी। फिर उन्होंने सोचा कि जब सेवकाई ही करनी है तब फिर मान-अभिमान क्या! उन्होंने फिर एक बार ज़ोर से कहा—हे काशीवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डालगण! अगर आप लोगों में से किसी को दास की ज़रूरत हो तो सोने की पाँच सौ मुद्रा देकर मुझे ख़रीद लीजिए।

हरिश्चन्द्र की बात सुनकर एक भद्दे रूपवाला मरघट का डोम वहाँ आकर बोला—"कौन है ? मुझे चाहिए दास ।" हरिश्चन्द्र ने मरघट के डोम को देखकर सोचा—इसके हाथ मुझे बिकना होगा; मेरे भाग्य में यह बात भी लिखी थी ! जो हो, अब देरी करना ठीक नहीं । यहाँ कोई और ख़रीदार भी तो नहीं है इसलिए मुझे इसी के हाथ बिकना पड़ेगा। राजा ने डोम की ओर बढ़कर कहा—चाण्डाल ! तुम मुझे ख़रीदोगे ? अच्छा लाओ, पाँच सौ मोहरें दो ।

चाण्डाल से पाँच सौ मोहरें लेकर हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को दे दीं । विश्वामित्र ने मोहरें पाकर कहा—"हरिश्चन्द्र ! मैंने तुम्हारी मंजूर की हुई दक्षिणा की रक़म पाई । अब मैं जाता हूँ । समय पर फिर मुझसे भेट होगी ।" हरिश्चन्द्र ने प्रणाम किया ।

विश्वामित्र जब वहाँ से चले गये तब हरिश्चन्द्र ने डोम से पूछा कि मुझे क्या काम करना पड़ेगा । उसने कहा—"मैं मसान-घाट पर लाश जलाने का कर वसूल करता हूँ । तुमको भी यही करना होगा । फिर उसने हरिश्चन्द्र से पूछा—"क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ? मैंने जो काम बताया, उसको कर तो सकोगे ?" हरिश्चन्द्र ने कहा—"मेरा नाम हरिश्चन्द्र है । मैं तुम्हारा काम करने की जी-जान से कोशिश करूँगा । धर्म को बचाने के लिए जब मैंने तुम्हारी सेवकाई करना मंजूर कर लिया है तब मुझसे तुम्हारा कुछ नुक़सान नहीं होगा ।" चाण्डाल ने कहा—"देखो भाई ! तुम्हारा नाम तो बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा मालूम पड़ता है । मैं तो तुमको 'हरिया' कहकर ही पुकारूँगा ।" हरिश्चन्द्र ने कहा—"क्या हर्ज है, यही कहकर पुकारना ।" डोम के सेवक होकर हरिश्चन्द्र मसान-घाट पर मुर्दों का कर वसूल करने और सूअर चराने आदि का काम करने लगे ।

[६]

राजकुमार रोहिताश्व को गोद में लिये हुए शैव्या ब्राह्मण के घर गई।

ब्राह्मण की स्त्री ने देखा कि बूढ़ेराम एक देवी को दासी बना लाये हैं। दासी के साथ एक राजकुँवर-सा बच्चा है। तो क्या यह दासी का पुत्र है? मनुष्य में इतना रूप भी कहीं हो सकता है? इस प्रकार सोचते-सोचते ब्राह्मणी ने उस दासी की ओर रोषभरी निगाह से देखकर अकेले में ब्राह्मण से कहा—"यही दासी है? तुम्हारे इस बुढ़ापे को क्या फिर जवानी की हवा लगी है?" ब्राह्मण ने पत्नी के मुँह से ऐसी कड़ी दिल्लगी सुनकर बड़े दुःख से कहा—ब्राह्मणी! तुम यह क्या कह रही हो? स्त्री में विश्व-नाथ की अपार दया का पूर्ण विकास होता है; स्त्री अन्नपूर्णा-रूप में विश्व के राजा की शुभ आज्ञा का पालन करती है; स्त्री ने माता के रूप से दोनों हाथों में प्रेम और अमृत लेकर इस जगत् को गोद में ले रक्खा है। बड़े शोक की बात है कि तुम स्त्री होकर भी स्त्री की मर्यादा को नहीं समझती।

ब्राह्मण ने दासी का सब हाल ब्राह्मणी को कह सुनाया। ब्राह्मणी ने सुनकर सोचा कि यह ऐसे सुन्दर रूपवाली स्त्री कौन है। स्वामी की बात रखने के लिए स्त्री का ऐसा अपूर्व आत्मदान तो पहले कभी नहीं सुना था। सब सोच-विचारकर ब्राह्मणी दासी के विषय में बुरा ख़याल नहीं रखना चाहती थी तो भी उसके जी में, न जाने क्यों, बुरी चिन्ता हो आती थी। राजकुमारों को लजानेवाले दासी के उस सुन्दर बच्चे को देखकर ब्राह्मणी के हृदय में जब-तब वात्सल्य-भाव उठता। ब्राह्मणी सोचती कि शक्ति-पुत्र कार्त्तिकेय को देखकर कृत्तिका के स्तनों से दूध निकला था; दासी के इस पुत्र को देखकर मुझ बिना पुत्र-वाली के चित्त में भी वात्सल्य की धारा बहती है, तो दासी का यह पुत्र क्या किसी देवता का बालक है? इस प्रकार अस्थिर-चित्त से वह

ब्राह्मणी उस दासी और दासीपुत्र के साथ कभी अच्छा और कभी बुरा बर्ताव करने लगी। सारांश यह कि, अभाग्य की सताई हुई शैव्या और रोहिताश्व ब्राह्मण के घर—ब्राह्मणी का बहुत कुछ अत्याचार सहकर—बड़े कष्ट से दिन बिताने लगे।

महारानी शैव्या ब्राह्मण के घर दासी बनकर, बड़े कष्ट में पराधीनता के अन्न से, दिन बिताने लगीं। उन्हें हर काम में पहले समय के सुख की बातें याद आ जातीं। इससे वे कभी-कभी बेहोश हो जातीं; फिर सोचतीं कि व्यर्थ चिन्ता करने से क्या होगा। विधाता की यही मर्ज़ी है। इस प्रकार शैव्या हृदय के दुःख को दबाकर किसी तरह दिन काटतीं। माता के अपार दुःख में रोहिताश्व एकमात्र सहारा-सा था।

दासी के ऊँचे मन को, देवताओं के ऊपर उसकी भक्ति को और सदाचार को देखकर ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न हुए। ब्राह्मणी के जी में भी कभी-कभी दासी के लिए सहानुभूति होती किन्तु स्वार्थ की ज़बर्दस्त चिन्ता उस सहानुभूति को प्रकट न होने देती थी। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर, ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने विचार किया कि दासी के पुत्र को फूल चुन लाने का काम दिया जाय और इसके बदले में उसको खाना दिया जाय। शैव्या ने ब्राह्मणी की यह बात सुनकर पुत्र को ब्राह्मण की पूजा के निमित्त फूल चुन लाने की सलाह दी। रोहिताश्व पूजा के लिए फूल चुनने के काम पर तैनात हुआ।

एक दिन कुमार रोहिताश्व फूल चुनने वन में गया था कि वहाँ एक ज़हरीले साँप ने उसे डस लिया। बालक रोहिताश्व विष की ज्वाला से माता को पुकार-पुकारकर वहीं मर गया।

धीरे-धीरे यह भयानक समाचार शैव्या के कानों तक पहुँचा। वह एक-साँस वन में जाकर, मरे हुए पुत्र को छाती से लगा, रोने लगी। शैव्या का रोना सुनकर मानो वन के वृक्ष भी रोने लगे। पुत्र

के शोक से विकल रानी की दुःखभरी गुहार सुनकर पशु-पत्ती टकटकी लगाकर सती के चारों ओर खड़े हो गये।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो चली। दासी को अब तक न लौटते देखकर ब्राह्मण को फ़िक्र हुई। उसने वन में जाकर देखा कि लड़के की लाश को छाती से लगाये दासी रो रही है। हाय! इस निर्जन वन में उसको ढाढ़स देनेवाला कोई नहीं है। पुत्र-शोक से विह्वल रानी की पगली सूरत देखकर ब्राह्मण एकाएक ठिठक गया। वह बड़े कष्ट से दासी के पास जाकर उसे समझाने-बुझाने लगा। ढाढ़स की बातें सुनने से शैव्या का शोक और भी उमड़ आया।

ब्राह्मण से दासी का यह शोक देखा नहीं गया। उसकी आँखें भी आँसुओं से भीग गईं। उसने कहा—बेटी! ढाढ़स बाँधो, शोक छोड़ो। इस पृथिवी पर सबको उसी रास्ते जाना होगा। हम लोगों की समझ में यह बात नहीं आती, इसी से इतना दुःख भोगते हैं। बेटी! शोक छोड़कर मरे हुए लड़के की दाह-क्रिया करो।

दाह-क्रिया का नाम सुनकर सती का शोक चौगुना बढ़ गया। उसने व्याकुल होकर कहा—"महाराज! माता होकर मैं बेटे की दाह-क्रिया करूँगी? हाय विधाता! तुम्हारे जी में यह भी था! इतना दुःख देने पर भी तुझे कुछ दया न आई! हा नाथ! अब तो नहीं सहा जाता।" शैव्या इस प्रकार विलाप करती बालक की लाश को गोद में लेकर धीरे-धीरे मरघट की ओर चली। तारों से भरे नीले आकाश ने शैव्या के दारुण खेद को देखकर मानो तारे-रूपी अपने नेत्रों को बादलों से ढक लिया।

[१०]

वरुणा के तट पर काशी के मसान-घाट में कई चिताएँ जल रही हैं। पास ही, एक डोम एक पेड़ के नीचे खड़ा होकर पहले

की बातें सोच रहा है। वह सोचता है—क्या मैं सचमुच किसी समय राजा था? क्या मेरे एक रानी और एक लड़का भी था? क्या सैकड़ों दास-दासियों ने मेरी सेवा की है? क्या मेरे पास अपार धन था? क्या मैं समुद्रों-समेत पृथिवी का कभी स्वामी था? क्या यह सब सच है? मालूम तो नहीं होता। किसी दिन खुर्राटे की नींद में सपना देखा होगा! नहीं तो कहाँ राजपाट और कहाँ यह काशी का मरघट! ऐसा भी हो सकता है? वह क्या है? आकाश की गोद में अँधेरे के बीच किसी ऋषि की मूर्ति तो नहीं है? अरे! यह मूर्ति तो पहचानी हुई सी जान पड़ती है! हाँ, ये तो विश्वामित्र ऋषि हैं। मैंने इन्हीं को पृथिवी दान की है न? हाय रे! मरघट के डोम ने पृथिवी दान की है, यह कभी हो सकता है? यह सब बिगड़े हुए दिमाग़ की बक-वाद है। हृदय! क्यों अशान्त होते हो? तुम तो मरघट के डोम हो, तुम तो—डोमों के सरदार कल्लू के दास—हरिया डोम हो।

पहले से ही आकाश में मेघ छा रहे थे। अब बड़े ज़ोर से वर्षा होने लगी। बिजली के बार-बार चमकने और कड़कने से ऐसा मालूम होता था मानो आज प्रलय होनेवाला है!

इतने में एक स्त्री एक लड़के की लाश को छाती से लगाये उस मरघट में आई। विकट अँधेरा है, कुछ भी दिखाई नहीं देता। बीच-बीच में बिजली की चमक से अँधेरा और भी गहरा होता जाता है। मरघट के डोम ने सोचा—जान पड़ता है किसी के घर का दीपक बुझ गया है! किसी की तक़दीर फूट गई है! इस काल-रात्रि में यह कौन अकेला आ रहा है? उसकी छाती से सटा हुआ वह क्या है? क्या किसी लड़के की लाश है?

वह स्त्री एकाएक ठहर गई। अँधेरे में रास्ता नहीं दिखाई देता। इस भयानक आँधी-पानी में यहाँ कोई आदमी भी है? कौन मुझे

रास्ता दिखायेगा? यह सोचते-सोचते स्त्री व्याकुल हो गई। अचानक बिजली चमकी। उसके ज़रा देर के उजेले में स्त्री ने देखा कि सामने कोई खड़ा है। स्त्री ने घबराकर पूछा—इस अँधेरे में तुम कौन हो?

बेजान-पहचानवाले ने कहा—मैं डोम हूँ। इस मरघट में मुर्दा जलाना मेरा काम है। आओ, जल्द तुम अपना काम करो। क्यों व्यर्थ शोक करती हो? संसार की रीति ही ऐसी है। एक जाता है और एक आता है। काल-चक्र में जीव का यह आना-जाना पेचीदा बातों से भरा हुआ है। विश्व-नाथ के इस उद्देश को माया से बँधे हुए मनुष्य बिलकुल नहीं समझ सकते। मैं इस मरघट में इसको अपनी आँखों देख रहा हूँ। इसी से कहता हूँ कि तुम इतनी क्यों घबराती हो—क्यों इस प्रकार रोती-कलपती हो? धीरज धरो।

एक बे-पहचाने हुए की इन बातों को सुनकर स्त्री ज़रा होश में आई, उसे कुछ ढाढ़स हुआ। कठिन विपत्ति में समझाने से सिर्फ़ आँसू ही बढ़ते हैं। रानी की आँखों में आँसुओं की धारा उमड़ आई। उन्होंने गिड़गिड़ाकर कहा—डोम! तुम आदमी नहीं, कोई देवता हो। ऐसा न होता तो तुम्हारा हृदय इतना कोमल कैसे होता। तुममें इतनी सहानुभूति और इतना ऊँचा ज्ञान कैसे होता। हे देवता! तुम मेरी आँखों की पुतली को ढूँढ़ दो—अभागिनी के एक-मात्र आश्रय को अमृत छिड़ककर फिर से जिला दो।

डोम ने कहा—देवी! मैं झूठ नहीं कहता। मैं तुम्हारे ही समान मनुष्य हूँ; नहीं नहीं, मनुष्य से भी अधम मुर्दा जलाने-वाला मरघट का डोम हूँ। तुम सन्देह क्यों करती हो? अब देर मत करो। अपने लड़के की लाश जलाने के लिए पाँच गण्डा कौड़ी दो। मैं जलाने के लिए आग देता हूँ।

पाँच गण्डे कौड़ियों की बात सुनकर शैव्या का प्राण सूख

गया। वह इतनी कौड़ियाँ कहाँ पावे? गहरे दुःख के समय मनुष्य को जीवन के बीते हुए सुखों की याद आती है। इससे उसका चित्त व्याकुल हो जाता है। शैव्या को पुरानी बातों की याद हो आई। कौड़ियों का कुछ उपाय न देखकर उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

डोम ने कहा—क्यों नाहक़ शोक करती हो? पाँच गण्डा कौड़ियाँ जल्दी दो। देखती नहीं हो, आकाश कुछ साफ़ हो गया है, और वर्षा भी रुक गई है। फिर आँधी या पानी के आने से यह मरघट और भी विकट हो जायगा। इसलिए अब देर मत करो।

स्त्री ने कहा—"डोम! मैं कौड़ियाँ कहाँ पाऊँ? मैं तो ख़रीदी हुई दासी हूँ। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, चाण्डाल! मेरी विपद में तुम सहायता करो।" कुछ देर बाद, हृदय के वेग को दबाकर उसने कहा—हाय नाथ! तुम कहाँ हो? देखते नहीं कि पाँच गण्डे कौड़ियों के लिए तुम्हारे पुत्र की क्रिया रुकी हुई है।

डोम ने पूछा—भद्रे! क्या तुम्हारा निठुर पति अभी ज़िन्दा है?

स्त्री ने घबराकर कहा—चाण्डाल! तुम किसकी निन्दा करते हो? तुम मेरे स्वामी को निठुर कहते हो? ख़बरदार! ऐसा मत कहना! मेरे स्वामी महाराजाधिराज हैं, मेरे स्वामी बड़े भारी दानी हैं, मेरे स्वामी दीनों को शरण देते हैं, वे प्रजा को हृदय से चाहते हैं, वे बड़े प्रेमी हैं, मनुष्य के चोले में साक्षात् देवता हैं। डोम! बिना जाने, तुम उनको निठुर क्यों कहते हो?

डोम ने चौंककर पूछा—तब तुम्हारी यह हालत क्यों है? तुम ऐसी असहाय अवस्था में, मरघट में, अकेली क्यों आई?

स्त्री ने दुःखभरे स्वर में कहा—वह बहुत बड़ी कहानी है।

हाय हाय, भाग्य में यह भी बदा था ! मा होकर बेटे को मरघट में लाना पड़ा । हाय नाथ ! कहाँ हो ? देखते नहीं कि तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व आज सदा के लिए मरघट में सोया हुआ है ।

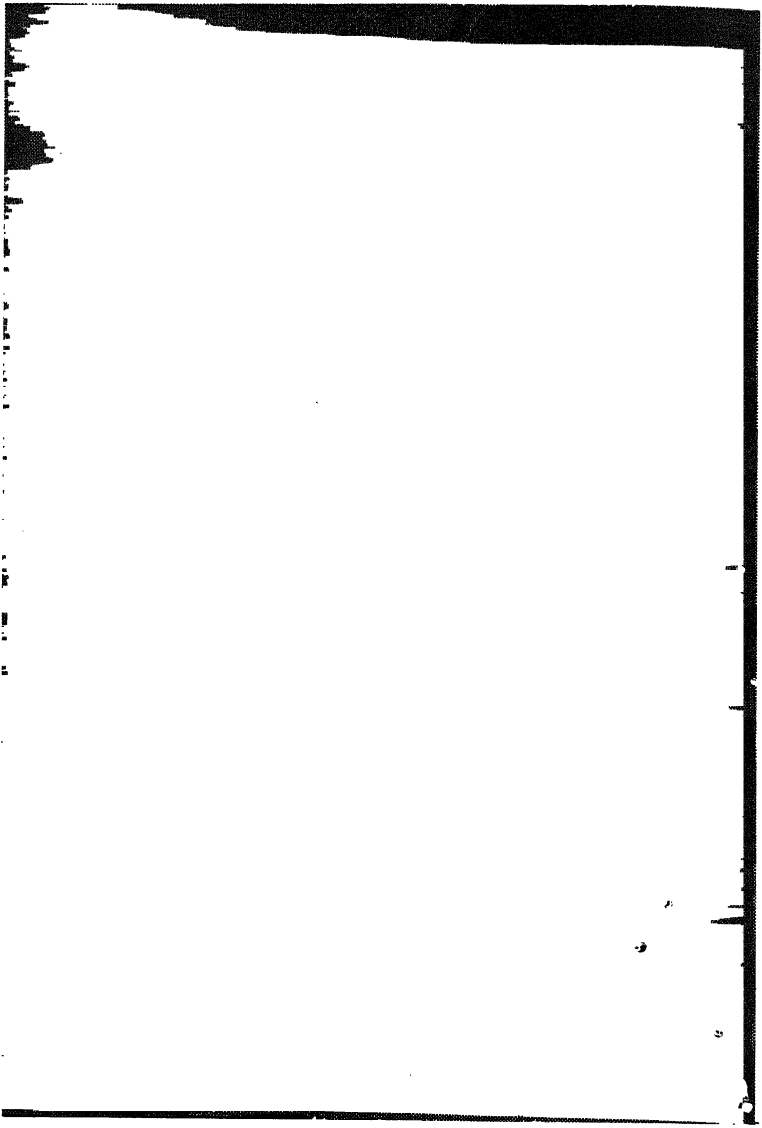
अयँ ! यह क्या ? डोम का यह भाव क्यों ? वह सोचने लगा—"मेरे बेटे का नाम भी तो रोहिताश्व था । यह स्त्री रोहिताश्व का नाम लेती है । तो क्या यह स्त्री मेरी शैव्या है ?" यह सोचते हुए उसने रानी के पास जाकर घबराहट से पूछा—बताओ तो, बताओ तो, क्या तुम अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या हो ? यह मरा हुआ बालक क्या कुमार रोहिताश्व है ?

अचानक बिजली चमकी । बिजली की रोशनी में दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया । हरिश्चन्द्र चिल्लाकर बोले—"महारानी शैव्या! प्यारे रोहिताश्व! तुम लोगों की यह दशा!!" फिर मरे हुए पुत्र की छाती पर लोटकर हरिश्चन्द्र हाहाकार करने लगे ।

शैव्या ने दूने दुःख से व्याकुल होकर कहा—"महाराज ! आपका यह वेष !" राजा-रानी के व्याकुल रोदन से काशी का मरघट मानो रोने लगा । देर तक विलाप के बाद हरिश्चन्द्र ने कहा—"रानी ! अब क्या रक्खा है ? जीवन की सब साध तो पूरी हो गई । चलो, पुत्र की लाश को गोद में लेकर इस जलती हुई चिता में जल मरें । हम लोगों को अब जीने की ज़रूरत ही क्या है ?" यह कहकर वे धधकती हुई चिता में घुसने को तैयार हुए ।

"हैं हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे जैसे आदर्श-दम्पति को अपनी छाती पर बिठला करके धरती आज धन्य हुई है ।" यह कहते हुए महर्षि विश्वामित्र ने आकर हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लिया ।

राजा और रानी ऋषि के चरणों में गिर पड़े । उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे । विश्वामित्र ने बड़े प्रेम से उनको उठाकर



श्मशान में मृत पुत्र को गोद में लिये शैव्या और
चाण्डालवेषी हरिश्चन्द्र—पृष्ठ २१७

कहा—वत्स हरिश्चन्द्र ! बेटी शैव्या ! शोक छोड़ो। देखो, रात के अन्त के साथ-साथ तुम लोगों की दुःख की रात भी बीत गई।

फिर विश्वामित्र ने रोहिताश्व के मुर्दा शरीर पर अपने कमण्डलु का जल छिड़का। इससे कुँवर जी उठा। वह बोला—"मा ! तुम कहाँ हो ?" शैव्या ने रोहिताश्व को गोद में लेकर मुनिवर के चरणों की रज उसके शरीर में लगा दी।

हरिश्चन्द्र ने कहा—"महर्षि ! दुःख की परीक्षा में आपने मुझे अनन्त सुख का मालिक बनाया। आपके इस ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता।" हरिश्चन्द्र की इस बात को सुनकर विश्वामित्र ने कहा—हरिश्चन्द्र ! जगत् में कर्मी कोई नहीं है, सब का मूल विधाता है। महाराज ! धर्म ही सबसे ऊँचा है और धर्मात्मा को धर्म ही बचाता है—"धर्मो रक्षति धार्मिकम्।" कर्म से ही जगत् के कारोबार हो रहे हैं। तुम लोगों ने कर्म की लड़ाई में जय पाई है। धर्म तुम लोगों का सदा सहायक है। यद्यपि तुम तरह-तरह की दुर्दशाओं में अपने को भूल गये थे, फिर भी देखते तो हो कि इस संग्राम में जीत किसकी हुई ? जीते तुम्हीं। राज्य छोड़ देने ही से आज तुम्हारी यह कीर्त्ति भुवनों में भर गई है; और मैंने, राज्य पाकर अपना सर्वनाश कर डाला है—ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व को त्यागकर मैं बहुत गिर गया हूँ। हरिश्चन्द्र ! तुम एक दिन राज्य दान करके भिखारी हुए थे—आज उस राज्य को लेकर फिर महिमा के मुकुट से सज जाओ। मुझे राज्य से या धन से कुछ सरोकार नहीं। मेरी ब्रह्म-साधना का मार्ग ही खुला रहे।

विश्वामित्र ने अयोध्या के राज-सिंहासन पर हरिश्चन्द्र को फिर बिठाया। राज्य में आनन्द की धारा बहने लगी।

पाँचवाँ आख्यान

चिन्ता

पाँचवाँ आख्यान

—:-❀-:—

चिन्ता

[१]

पुराने ज़माने में भारतवर्ष में चित्रसेन नामक बड़े प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे जैसे दाता थे वैसे ही धर्मात्मा भी थे। वे हुकूमत करने में साक्षात् इन्द्र के तुल्य, न्याय करने में मूर्त्तिमान् धर्म और शास्त्रों के ज्ञान में प्रत्यक्ष बृहस्पति के समान थे। राजाओं के योग्य इन गुणों के होने से राजा चित्रसेन की प्रजा के हृदय में देवता को तरह पूजा होती थी।

राजा के वैभव की हद नहीं थी। सतमंज़िला महल था। नाना प्रकार के रत्नों से भरा उनका वह राजभवन इन्द्रावती से भी बढ़कर जान पड़ता था। सैकड़ों दास-दासियाँ राजा की आज्ञा मानने को सदा मुस्तैद रहती थीं। मतलब यह कि राजधानी सुख, शान्ति और सिलसिले का काम होने से आनन्द का घर हो रही थी।

राजा चित्रसेन की इकलौती बेटी का नाम चिन्ता था। चिन्ता संसार को सतानेवाली चिन्ता नहीं थी, किन्तु यह संसार के मन को मोहित करनेवाली चिन्ता थी। जो कोई चिन्ता की सुन्दर देह में अनोखी लुनाई और शोभा देखता वह कहता—अहा! सुघराई

क्या है मानो विधाता ने इस अनित्य पृथिवी पर सुन्दरता और पवित्रता की मूर्त्ति दिखाने के लिए ही चिन्ता को रचा है। चिन्ता के अङ्गों में ज्वाला नहीं है—केवल हृदय को प्रसन्न करनेवाली शान्ति है! चिन्ता को देखने से लालसा का क्लेश नहीं होता, होती है केवल तृप्ति। चिन्ता को देखने से निराशा की ताप से जले हुए अभागे के हृदय में भी आनन्द की हवा बहती है। विधाता की रची हुई सृष्टि में चिन्ता मानो एक ऐसी सुन्दर तसवीर है जिसमें कोई दोष नहीं।

चिन्ता की उस ममता-मयी मूर्त्ति में मानो विधाता की अपूर्व सृष्टि-कुशलता छिपी हुई है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य में क्या इतना रूप हो सकता है? सभी देखते हैं कि चिन्ता की बे-जोड़ कान्ति से चारों ओर उजेला-सा फैल जाता है। नारी का नारीत्व मानो चिन्ता के मुख और नेत्रों से निकला पड़ता है। चिन्ता मानो सुख के सरोवर में खिली हुई कमलिनी है जो मधुर वायु के झोंकों से सदा सुख की लहरें ले रही है।

पिता के आदर और माता के प्रेम में चिन्ता का सुख से भरा बचपन बीत गया। चिन्ता ने अब माता की गोद छोड़कर कुछ स्वाधीनता से चलना सीखा है। उसको सखियाँ मिल गई हैं। वह उन्हीं के साथ खेलती है। महल की बग़ीची में सखियों के साथ जाकर वह फूल चुनती और माला गूँथती है। सहेलियों में कई हँसोड़ और दिल्लगीबाज़ थीं, किन्तु सखियों की तरह चिन्ता न तो ज़ोर से हँसती और न दिल्लगी-मज़ाक़ में रहती। वह हँसी और खेल के भीतर खोजती थी कि संसार में "और कुछ" क्या है। वाटिका में खिले हुए फूलों की मोहिनी शोभा को देखकर वह सोचती—अहा, फूल कैसा सुन्दर है! किन्तु जिनकी कृपा से यह

फूल खिला है वे न जाने कितने सुन्दर हैं! पक्षियों के गीत से मग्न होने पर वह सोचती—मीठे स्वर से पक्षी जिनकी स्तुति कर रहे हैं वे न जाने कितने महान्, कितने बड़े हैं! नदी के किनारे बैठकर वह सोचती—जगत् को बनानेवाले की कितनी अपार करुणा है; सबेरे की बयार की शीतलता से पुलकित होकर सोचती—अहा! विधाता का दान अनन्त है! इस प्रकार सोचते-सोचते राजकुमारी सुध-बुध भूल जाती। विधाता के पवित्र आशीर्वाद को पाकर बालिका नया उत्साह पा जाती।

सुख की गृहस्थी में जन्म लेने से बालक कुछ आराम-तलब और खिलाड़ी होते हैं किन्तु राजकुमारी चिन्ता मा-बाप की इकलौती बेटी होने पर भी व्रत-नियम में अपने को भूल जानेवाली योगिनी की भाँति रहती थी। उसके बचपन का यह अनोखा जीवन उसको भविष्यत् के रास्ते में चलाने के लिए तैयार करता था। चिन्ता सोचती—सुख या दुःख दुनिया में कुछ नहीं है। भ्रम में पड़े हुए मनुष्य सुख में अपने को भूल जाते हैं और दुःख में विकल होकर कर्तव्य के रास्ते से हट जाते हैं। मैं राजकन्या हूँ, सैकड़ों दास-दासियाँ मेरी आज्ञा मानने को तैयार हैं; किन्तु मैं आप क्या कुछ नहीं कर सकता? काम करने में ही तो सच्चा बड़प्पन है। आलसी रहकर कोई बड़ा नहीं बन सकता! मनुष्य को बड़ा बनने के लिए अपने ऊपर भरोसा करना सीखना चाहिए। दुःख या कष्ट पड़ने पर, उसे भगवान् की लीला समझनी चाहिए। आत्म-विश्वास की अथक शक्ति के सहारे दुःख के बन्धन से छूटना चाहिए। इसलिए मैं अपना काम अपने ही हाथ से करूँगी। सोच-विचारकर चिन्ता अपना सब काम आप ही किया करती। बालिका के इस ढँग को देखकर रानी कुछ कहती तो चिन्ता उत्तर देती—मा! इस कर्मभूमि धरती में

मनुष्य काम करके ही धन्य होता है। मुझे काम करना अच्छा लगता है।

लड़की के मुँह से ऐसी बातें सुनकर रानी को बहुत सन्तोष होता, किन्तु बालिका के माथे पर, काम की थकावट से, पसीने की बूँदें देखकर उनका जी आधा हो जाता।

काम-धाम को ही पसन्द करनेवाली चिन्ता सदा काम-काज में लगी रहती थी। दरिद्रों को दुःख से छुड़ाने और बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करने से वह सुखी होती थी। किसी के दुःख की बात सुनने पर उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे।

[२]

एक दिन वसन्त ऋतु में सबेरे राजकुमारी चिन्ता राजभवन की फुलवाड़ी में एक जगह बैठकर एक खिले हुए फूल की शोभा देख रही है। गहरी एकाग्रता से बालिका को वह फूल चित्र-सा मालूम हो रहा है। उसके काले-काले केश बिखरकर इधर-उधर लटक रहे हैं। बालिका की दृष्टि उसी फूल की ओर है, किन्तु ग़ौर से देखने पर मालूम हो सकता है कि यद्यपि उसकी नज़र फूल की तरफ़ लगी हुई है तथापि उसका चित्त इस नाशवान जगत् के फूल को छोड़कर मानो अमरावती के खिले हुए भाव-पुष्प में मग्न है। चिन्ता का मुँह उजला, गम्भीर और प्रसन्न है। हृदय की पवित्रता ने मानो उसके मुँह को अपूर्व भाव से सजा रक्खा है। ऊपर से सबेरे के सूर्य की सुनहली किरणें पड़ने से वह कुञ्जों में बिचरनेवाली बालिका उषा की तरह शोभायमान हो रही है। चिन्ता का हृदय, चिन्ता देवी के न थकनेवाले पंख पर सवार होकर, दृष्टि और कल्पना से बाहर किसी भाव-राज्य में चला गया है।

इतने में राजा चित्रसेन बग़ीची की सैर करने आये। उन्होंने देखा

कि उनकी प्राण से प्यारी बेटी लता-मण्डप के पास भाव में डूबी हुई बैठी है। राजा ने चिन्ता के गम्भीर भाव को देखकर सोचा कि मेरी लड़की ही सुनहली किरणों से जगमगाती उषा देवी की तरह लगती है या यह कोई देवी है जो मेरी लड़की के रूप में जन्म लेकर पूर्वजन्म के सुख से सनी हुई बातों को सोच रही है।

धीरे-धीरे लड़की के पास आकर राजा खड़े हो गये, किन्तु बालिका को इसकी कुछ ख़बर ही नहीं। राजा ने प्रेम से कहा—बेटी चिन्ता! आज यहाँ अकेली बैठी क्या सोच रही हो?

बालिका ने सावधान होकर कहा—पिताजी! मैं एक नज़र इस खिले हुए फूल को देखती थी; वह मानो मुझसे कहता था कि स्त्री उसी दिन सार्थक है जिस दिन कर्तव्य का प्रकाश उसको बड़प्पन दे दे। पिताजी! फूल का यह मौन उपदेश मेरे जी में धँस गया है। वह कहता था कि जगत् में मनुष्य दूसरों की भलाई-बुराई में कभी न फँसे—सदा कर्तव्य साधने में जुटा रहे। जगत् की बाधाएँ कर्तव्य साधने के पक्के इरादे पर पहले तो ज़बर्दस्त हमले किया करती हैं, किन्तु अन्त में, सिद्धि का रास्ता दिखाकर वे ही हृदय को बलवान् बनाती हैं। पिताजी! लोग भ्रम में अन्धे हो रहे हैं, इससे इस पृथिवी पर वे अपने कर्तव्य के रास्ते को छोड़ देते हैं। वे इस बात को भूल जाते हैं कि मनुष्यों की सृष्टि भगवान् ही की कृपा से हुई है।

बेटी के इस अद्भुत ज्ञान को देखकर राजा चित्रसेन बहुत प्रसन्न हुए। उनकी आँखों ने प्रेम के आँसू बरसाकर हृदय का आनन्द प्रकट किया। राजा ने सोचा—मैं धन्य हूँ; मेरी यह बालिका शास्त्रों के ज्ञान में मानो सरस्वती है।

अपूर्व सुन्दरी चिन्ता के रूप और लुनाई में हृदय की पवित्रता मिलकर बहुत ही मनोहर हो गई है। बालिका चिन्ता गुड़िया का

खेल भूलकर अब भगवान् के मधुर भाव में मस्त है। लड़की के इस भाव को देखकर राजा प्रसन्नता से बग़ीचे में घूमे; फिर वे राजकुमारी के साथ राज-भवन को लौट आये।

[३]

चिन्ता अब लड़की नहीं है। उसके विवाह के लिए देश-देश में ब्राह्मण भेजे गये। राजा-रानी सोचने लगे कि चिन्ता जैसी सुशीला और भक्तिमती है वैसा उसके योग्य वर कहाँ मिलेगा।

चित्रसेन के भेजे हुए ब्राह्मण देश-देश में चिन्ता के योग्य राज-कुमार को ढूँढ़ने लगे, किन्तु कहीं उसके लायक़ वर नहीं मिला। अन्त को एक दूत प्राग्देश में *चित्ररथ राजा के यहाँ पहुँचा। उसने देखा कि राजधानी का ऊँचा फाटक राज्य के ऐश्वर्य को बतला रहा है। राजा के दबाव से प्राग्देश नियम और बन्दोबस्त का घर मालूम हुआ। दूत ने वहाँ के राजकुमार की शूरवीरता, विद्वत्ता आदि गुणों का वर्णन सुनकर सोचा कि चित्रसेन की बेटी चिन्ता का स्वामी होने के योग्य यही है।

दूत ने राज-सभा में जाकर विधि से अभिवादन करके राजा चित्ररथ से कहा—महाराज! राजा चित्रसेन अपनी परम सुन्दरी बेटी चिन्ता के योग्य वर ढूँढ़ रहे हैं। आपके पुत्र युवराज श्रीवत्स बालिग़ हुए हैं। अतएव कृपा करके चित्रसेन की लड़की के साथ राजकुमार श्रीवत्स का विवाह-सम्बन्ध पक्का कीजिए।

अपने योग्य पुत्र का विवाह करने के लिए राजा चित्ररथ रूप-गुणवाली कन्या की खोज में थे ही। आज दूत से राजकुमारी चिन्ता का समाचार पाकर बड़ी प्रसन्नता के साथ वे इस बात पर राज़ी हो गये। दूत ख़ुशी से राजा चित्रसेन के राज्य को लौट गया।

---

* ब्रह्मपुत्र और भागीरथी नदी के बीच का स्थान।

दूत के मुँह से प्रागदेश के राजा के पुत्र श्रीवत्स की बात सुनकर चित्रसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विवाह की तैयारी करने के लिए मन्त्री को आज्ञा दे दी।

राजा की आज्ञा से नगर सजाया जाने लगा। सजावट के सम्बन्ध में यही कहना काफ़ी है—"बनै न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाय मन तहाँ लुभाई।" चारों ओर पताकाएँ फहराने लगीं। सदर सड़क के दोनों ओर आम के पत्तों के बन्दनवार टाँगे गये। जगह-जगह पर महराबें लगाई गईं। राजधानी में मङ्गल-गीत और बाजे-गाजे की ध्वनि सुनाई देने लगी।

धीरे-धीरे विवाह का दिन आ गया। राजा चित्ररथ बड़े ठाट-बाट से बरात लेकर राजा चित्रसेन के राज में आ पहुँचे। राजा चित्ररथ का ऐश्वर्य अपार है। बरात की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। बरात के आगे-आगे बड़े-बड़े हाथी जड़ाऊ फूलों से सजकर मस्तानी चाल चल रहे हैं। उनके पीछे सजे-सजाये बेहिसाब घोड़ों पर चढ़े योद्धा जा रहे हैं। साथ में, तरह-तरह के बाजे बज रहे हैं। धीरे-धीरे यह बरात राजा चित्रसेन की राजधानी में पहुँची। चित्रसेन ने बरातियों को जनवासा दिया और उनके खाने-पीने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया।

शुभ मुहूर्त्त में चित्रसेन ने श्रीवत्स के हाथ में अपनी परम रूपवती बेटी चिन्ता को सौंप दिया। नये दम्पति एक-दूसरे के हाथ के स्पर्श से ख़ुश हुए।

राजा चित्रसेन के आदर-सत्कार से चित्ररथ बहुत प्रसन्न हुए। प्रागदेश के राजा ने अन्त में राजधानी को लौटने के लिए समधी से बिदा माँगी। चित्रसेन ने यथायोग्य विनती करके चित्ररथ से और कुछ दिन रहने के लिए प्रार्थना की, किन्तु राज-काज की अधिकता

और अपने महत्त्व को सोचकर चित्ररथ ने वहाँ और अधिक दिन रहना मंज़ूर नहीं किया।

राजा चित्रसेन ने प्राण से अधिक प्यारी बेटी को दास-दासी और क़ीमती कपड़े तथा गहने देकर आँसू पोंछते-पोंछते बिदा किया।

चिन्ता ने ससुराल में आकर भक्ति से सास के चरण छुए। श्रीवत्स की माता ने रूपवती और गुणवती बहू को प्रेम से अपनाया। चिन्ता की भक्ति और सेवा पर राजा-रानी दोनों प्रसन्न रहते, अच्छे बर्ताव और ममता से नौकर-चाकर ख़ुश रहते, दया तथा आदर से अन्धे अपाहिज तृप्त होते और चिन्ता की प्रेम-पूजा से राजकुमार श्रीवत्स प्रसन्न रहते।

इसी तरह कुछ दिन बीते। राजा चित्ररथ ने योग्य पुत्र श्रीवत्स को राज्य देकर वानप्रस्थ ले लिया। रानी भी राजा के साथ चली गईं।

[४]

अब प्रागदेश के राजा श्रीवत्स हैं। वे साक्षात् धर्म की तरह प्रजा का पालन करने लगे। प्रजा भी राजा पर प्रेम से भक्ति रखने लगी। राज्य में न कहीं दंगा-फ़साद था और न किसी को कुछ खेद। सुख-शान्ति से राज्य भरा-पूरा था; उस सुख-शान्ति-पूर्ण राज्य में चिन्ता आदर्श रानी और आदर्श माता हो चली। वह अपने प्रेम से और दया के व्यवहार से प्रजा की आँखों में देवी-समान जँचने लगी।

एक दिन वसन्त की रात में श्रीवत्स चिन्ता के साथ महल के बग़ीचे में थे। आसपास और कोई नहीं था। प्यारे पति की देह पर अपनी देह का सहारा देकर चिन्ता बैठी हुई है। चिन्ता के हँसीले और लजीले मुखड़े को एकटक देखकर राजा तृप्त हो रहे हैं। नीले आकाश से पूर्ण-चन्द्र राजा और रानी के मधुर मिलन के इस दृश्य

को देखकर हँसी की किरणें पृथिवी पर फेंक रहा है। इतने में चिन्ता ने कहा—आर्यपुत्र ! इस पृथिवी में सुख कहाँ है ? मैं जिसको सुख समझती हूँ उसी से दूसरे को दुःख हो सकता है। मैं समझती हूँ कि इस कर्मभूमि पृथिवी में काम करके ही मनुष्य सुखी होते हैं। नाथ ! दया करके मुझे समझा दो कि मनुष्य-जीवन का कर्तव्य और सुख-दुख क्या है ?

श्रीवत्स ने चिन्ता की इस विचार-पूर्ण बात से बहुत प्रसन्न होकर कहा—"प्यारी ! तुम जन्म से विलास की गोद में पली हो। ऐसा गम्भीर विचार तुम्हारे चित्त में कैसे आया ?" चिन्ता चुप हो रही। श्रीवत्स ने कहा—प्यारी ! तुम अपने नाम को सार्थ करती हो। तुमने पृथिवी पर दया से एक नया राज्य क़ायम कर दिया है। तुमने मतवाले स्वामी को सोचने-विचारने की शिक्षा दी है। तुम धन्य हो और तुमसे अधिक धन्य मैं हूँ कि तुम्हारी जैसी देवी-मूर्त्ति का स्वामी हुआ। प्रिये! इस जगत् में भगवान् की विचित्र सृष्टि है। प्रभु की एक अपार शक्ति सब जगह फैली हुई है। जगत् की सब वस्तुएँ उसकी अपार दया और अपूर्व महिमा को प्रकट कर रही हैं। संसार की चरखी में घूमते हुए हम लोग प्रकृति देवी के उस महा-संगीत को नहीं सुनते। पक्षियों का कल-गान, वृक्षों के पत्तों का मर्मर-शब्द, वन-देवी की वन-वीणा की सुरीली तान इत्यादि सभी उस महासंगीत के सिर्फ़ झनकार हैं। हम लोग उसकी माधुरी को नहीं समझ सकते। जिन्होंने भगवान् को पहचाना है उन्हें तुच्छ धूल से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु तक में उस प्रभु की अनन्त महिमा दिखाई देती है। आज इस वसन्त की सुन्दर चाँदनी रात में, तुम्हारे पास बैठकर, मैंने जो ज्ञान पाया है वह अपूर्व है—उसका अन्त नहीं है। रानी ! जो लोग संसारी हैं वे समझते हैं कि पृथिवी में सुख नहीं

है किन्तु भगवान् के इस सुख से भरे राज्य में सुख की ही बहार है। चारों ओर आनन्द और तृप्ति है, किन्तु मनुष्य अपने कर्मों के दोष से सुखी नहीं हो सकता और पृथिवी को भी दुःखों से भरी देखकर आँसू बहाता है। प्रिये! कर्मभूमि पृथिवी पर अपना कर्तव्य पालने में ही सुख है। जो अपना कर्तव्य पालते हैं उन्हीं भाग्यवानों के लिए पृथिवी का सारा आनन्द है; निराशा या दूसरी कोई बाधा उनके पास नहीं फटकने पाती। हम लोग इस मर्म को नहीं समझते, इसी से इतना कष्ट पाते हैं। भगवान् में प्रीति करना, आत्मज्ञान को पाने का उपाय करना और जीवों पर दया करना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। इस शान्त, शीतल रात में तुमने मुझे जो सबक़ दिया है उससे मैं एक मधुर भाव में डूब गया हूँ। मेरी प्रार्थना है कि तुम भगवान् की अपार कृपा को पा जाओ और आर्य स्त्री का गौरव-पूर्ण आदर्श-स्थल हो जाओ।

चिन्ता ने स्वामी के मुँह से यह बात सुनकर सिर नीचा कर लिया। उसने कुछ देर में कहा—"नाथ! मैं अशिक्षित हूँ। मैंने कुछ नहीं सीखा है। पिता के अटूट धन-दौलत और लाड़-चाव में पलकर मैं उचित शिक्षा नहीं पा सकी। आप देवता हैं, मेरी अज्ञानता को दूर कर दें; हृदय में ऐसा बल दें कि जिससे दुःख या कष्ट आकर कभी मुझे कातर न बना सकें—मैं स्त्री होकर स्त्रीत्व को बनाये रख सकूँ। नाथ! बालपन में पिता के घर सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि कितनी ही पवित्र स्त्रियों का जीवन-चरित्र मैंने सुना था। मैं ख़ूब जानती हूँ कि कठिन दुःख में पड़ने पर भी उन्होंने हृदय की दृढ़ शक्ति से किस प्रकार दुःख के ग्रास से छुटकारा पाया और उन्होंने शान्ति की गोद में किस प्रकार आसरा लिया था; मैं यह भी जानती हूँ कि पातिव्रत के बल से वे किस प्रकार आदर्श सती

हो गई हैं; किन्तु यह नहीं जानती कि इस पृथिवी पर मैं आगे कैसे बढ़ूँगी। शास्त्र में कहा है—'स्वामी ही स्त्री-जाति के सर्वस्व हैं, स्वामी ही प्रेम के प्रत्यक्ष देवता हैं, स्वामी ही शिक्षा-दीक्षा में उसके गुरु हैं। हे जीवन के सर्वस्व! दया करके आर्य-स्त्री के बड़प्पन के रास्ते पर आगे बढ़ने के लिए मुझे योग्य शिक्षा दीजिए।

चिन्ता के मुँह से यह बात सुनकर राजा श्रीवत्स बहुत सुखी हुए। उनका हृदय आनन्द से उछल पड़ा। उन्होंने सोचा, इन्द्र के इन्द्रत्व में जो सुख नहीं है वह सुख मेरे राज-परिवार में है। नारी ही साक्षात् देवी है। मेरा राज्य पवित्र स्त्री के प्रेम और कोमल मधुर भाव से पूर्ण है। मैं धन्य हूँ जो मुझे ऐसी पतिप्राण-पत्नी मिली है। इस प्रकार सोचकर राजा ने चिन्ता से कहा—रानी! तुम अशिक्षिता कैसे हो? पुस्तकें पढ़ने से ही कुछ शिक्षा नहीं होती। असल में हृदय की उन्नति ही शिक्षा है। तुमने बचपन में अपने माता-पिता से जो शिक्षा पाई है वह बहुत ऊँची है। तुम्हारे हृदय में अनन्त ज्ञान है। तुमको और कुछ शिक्षा देने की ताक़त मुझमें नहीं है। न्याय के कठिन विचार में भी मैं तुम्हारी ही सलाह लेता हूँ।

इस प्रकार बातचीत करते-करते सबेरा होने का लक्षण दिखाई दिया। पूर्व दिशा में ललाई छा गई। चिड़ियाँ घोंसलों से निकलकर पेड़ों पर चहचहाने लगीं। दूर मन्दिर से तड़के की आरती का शब्द सुनाई देने लगा। राजा और रानी दोनों, भजन-पूजन आदि करने के लिए पूजाघर को चले।

[५]

एक दिन स्वर्ग में शनि के साथ लक्ष्मी का झगड़ा हुआ। झगड़े की बात यह थी कि 'दोनों में बड़ा कौन है'। शनि कहते 'मैं बड़ा हूँ,' और लक्ष्मी कहती 'मैं बड़ी हूँ'। देवताओं की सभा में इसका

फ़ैसला न होते देखकर शनि ने कहा—"चलो, प्रागदेश में श्रीवत्स नाम के एक बड़े धर्मात्मा राजा हैं, उनसे हम इसका फ़ैसला करा लावें।" लक्ष्मी ने सोचा कि 'जो राजा न्याय की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं, जो धर्म के एक आधार हैं उनको भी शनि का मुँह देखना पड़ेगा !' किन्तु अपनी मर्यादा के मोह से उन्होंने उस पवित्र-हृदयवाले राजा के भविष्य का ख़याल नहीं किया। सोचा—भाल लिखी लिपि को सक टार ?

राजा श्रीवत्स राज-दरबार में न्याय के काम में लगे हैं। सभासद लोग राजा के गहरे शास्त्र-ज्ञान और न्याय के विषय में चर्चा कर रहे हैं। इतने में लक्ष्मी और शनि राज-दरबार में हाज़िर हुए।

राजा ने स्वर्ग-लोक-वासिनी लक्ष्मी को और सूर्य के पुत्र शनैश्चर को अचानक राज-दरबार में आते देखकर उनका यथायोग्य आदर किया। फिर अचरज से पूछा—"आप लोग स्वर्गधाम छोड़कर किस मतलब से धरती पर आये हैं?" शनि ने कहा—हम दोनों में इस बात पर झगड़ा छिड़ गया है कि 'कौन बड़ा है,' तुमसे इसका फ़ैसला होने की आशा करके हम लोग तुम्हारे पास आये हैं। तुम इसका वाजिब फ़ैसला कर दो।

श्रीवत्स—देव ! देवताओं का फ़ैसला और मनुष्य करे ! यह तो अनहोनी बात है।

शनि—राजा ! शक्तिमान् मनुष्य देवता से कम कैसे हैं ? तुममें यह शक्ति है इसलिए हम लोगों का विश्वास है कि तुम्हीं हम लोगों का फ़ैसला कर सकोगे।

श्रीवत्स—देव ! यह पहेली मेरी समझ में नहीं आती। देवताओं का फ़ैसला मनुष्य कैसे करेगा ? क्षुद्र-ज्ञानवाला मनुष्य देवता के देवत्व को कैसे जानेगा ?

शनि—श्रीवत्स ! चिन्ता मत करो। तुम बड़े भाग्यवान् हो। ज्ञानवती शक्तिवाली नारी तुम्हारे हृदय की अधिष्ठात्री देवी है। तुम इस पति-परायणा के स्वामी होकर एक नये जगत् के राजा हुए हो। तुममें देवत्व आ गया है। शक्तिमयी नारी के सतीत्व के प्रभाव से तुम देवता-से हो गये हो।

शनि की बात सुनकर राजा श्रीवत्स ने बड़े अचरज से कहा—देव ! इस चक्करदार मामले का फ़ैसला मैं अभी चटपट नहीं कर सकता। आज मुझे अच्छी तरह सोचने-विचारने के लिए मुहलत दीजिए। दया करके आज आप लोग इस दीन की कुटी में ठहरिए। कल मैं इसका उत्तर देने की कोशिश करूँगा।

शनि—यही सही, किन्तु आज तो हम लोग स्वर्ग को जाते हैं। तुम्हारे मेहमान नहीं हो सकते।

श्रीवत्स—हे छाया के पुत्र ! हे समुद्र की बेटी ! यह मैं जानता हूँ कि दुःखों से लदी इस पृथिवी पर देवता नहीं रहते, किन्तु देवताओं के लिए सत्-असत् और ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं होना चाहिए। भक्तों से ही उनकी मर्यादा बढ़ती है। भक्त के चढ़ाये मामूली फूल, स्वर्ग के खिले हुए पुष्प की बराबरी से, देवता के चरणों में स्थान पाते हैं।

शनि—श्रीवत्स ! तुम्हारी इस दीनता और सज्जनता को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ किन्तु न्याय करनेवाले के घर फ़ैसला करानेवाले का पहुनई करना बेजा है; क्योंकि साथ रहने और पहचान हो जाने से पक्षपात आ जाता है। इसलिए मेहमानदारी को मंज़ूर न करने से मन में बुरा न मानना।

तब लक्ष्मी ने कहा—श्रीवत्स ! पहुनई को स्वीकार न करने से दुःख मत मानना। सूर्य के पुत्र शनि ने जो कुछ कहा है वह सत्य

है। हमें इस समय अपने-अपने लोकों को जाने दो कल सबेरे फिर तुम्हारे यहाँ आना है।

राजा श्रीवत्स बड़े संकट में पड़े। देवता-देवता में झगड़ा है और मनुष्य बनाया गया है उस झगड़े का फ़ैसला करनेवाला! बड़ी झंझट है! यही सोचते-सोचते, दरबार को बरख़ास्त कर, राजा महल में गये।

[६]

चिन्ता ने राजा के मुख पर किसी गहरी चिन्ता की छाया देखकर आतुरता भरे स्वर में पूछा—नाथ! आज आपको इतना उदास क्यों देखती हूँ? आप महल में आकर प्रसन्न मन से कुछ बोलते नहीं हैं। माथे पर गहरी चिन्ता की रेखा पड़ी हुई है; कामदेव के धनुष को मात करनेवाली ये भौंहें तनी हुई हैं; नीले कमल से नेत्रों की दृष्टि बेठिकाने है। नाथ! यह अनर्थ की सूचना क्यों देख पड़ती है? आपकी प्रजा किसी आधि-व्याधि से पीड़ित तो नहीं है? राज्य पर किसी शत्रु ने चढ़ाई तो नहीं की है?

श्रीवत्स—देवि! यद्यपि इस समय कोई अनिष्ट नहीं हुआ है तो भी ऐसा जान पड़ता है कि भयावना अभाग्य मुँह फैलाकर हमारे राज्य को और उसके साथ-साथ हमें-तुम्हें दोनों को निगल जाने के लिए तैयार है। देवी! मुझे भविष्य नहीं सूझता।

श्रीवत्स ने चिन्ता देवी से सब हाल कह सुनाया। सब सुनकर चिन्ता ने राजा से कहा—स्वामी! इस मामूली सी बात के फ़ैसले के लिए आप इतना क्यों घबरा गये? फ़िक्र छोड़िए, मैं इसका समाधान कर दूँगी।

राजा ने अचरज कर कहा—रानी! तुम कहती क्या हो? मेरे बड़े-बड़े मंत्री जिस नाज़ुक मामले के फ़ैसले का रास्ता नहीं

निकाल सके, सैकड़ों मुसाहब जिस उलझन में सिर पर हाथ धर-कर सोचते रह गये—यहाँ तक कि मैं भी इतनी देर सोच करके जिस मसले को हल नहीं कर सका—उसका फ़ैसला महल में रहने-वाली तुम कैसे कर सकोगी ?

चिन्ता—नाथ ! यह तो मामूली बात है। इसका फ़ैसला करना कुछ मुश्किल नहीं। समय बहुत बीत गया। आप नहाकर भोजन करें। आप विश्वास रक्खें, मैं इसका फ़ैसला कर दूँगी।

राजा की छाती से एक भारी बोझ-सा उतर गया।

खान-पान से छुट्टी पाकर राजा पलँग पर लेटे हुए हैं। चिन्ता रानी पैरों की ओर बैठकर पङ्खा झल रही हैं। इतने में राजा ने कहा—प्यारी ! तुम इस नाजुक मामले का फ़ैसला कैसे करोगी ? कुछ मेरी समझ में नहीं आता। मुझे हर घड़ी इसी का ध्यान है। तुम अब बताकर मेरे चित्त को शान्त करो।

चिन्ता ने कहा—स्वामी! आप इतनी फ़िक्र क्यों करते हैं ? आपको कुछ भी कहना नहीं पड़ेगा। देवता लोग अपना निर्णय आप ही कर लेंगे। कल, शनि और लक्ष्मी के आने से पहले ही आप अपने सिंहासन के दाहिनी ओर एक सोने का और बाईं ओर एक चाँदी का सिंहासन रखवा दीजिएगा। शनि और लक्ष्मी के हाथ से ही फ़ैसला हो जावेगा। उनमें जो बड़ा होगा वही बड़प्पन के क़ीमती आसन पर बैठेगा। आपको कुछ बोलना भी नहीं पड़ेगा; क्योंकि इज़्ज़त आप सबको अपना आसन दिखा देती है। फिर वे तो देवता हैं।

राजा ने चिन्ता की यह चतुराई की बात सुनकर प्रसन्नता से कहा—देवी ! मेरे हृदय-राज्य की रानी ! तुम साक्षात् मीमांसा हो या मेरे पूर्वजन्म के पुण्य तुम्हारी सूरत में मेरी सहायता कर रहे हैं !

आज तुमने मानवी रूप से, प्रेम-पूर्ण हाथ से मेरे संकट को दूर कर दिया और तुमने मुझे प्रेम-पूर्ण नये राज्य का राजा बना दिया।

चिन्ता ने मुसकुराकर कहा—अभी यह पण्डिताई रहने दीजिए। इसमें बहुत कुछ सोचने-समझने की बात है। आप सहज में इसमें छुटकारा नहीं पावेंगे। अपनी इज़्ज़त के भूखे देवता इस झगड़े का फ़ैसला अपने आप कर तो लेंगे परन्तु उनमें से जो लोगों के सामने लज्जित होगा—जिसे नीचा देखना पड़ेगा—उसका भयङ्कर कोप आपके ऊपर अवश्य होगा। सर्वनाश मानो आज देवी-देवता का रूप धरकर तुम्हारे सामने खेल रहा है! किन्तु इस समय उसके सोचने की ज़रूरत नहीं।

राजा को यह सुनकर बहुत फ़िक्र हुई। वह मुलायम सफ़ेद शय्या उनको काँटे-सी गड़ने लगी। दयारूपिणी चिन्ता देवी के झलते हुए पंखे की मधुर बयार गरम लू के समान मालूम होने लगी। हारे हुए देवता के रोष की कल्पना करके वे घबरा उठे।

प्रेम में चतुर चिन्ता देवी ने राजा की कातरता को समझकर कहा—राजन्! खेद छोड़िए। आफ़त में अधीर होना आपके ऐसे स्थिर-बुद्धिवाले पुरुष के लिए कभी उचित नहीं है। आफ़त में घबरा जाने से वह मनुष्य को और भी जकड़ लेती है। दुःखों से जलती हुई इस धरती पर धीरज का हथियार लेकर मनुष्य को आफ़त का सामना करना पड़ेगा। आप राजा हैं, प्रजा के प्रत्यक्ष देवता हैं, देश के मङ्गल हैं और साधु के आदर्श हैं। होनहार के ख़याल से अधीर होना आपको लाज़िम नहीं। विधाता ने जो लिख दिया है वह तो होगा ही। होतव्यता के साथ लड़ने की शक्ति मनुष्य में नहीं है; क्योंकि मनुष्य तो कर्म के फल का दास है। प्रत्येक काम मनुष्य के पूर्व जन्म के कर्मफल की सिर्फ़ सूचना है।

राजा ने चिन्ता देवी की मङ्गलभरी बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता से कहा—चिन्ता! तुम मनुष्य नहीं, तुम तो साक्षात् देवी हो। तुम माया से अशुद्ध इस पृथिवी में तत्त्वज्ञान की अपूर्ण माधुरी लिये हुए शोभा पा रही हो। मेरा बहुत पुण्य था। उसी पुण्य के फल से तुम्हारे समान ज्ञानमयी सौभाग्य-लक्ष्मी को पाकर धन्य हुआ हूँ।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। जगत् के पति ने प्रकृति के माथे में सेंदुर लगा दिया। फूलों ने सुगन्ध का झरना खोल दिया। पखेरू सन्ध्या समय का भजन करने लगे। मन्दिरों में आरती के घण्टे बजने लगे।

[७]

राजा ने सबेरे उठकर प्रातःकाल की प्रकृति की बाँकी शोभा में भी कुछ कमी सी पाई। प्रकृति की इस नई रङ्ग-भूमि पर मानो सब कुछ उनको बेसुरा मालूम होने लगा।

धीरे-धीरे दिन चढ़ा। राजसी पोशाक पहनकर श्रीवत्स राज-दरबार में आये। राजा के सिंहासन की दाहिनी ओर एक सोने का और बाईं ओर चाँदी का सिंहासन रक्खा गया। बीच में अपने सिंहासन पर, राजा श्रीवत्स रानी के साथ बैठकर राज-कार्य देखने लगे।

इतने में वहाँ शनि और लक्ष्मी का आगमन हुआ। उनको देखकर रानी और राजा सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये। नम्रता से दोनों को प्रणाम कर उन्होंने उनसे बैठने के लिए कहा। शनि अपनी इच्छा से राजसिंहासन के बायें भाग में चाँदी के सिंहासन पर, और लक्ष्मी दाहिने भाग में सोने के सिंहासन पर बैठ गईं। राजा और रानी क्रम से शनि और लक्ष्मी के पास खड़े होकर उनकी सेवा करने लगे।

बहुतसी बातचीत हो चुकने पर शनि ने कहा—महाराज! तुम्हारी आव-भगत से हम बहुत प्रसन्न हुए। आशा है, अब हम लोगों के झगड़े का तुम फ़ैसला कर दोगे।

श्रीवत्स का मुँह सूख गया। भयानक विपद् की शङ्का से उनके मुँह से बात न निकली। तब शनि ने फिर कहा—क्यों महाराज, इस बात का कुछ उत्तर क्यों नहीं देते? कल तुमने आज फ़ैसला कर देने का वादा किया था, अब अपनी वह प्रतिज्ञा पूरी करो।

राजा ने समझा कि सत्यानाश सिर पर आ गया, सुख की गृहस्थी में आग लग गई, अब सोचने-विचारने का मौक़ा नहीं है। उन्होंने कहा—देव! भला देवता का विचार मनुष्य क्या करेगा! मनुष्य में इतनी शक्ति कहाँ? जो हो, जब आप लोगों ने मुझे वह अधिकार दिया ही है, तब मेरी राय में यह आता है—आप लोग ही विचार कीजिए कि आप लोगों में कौन बड़ा है।

शनि—महाराज! चतुराई से काम नहीं होगा। तुम्हारी वचन-चातुरी को परखने के लिए हम लोग यहाँ नहीं आये हैं। जो तुम इसका समाधान नहीं कर सकते थे तो तुमने पहले ही से साफ़-साफ़ क्यों न कह दिया। कल से इतनी बातें क्यों बना रहे हो?

शनि की बात सुनकर श्रीवत्स चौंक पड़े। वे समझ गये कि मेरी इस दीनता से अपनी इज़्ज़त चाहनेवाले शनैश्चर प्रसन्न होने के नहीं। अब राजा ने विनती कर कहा—हे सूर्य के पुत्र! यह विशाल जगत् प्रीति के एक गुप्त आकर्षण से चल रहा है। यहाँ प्रीति का आकर्षण शासन की त्यौरी से कहीं बढ़कर ताक़त रखता है। इस संसार में जो प्रीति-दान दे सकता है वही बड़ा है। दबाव से मनुष्य वश में नहीं होता, प्रेम की छाया से ही मनुष्य धन्य होता है। अब आप ही विचार कीजिए कि आप लोगों में कौन बड़ा है।

श्रीवत्स की इस बात से शनि का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने और भी रुखाई से कहा—महाराज! हम लोग तुमसे इन्साफ़ कराने आये हैं। साफ़ बताओ कि शनि बड़े या लक्ष्मी।

श्रीवत्स—देव! इस विषय का फ़ैसला आप लोगों ने स्वयं कर लिया है। आप लोग अगर अपने-अपने आसन की ओर ध्यान दें तो समझ जायँगे कि आप लोगों में कौन बड़ा है।

शनि—महाराज! हम लोग तुम्हारे राज-दरबार में मेहमान के माफ़िक़ आये हैं। तुम्हारे दिये आसन पर हम लोग अपनी इच्छा से बैठ गये हैं इससे इस बात का फ़ैसला नहीं हो सकता कि कौन बड़ा है और कौन छोटा। तुम खोलकर साफ़-साफ़ बताओ।

श्रीवत्स—देव! मामूली ढँग पर रहन-सहन, और आसन-भेद से बड़े-छोटे का विचार होता है। जो बड़ा होता है उसका आसन भी क़ीमती और दाहिनी ओर होता है। आपने लक्ष्मी को सुनहले आसन पर अपनी दाहिनी ओर स्थान दिया है। इसलिए, अब इसका विचार मैं क्या करूँगा? जगत् का धर्म ही यह है कि अपने से ऊँचे के आगे सब लोग सिर नवाते हैं। बर्फ़ का मुकुट पहननेवाला हिमाचल भी अनन्त महिमावाले भगवान् के सामने प्रणाम के बहाने सिर झुकाये हुए है। ऊँचा पेड़ भी भारी पहाड़ के सामने झुका हुआ है। वनस्पतियाँ भी विकट पर्वत के आगे सिर झुकाये हैं।

श्रीवत्स की इस विनती से भी शनि सन्तुष्ट नहीं हो सके। उन्होंने सिंह की तरह गरजकर कहा—महाराज! मैं तुम्हारी चालाकी के फ़ैसले को समझ गया। घुमा-फिराकर मेरा अपमान करना ही तुम्हारी इस चालाकी का असल मतलब है। अच्छा, देखा जायगा। तुम अपनी रक्षा कैसे करते हो। जानते हो महाराज! मेरी इच्छा से सुख के मन्दिर में हाहाकार मच जाता है; विलास की फुलवाड़ी मरघट

बन जाती है। तुमने जैसा मेरा अपमान किया है, वैसा ही व्यवहार मैं तुम्हारे साथ करूँगा। महाराज! ठीक समझना कि मेरी नज़र तुम्हारे ऊपर पूरे तौर से पड़ेगी।

तब लक्ष्मी ने कोमल स्वर से कहा—"श्रीवत्स! कोई चिन्ता न करना। मैं तुम्हारे जीवन में सदा साथ रहूँगी। सुख में, दुःख में और कर्त्तव्य में, ध्यान को स्थिर रखना। फिर तो अशान्ति तुम्हारा बाल भी बाँका न कर पावेगी।" फिर उन्होंने प्रेम से रानी चिन्ता की ठुड्डी पर हाथ रखकर कहा—बेटी! तुम धन्य हो। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा व्रत पूरा हो। स्वामी के जीवन को मङ्गल के रास्ते ले जाने में तुम्हारे उपाय सफल हों। आज तुम लोगों ने मुझे प्रीति के जिस बन्धन में बाँधा है वह किसी तरह नहीं टूटेगा।

चिन्ता ने कहा—माता! विपदाओं से भरी पृथिवी पर मनुष्य माया-मोह के भँवर में गोते खाया करते हैं। इसमें कोई सहाय है तो वह देवताओं का पवित्र आशीर्वाद है। माँ! आशीर्वाद दो कि हम देवता के चरणों में विश्वास रखकर चल सकें। सुख या दुःख तो कुछ भी नहीं है। वह केवल समझ का फेर है। ऐसा आशीर्वाद दो कि सुख से प्राण न तो फूल ही उठे और न दुःख से गड़बड़ हो जाय। यही प्रार्थना है कि संसार-सागर में दुर्दशा का अन्धकार जब रास्ता भुलाने को आवे तब तुम्हारे पवित्र चरण, ध्रुव-तारे की तरह, हम लोगों को रास्ता दिखावें।

"बेटी चिन्ता! वत्स श्रीवत्स! शोक छोड़ो। कर्मभूमि में कर्म की साधना ही बड़प्पन पाने का सबसे बढ़िया उपाय है। यही तुम लोगों के जीवन का मूल-मंत्र हो।" यह कहकर लक्ष्मी एकाएक गुप्त हो गईं।

लक्ष्मी और शनि के चले जाने पर राज-सभा में कुछ देर के लिए

सन्नाटा छा गया। ऐसा सन्नाटा कि सुई गिरने की आवाज़ भी सुन पड़े। अचानक सन्नाटे को तोड़कर राजा ने प्रधान मंत्री से कहा—मंत्रिवर! देखी आपने देवताओं की लीला? बताइए, अब क्या करें।

मंत्री—राजन्! सब बातों में भाग्य ही बलवान् है। भाग्य के साथ झगड़ने की शक्ति मनुष्य में नहीं है। आपके भाग्य में अगर शनि का भोग लिखा होगा तो उसे भोगना ही पड़ेगा। उसके लिए अब चिन्ता करने से क्या होगा?

सभा के सब लोग रानी चिन्ता की बुद्धि की तेज़ी और शनि तथा लक्ष्मी की बातें सोचते-सोचते घर गये।

उस दिन के लिए सभा का काम बन्द हुआ।

इतना बड़ा अनर्थ हो गया, परन्तु रानी को कुछ परवा नहीं। उन्होंने सोचा—दुख किस बात का है? मनुष्य के माथे में विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन मेट सकता है? उनके लिखे को तो भोगना ही पड़ेगा। इसके लिए हम लोगों को पहले ही से सावधान होना चाहिए। इसके लिए चिन्ता नहीं—बन्दोबस्त करना होगा—हृदय को बलवान् बनाना होगा। कर्तव्य के ज्ञान को सिर पर लेकर पृथिवी में सारी दिक़्क़तों के सामने खड़ा होना ही सच्ची वीरता है।

रानी की ऐसी स्थिरता और उनके पक्के इरादे को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि जब यह सती मेरी बग़ल में है तब जगत् के अपार कष्टों को मैं बिना चूँ किये गले लगा सकता हूँ।

[८]

उस वर्ष देश में कहीं अन्न नहीं उपजा। प्रजा भूखों मरने लगी। राजभाण्डार का अन्न प्रजा में बाँटा गया; किन्तु दूसरे वर्ष भी यही हाल रहा। तब, राजा ने बहुत कुछ ख़र्च करके दूसरे राज्यों से अन्न

मँगाकर भूखों मरती हुई प्रजा में बँटवाया। इससे प्रजा का बहुत कष्ट घटने तो लगा, किन्तु लगातार कई वर्ष वर्षा और उपज न होने से देश में भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। चोरों और डाकुओं का दल बना। जान बचाने के लिए, सब लोग अधर्म के विचार को ताक़ में रखकर दूसरों की चीज़ें चुराने लगे। राजा का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया। अब प्रजा भूखों मरने लगी। देश में ख़ून बरसने लगा। चारों ओर बुरे लक्षण नज़र आने लगे। देश रेगिस्तान बन गया। कहीं ज़रा भी छाया या शीतलता नहीं। चारों ओर ऐसा मालूम होता है कि कोई खाने को दौड़ता सा है। भूख के मारे लोग जोही सोही चीज़ें खाकर बीमार पड़ने लगे। देश में महामारी फैल गई। प्रजा बे-मौत मरने लगी।

देश की यह दशा देखकर राजा-रानी का हृदय शोक से भर गया। राजा ने कहा—रानी! यह दृश्य अब देखा नहीं जाता। पुत्र-समान प्रजा की यह मर्म को छेदनेवाली चिल्लाहट और देश का यह भयानक दृश्य मेरे कलेजे को बेध रहा है। देवी! किसी तरह यहाँ से निकल चलना ही ठीक है।

रानी—महाराज! मुझसे भी यह मरघट का सा भयावना दृश्य देखा नहीं जाता। कहिए, कहाँ चलने का विचार है?

राजा—रानी! मेरी इच्छा है कि तुम इस समय कुछ दिनों के लिए मायके चली जाओ। मैं जहाँ शान्ति पाऊँगा—नदी के किनारे मैदान या घने जंगल में—वहीं जाऊँगा। शनि की दृष्टि बारह वर्ष रहती है। बारह वर्ष पूरे होने पर मेरी दशा फिर पलटेगी। तब मैं देश को लौटूँगा। तब तक तुम नैहर में रहना। इस समय मेरे साथ रहकर कष्ट पाने की क्या ज़रूरत है?

रानी ने गिड़गिड़ाकर कहा—नहीं महाराज! यह नहीं होगा। स्वामी के सिवा स्त्री के लिए और कुछ सहारा नहीं है। मुझे आपके साथ वन-वन घूमने में कुछ भी कष्ट नहीं होगा। उदासी या थकावट के समय हम लोग एक-दूसरे के आसरे रहकर हृदय में बल पावेंगे। महाराज! मुझे वैसी आज्ञा मत दीजिए।

राजा—रानी! वन बड़ा बीहड़ होता है। वह कठिनाई से तय किया जाता और काँटों से भरा होता है। तुम उसमें चल नहीं सकोगी।

रानी—नहीं महाराज! वहाँ मुझे कुछ भी कष्ट नहीं होगा। उलटे, आपके छोड़ जाने से, मैं अधिक दुःख पाऊँगी। महाराज! क्या आप मुझे केवल सुख की संगिनी—वसन्त की कोयल—समझते हैं? आपका सुख ही मेरा सुख है और आपका दुःख ही मेरा दुःख है। क्या स्त्री का यही धर्म है कि सुख पाकर तो वह तृप्त हो और दुःख में साथ छोड़कर अधर्म बटोरे? राजन्! आप मुझे क्या इतनी खोटी समझते हैं? मैं तो जानती हूँ कि आप बड़े धर्मात्मा और विवेकी हैं; किन्तु राज्य की अवस्था बदलने के साथ-साथ क्या आपके मन का भाव भी बदल गया? नहीं तो, ऐसे प्रेम से भरे हृदय पर अनादर और रुखाई की छाया क्यों पड़ी? आप जिसको इतना प्यार करते हैं आज उसका इतना निरादर क्यों? महाराज! मैं कमसमझ स्त्री हूँ; अगर भूल से आपके साथ कोई बेजा बर्ताव किया हो तो क्षमा कीजिए। नाथ! मछली को पानी से बाहर निकालकर ख़ूब मुलायम राजगद्दी पर बिठा देने से क्या उसके साथ ठीक व्यवहार होगा? आप ज्ञान-गुरु बृहस्पति के समान हैं। भला आपसे मैं क्या कह सकती हूँ? फिर भी कहती हूँ कि मुझे नैहर जाने की आज्ञा मत दीजिए। स्वामी के साथ

छाया की तरह रहने में ही स्त्री का मान है। स्वामी के मेहनत करने से, जब पसीना आ जावे तब उसे आँचल की हवा से दूर करना स्त्री का काम है। दया करके मेरे उस सौभाग्य को और कर्तव्य के अधिकार को छीन न लीजिए।

राजा और कुछ नहीं कह सके। उन्होंने कहा—चिन्ता! मेरी प्राणप्यारी चिन्ता! तुम मेरे साथ चलो। तुम मेरे काम में साधना हो, निराशा के समय ढाढ़स हो, जीवन में प्रेम हो; तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें और कुछ नहीं कहूँगा। मैं समझ गया कि शक्ति के अंश से स्त्री उत्पन्न होती है, वह सुख के सरोवर में खिली हुई कमलिनी है और दुःखों के समुद्र में अकेली आश्रयरूपी नौका है।

कल्पित विरह के दुःख से रानी के मुख पर जो मलिनता आ गई थी वह दूर हो गई, उस पर फिर हँसी की झलक आ गई।

राजा ने कहा—रानी! यह शोक-दृश्य अब देखा नहीं जाता। चलो, आज ही हम लोग यहाँ से निकल चलें। कुछ धन-दौलत साथ में ले लें। साथ में धन रहने से कष्ट कुछ घट सकता है।

[६]

अँधेरी रात है। निद्रा देवी की गोद में पृथिवी सोई हुई है। चारों ओर सन्नाटा है। बीच-बीच में रात को घूमनेवाले दो-एक पक्षियों के पंखों की फरफराहट और नगर के बाहर मैदान में गीदड़ों का "हुआँ-हुआँ" शब्द उस सन्नाटे में बाधा डालता है। राजा और रानी दोनों, इसी समय, राजमहल से निकलकर नगर के बाहर आ गये। इस बात का निश्चय नहीं है कि कहाँ जायँगे, तो भी चल पड़े हैं। उस घने अन्धकार में राजा के सिर पर धन की एक गठरी है। रानी चिन्ता स्वामी का हाथ थामकर जा रही है। दोनों में किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकलती। राजा के

हृदय में अचरज है और रानी के हृदय में यह आशङ्का है कि न जाने आज भाग्य में क्या हो।

राजा और रानी ने अचानक नूपुरों की आवाज़ सुनी। इस जङ्गल के रास्ते में, इस अँधेरी रात में, किसके नूपुरों का शब्द है! राजा और रानी ने देखा कि एक बालिका स्वर्गीय किरण से रास्ते में उजेला किये उनके आगे-आगे जा रही है।

राजा ने पूछा—"माँ! तुम कौन हो? इस अँधेरी रात में, हम लोगों के रास्ते में, आगे-आगे रोशनी दिखाती चल रही हो?

वीणा को मात करनेवाले सुर में उत्तर मिला—श्रीवत्स! मैं लक्ष्मी हूँ। मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। इस अँधेरे में तुम लोग रास्ता भूलकर कष्ट पा रहे थे, इससे मैं रास्ता दिखाने आई हूँ।

श्रीवत्स—माँ, मैं सचमुच रास्ता भूल गया हूँ। माता! क्या मेरे जीवन का रास्ता सदा के लिए छूट गया?

लक्ष्मी—नहीं बेटा! तुम उस रास्ते को नहीं भूले। बगल में यह रोशनी की बत्ती है, यही तुमको रास्ता दिखावेगी; आशा को तोड़ो मत। कर्त्तव्य का पालन करते रहो, ग्रह-पीड़ा से घबरा जाना पुरुष का काम नहीं। होतव्यता के साथ झगड़ा करके मनुष्य को असाध्य साधन करना पड़ता है। तुम इस शक्तिमयी की सहायता से असाध्य (जो सिद्ध नहीं होता, उसे) साधने को तैयार हुए हो। बेटा! और तो क्या कहूँ, देवताओं की देवियाँ भी उत्सुकता से तुम्हारी इस साधना की सिद्धि देखने के लिए बाट जोह रही हैं। वत्स! निराश मत हो। ग्रह की पीड़ा को ब्रह्मा भी दूर नहीं कर सकते। तुमको बारह वर्ष तक यह कष्ट भोगना ही पड़ेगा। इसके लिए चिन्ता मत करना। हर घड़ी शुभ अवसर की बाट देखते रहना।

इतने में चन्द्रमा का उदय हुआ। अँधेरे पाख के चन्द्रमा की

पतलीसी किरण से हाट-बाट में उजेला हुआ। लक्ष्मी ने कहा—श्रीवत्स! चाँदनी हो गई। अब तुम लोगों को रास्ता दिखाई देता है। अब मैं जाती हूँ, किन्तु बेटा! सामने विकट उलझन है, सावधान रहना।

बस लक्ष्मी ग़ायब हो गई।

राजा और रानी ने उस लम्बे-चौड़े मैदान में जाते-जाते देखा कि सामने एक डरावनी नदी तरंगें मार रही है।

पार होने का कोई उपाय न देखकर राजा और रानी उदास मन से नदी-किनारे खड़े हैं। इतने में एक बूढ़ा-सा मल्लाह वहाँ झाँझरी नाव ले आया। राजा ने कहा—मल्लाह! क्या तुम हम लोगों को पार उतार दोगे?

मल्लाह—तुम, इस नदी के पार जाने की हिम्मत करते हो?

राजा—क्यों? क्या यह बात अनहोनी है? नदी पार तो सभी होते हैं। इसमें हिम्मत करने की बात ही क्या है?

"नदी पार तो सभी होते हैं, किन्तु भाग्य की नदी को क्या सब कोई पार कर सकते हैं?" यह कहकर मल्लाह गीत गाने लगा—'करम-गति टारेहु नाहिं टरे।'

राजा ने कहा—अजी मल्लाह! तुम तो बड़े ज्ञानी जँचते हो। हम लोग भटके हुए हैं, हर घड़ी सब बातें समझ में नहीं आतीं। इसी से ग़ोते खाते हैं।

मल्लाह—ग़ोते तो खा ही रहे हो। अब सोच काहे का? अगर नदी पार जाना चाहो तो तुरन्त आओ।

रत्नों की गठरी लिये हुए रानी के साथ राजा आगे बढ़े।

मल्लाह ने कहा—मेरी नाव टूटी हुई है। मुश्किल से दो



राजा-रानी उदास-मन से नदी-किनारे खड़े हैं। इतने में एक बूढ़ा सा मल्लाह, एक टूटी फूटी नाव लेकर वहाँ आया—पृ० २४६।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आदमियों को पार उतार सकता हूँ। जो तुम यह गठरी साथ ले चलोगे तो मेरी नाव डूब जायगी।

राजा--अच्छा मल्लाह! एक काम करो। तुम इस गठरी को पहले उस पार रख आओ; फिर लौटकर हम लोगों को ले चलना।

बूढ़े ने हँसकर कहा—यही सही।

राजा ने धन-रत्नों की गठरी बूढ़े के हाथ में दे दी। बूढ़ा मन ही मन ख़ुश होकर गुनगुनाता चला—'सुध-बुध सकल भुलानी।'

अचानक राजा ने देखा कि न वह नदी है, न नाव है, न वह मल्लाह है और न वह धन की गठरी ही है। पलक मारते-मारते सब ग़ायब। राजा के कानों में भनक पड़ी—करम-गति टारेहु नाहिं टरै।

तब राजा ने कहा—चिन्ता! सच समझो, यह बूढ़ा और कोई नहीं स्वयं शनि थे। माया फैलाकर, यत्न से बटोरे हुए, मेरे रत्नों को हर ले गये। अब उसके लिए फ़िक्र करना वृथा है। मैं भाग्य की हँसी उड़ाने चला था, किन्तु हँसी करने में वीरता नहीं है—वीरता साधना में है।

रानी ने कहा—पहले जो यह सोचा था कि धन-दौलत विपद को दूर करती है, सो वह बात ठीक नहीं निकली। अच्छा जाने दीजिए, भला ही हुआ। कोई उपाय होने से ही हृदय का बल बढ़ता है, हिम्मत आती है। प्राणनाथ! अब कहाँ जाइएगा?

राजा—कहाँ जाऊँ देवी! चलो, यह जो सामने वन की हरियाली दिखाई देती है उधर ही चलें।

रानी—चलिए महाराज! वन के ऐसी आराम की जगह कहीं नहीं है। वह कोमलता और मधुरता बड़ी सुखदायक होती है। भाव-रस में मन को आराम देती है। वह सुन्दरता तथा गम्भीरता में बहुत बढ़ कर है। चलिए नाथ! इसी वन में चलें।

[१०]

राजा और रानी कुछ दूर आगे जाकर, वन में पहुँचे। उन्होंने देखा कि वह वन तरह-तरह के फलदार वृक्षों से पूर्ण है। भूखे श्रीवत्स जङ्गली फलों को बटोरकर एक नदी के किनारे पहुँचे। उन फलों को खाकर तथा नदी के निर्मल जल को पीकर वे कुछ ठण्ढे हुए। रानी चिन्ता ने भी स्वामी की आज्ञा से कुछ जङ्गली फल खाकर पानी पिया। इस प्रकार, वे कुछ स्वस्थ और शान्त होकर बातचीत करने लगे। रानी ने कहा—महाराज! भगवान् का दान अनन्त है, भाग्य का विचार उनके सामने नहीं है। जगत्-पति ने जीवों के लिए दया की अनन्त धारा बहा रक्खी है। उन्होंने अपने बनाये हुए मीठे फलों को, नदियों के नीर को, हवा के झोकों को, नीले आकाश की निर्मलता को, फूलों की सुगन्ध को और चिड़ियों की चहक को—सब जीवों के लिए, समभाव से, बाहर लूटने योग्य बना दिया है, लेकिन जीव, सब समय, उसे भोगकर अपनी ग्लानि को दूर करनें नहीं पाता। यह उसका भाग्य है। उस भाग्य के बनाने-वाले वे नहीं हैं—कोई और है। महाराज! धिक्कार है हम लोगों को कि जगत्-पिता के मङ्गल-युक्त काम में दोष लगाकर अपने पाप का बोझ बढ़ाते हैं।

राजा—रानी! तुम में ज्ञान ख़ूब है। मैं इस विषय में तुमको अधिक क्या समझाऊँगा। इस असार संसार में माया के बन्धन से मनुष्य सदा व्याकुल रहते हैं। इसी से वे अक्सर जगदीश्वर की निन्दा करते हैं। कर्म-फल से ही भाग्य बनता है। उस भाग्य का विधाता, घट-घट में समाये हुए अनन्त का अंशमात्र है।

रानी—महाराज! आपकी बातों से मुझे सब विषयों में अच्छा

के न पतियाने और क्रोध करने का ख़याल करके वह बहुत घबराई। सोचने लगी कि यह सब शनि की चालें हैं। जो हो, सत्य के रास्ते में मनुष्य को विपद नहीं है।

रानी ने व्याकुल चित्त से राजा के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। सुनकर राजा ने कहा—रानी! इसके लिए चिन्ता करने की क्या ज़रूरत? यह सभी, इस अभागे के साथ, निठुर देवता की दिल्लगी है! नहीं तो कहीं भुनी मछली जीकर भागी है? कहीं भयानक बाढ़वाली नदी को नाव और मल्लाह सहित ग़ायब होते देखा है! जो हो, सोच मत करो। अगर तुम मेरे हृदय को पहचानती हो तो खेद करना छोड़ो।

स्वामी के न पतियाने के ख़याल से सती का हृदय व्याकुल था। जब उन्होंने ऐसी बात कही तब रानी ने पुलकित होकर भूखे स्वामी के भोजन के लिए कुछ फल-मूल ला दिया। राजा-रानी दोनों एक जगह बैठकर बातचीत कर रहे हैं। इतने में एक बूढ़ा लकड़हारा आया। उसने प्रणाम कर कहा—क्यों महाशय! आप इतना कष्ट क्यों पा रहे हैं। चलिए, हम लोगों के साथ लकड़ी चुनकर बाज़ार में बेचा कीजिए। तब आप लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा।

राजा ने रानी से कहा—"यह सलाह तो बुरी नहीं है।" लकड़ियों का बोझ सिर पर रखकर राजा बाज़ार में बेचने जायँगे, यह सुनकर रानी की छाती टूक-टूक हो फटने लगी। रानी कुछ कह नहीं सकी। राजा ने कहा—देवी! मैं तुम्हारे मन का भाव समझ गया, किन्तु रानी! इस संसार में मनुष्य धन-दौलत लेकर नहीं आया है। जाते समय भी वह कुछ ले नहीं जायगा। पृथिवी का जो कुछ ऐश्वर्य है, जो कुछ धन-दौलत है, सब अन्त को यहीं पड़ा रहेगा। इस पृथिवी पर आने के पवित्र दिन में, प्रेम-मय परमेश्वर से मनुष्य जो

प्रीति लाया था कर्मभूमि में उसी प्रीति को घटा-बढ़ाकर वह साथ ले जायगा। देवी! फिर इतना अभिमान और इतना संकोच क्यों? जगत्-पिता ने मुझे यह परिश्रमी शरीर और मन दिया है। यहाँ मेहनत करके जीविका चलाने में दोष नहीं है, बल्कि इसी में बड़प्पन है।

रानी ने आँसू पोंछकर कहा—राजन्! मैं सब समझती हूँ। फिर भी महाराज, मन नहीं मानता। हृदय व्याकुल होकर शोक की धारा बहाता है। क्षमा कीजिए महाराज! भूखों भले ही मर जाऊँगी, परन्तु आपको इतना छोटा काम न करने दूँगी।

राजा—रानी! उतावली मत हो। इससे मुझको कुछ कष्ट नहीं होगा। मैं तुमको पाकर शक्ति पा गया हूँ। मेरे हृदय में बड़ा बल आ गया है। देवी! तुम्हारे प्रेम का कभी न टूटनेवाला कवच मुझे सदा जितावेगा, तुम बेफ़िक्र रहो।

रानी को समझा-बुझाकर राजा बूढ़े लकड़हारे के साथ वन में गये। वहाँ देखा कि वन में बहुतसे चन्दन के वृक्ष लगे हैं। राजा चन्दन की कुछ लकड़ियाँ चुनकर बाज़ार में ले जाते और साथ के लकड़हारों से अधिक दाम पाते। इस तरह कुछ दिन में राजा के पास कुछ रक़म जमा हो गई।

एक दिन रानी ने कहा—"महाराज! आपने लकड़ियाँ बेचकर जो पैसा पाया है वह ज़रूरी ख़र्च से कुछ बच गया है। आपकी आज्ञा हो तो उससे एक दिन सब लकड़हारों और उनकी स्त्रियों को भोजन कराऊँ।" राजा ने ख़ुशी से मंज़ूर कर लिया।

रानी ने राजा से कुल सामान मँगवाया। राजा सब तैयारी करके लकड़हारों को मय जन-बच्चों के न्योता दे आये। लकड़हारों की ख़ुशी का ठिकाना नहीं है। अब तक वे रानी को केवल 'माँजी-

माँजी' कहकर प्रसन्न होते थे। आज, माता के दिये हुए प्रसाद को पाने की इच्छा से, वे अत्यन्त पुलकित होकर राजा की कुटी में आये और अनेक कामों में उनका साथ देने लगे।

रानी चिन्ता ने तरह-तरह की रसोई बनाई। न्यौते हुए लकड़हारे स्त्री, पुरुष, बालक आदि ठीक वक्त पर भोजन करने बैठे। राजा पास खड़े होकर देखने लगे। चिन्ता साक्षात् अन्नपूर्णा होकर परोसने लगी।

राजा और रानी ने, उस विजन वन में, आनन्द की गृहस्थी बना ली। अब उनको कुछ कष्ट नहीं है। उन सीधे-सादे लकड़हारों का पड़ोस मिलने से राजा का जीवन आनन्द से कटने लगा, किन्तु राजा-रानी का यह सुख शनि देवता से देखा नहीं गया।

[११]

राजा-रानी जहाँ रहते थे उसके पास ही एक छोटीसी नदी थी। बहुतसे सौदागरों की नावें, उस नदी के रास्ते, देशावर को व्यापार करने आया-जाया करतीं। एक दिन एक सौदागर उसी नदी से जा रहा था। अचानक उसकी नाव रेती में अटक गई। सौदागर ने बड़ी-बड़ी कोशिशें कीं; डाँड़ खेनेवाले मल्लाहों ने पानी में उतरकर नाव को ठेलने के लिए बहुत ज़ोर मारा पर नाव किसी तरह नहीं टसकी। इस तरह एक दिन, दो दिन, तीन दिन करके बहुत दिन बीत गये। सौदागर सोचने लगा, यह नाव कैसे चलेगी, किस प्रकार इस विपत्ति से उद्धार होगा।

एक दिन, एक बूढ़ा ब्राह्मण बग़ल में पोथी दबाये और हाथ में छड़ी लिये उस सौदागर के पास आकर बोला—"अजी सौदागर! मैं ज्योतिषी हूँ; मैं बता सकता हूँ कि तुम्हारी नाव कैसे चलेगी।" सौदागर बहुत ख़ुश हुआ। उसने कहा—बाबाजी! अगर आप कृपा

करके मेरी नाव चलने का उपाय बता दें तो मैं आपको बहुत धन दूँगा।

बूढ़े ज्योतिषी ने कहा—देखो भैया! पास ही लकड़हारों का एक गाँव है। उस गाँव में एक सती स्त्री है। वह इस नाव को छू दे तो यह तुरन्त चलने लगे। तुम्हारी नाव और किसी तरह नहीं चलेगी।

यह सुनकर सौदागर .खुश हुआ। उसने ज्योतिषी को बहुतसा रुपया देकर बिदा किया।

सौदागर ने सोचा कि लकड़हारों के गाँव में बहुतेरी स्त्रियाँ हैं। यह पता लगाना बड़ा कठिन है कि उनमें कौन सती है। उसने उसी दिन उस गाँव की स्त्रियों को न्यौता देने के लिए एक आदमी भेजा।

इसके पहले एक दिन लकड़हारे लोग रानी के न्यौते में राजसी भोजन पाकर तृप्त हुए थे। आज सौदागर के न्यौते को पाकर बड़ी .खुशी से न्यौता मानकर वे सौदागर की नाव पर पहुँचे, परन्तु नाव किसी भी तरह नहीं चली। सौदागर ने फ़िक्र करके जो आदमी न्यौता देने गया था उससे पूछा—"क्या तुमने लकड़हारों की सब स्त्रियों को न्यौता दिया था?" उसने विनती कर कहा—हाँ, महाशय! मैंने सबको न्यौता दिया था। केवल एक स्त्री ने न्यौता नहीं लिया। उसने कहा कि बेटा! मेरे स्वामी इस समय बाज़ार में लकड़ी बेचने गये हैं। उनकी आज्ञा बिना मैं तुम्हारा न्यौता कैसे ले सकती हूँ? सिर्फ़ उसी ने न्यौता नहीं लिया।

सौदागर ने सोचा कि हो न हो वही स्त्री सती है। उसी के छूने से मेरी नाव चलेगी। यह सोचकर वह तुरन्त नाव से उतरकर उस नौकर के साथ श्रीवत्स की कुटी के पास पहुँचा। चिन्ता ने, दोनों अतिथियों के सत्कार के लिए आसन और हाथ-मुँह धोने को

पानी दिया। सौदागर ने उस सती को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—देवी! मैं बड़ी विपत्ति में फँस गया हूँ। मेरी नाव इस नदी की रेती में अटक गई है। एक पखवारा हो गया, मैं यहाँ बड़ा कष्ट पा रहा हूँ। आज एक ज्योतिषी कह गये हैं कि आप उस नाव को छू देंगी तभी वह नाव चलेगी; नहीं तो नहीं। माताजी! एक बार चलकर मेरी नाव को छू दीजिए।

रानी ने कहा—आपके कहने से मुझे अभी वहाँ जाकर आपकी विपद दूर करना चाहिए, किन्तु महाशय! स्वामी की आज्ञा बिना मैं कैसे जा सकती हूँ?

सौदागर ने कहा—माताराम! हम इतने आदमी इतने दिन से कष्ट पा रहे हैं,यह सुनकर भी आपके मन में दया नहीं आती?

चिन्ता और कुछ नहीं कह सकीं। माता का सम्बोधन सुनकर उनकी सारी आशङ्का दूर हो गई। चिन्ता ने सोचा कि मेरी सन्तान पर विपद पड़ी है, मुझे जाना ही चाहिए। धन्य स्त्री का हृदय! प्रेम, आदर और ममता का—स्त्री के हृदय में—त्रिवेणी-सङ्गम है। प्रीति ही स्त्री का प्राण है। स्त्री मातृत्व से ही सार्थक और धन्य है। इसी से आज उसे जंगल में चिन्ता स्वामी की आज्ञा की बाट न देखकर सन्तान की विपद दूर करने चलीं। विकट अभाग्य उनको जाते देख, पीछे से उनकी हँसी करने लगा। मातृत्व के गर्व में भूली हुई चिन्ता देवी, उस ताने-भरी, हँसी को नहीं सुन सकीं।

[१२]

चिन्ता ने नदी में उतरकर स्नान किया। फिर वे भगवान् सूर्य्यदेव को प्रणाम करके बोलीं—"हे अन्तर्यामी! मुझे ज्योतिषी-द्वारा सौदागर की विपद दूर करने की आज्ञा हुई है। हे लीला-मय! सब तुम्हारी ही लीला है।" भगवान् का मधुर नाम

लेते-लेते चिन्ता ने नाव को छू दिया ! नाव तुरन्त चल पड़ी। सौदागर का मन प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि ज्योतिषी की बात सच निकली। पल भर में उसके जी में कुबुद्धि समाई। उसने विचारा कि अगर फिर कहीं मेरी नाव अटक जायगी तो मुश्किल होगी। इसी ख़याल से उसने झट उस सती को हाथ पकड़कर नाव में खींच लिया।

शेरनी की तरह गरजकर रानी बोलीं—क्यों रे नरपिशाच ! तू ने मुझे क़ैद कर लिया ? तू मुझे माँ कहकर अपनी विपद दूर करने के लिए ले आया था न ? अरे अभागी नर-पशु ! तेरा यही धर्म-ज्ञान है ? भगवान् ने मुझसे तेरा इतना उपकार कराया और तू नरक का कुत्ता नेकी को नहीं मानता ? तू ऐसा व्यवहार करके अपनी कृतज्ञता दिखाता है ? भगवान् सूर्यदेव ! आप सब देख रहे हैं। इस पापी, धूर्तता की प्रत्यक्ष मूर्त्ति, सौदागर को भयङ्कर आग से भस्म कर दीजिए। पृथिवी में अन्याय का नाश हो और सत्य का प्रकाश फैले।

सौदागर का मन दया से किसी तरह नहीं पिघला। चिन्ता बहुत गिड़गिड़ाई, किन्तु पापी ने एक न सुनी। जब सती नदी में कूदकर डूब मरने को तैयार हुई तब सौदागर के हुक्म से रानी के हाथ-पैर बाँध दिये गये।

चिन्ता ने देखा कि अब छूटने का कोई उपाय नहीं है, तब उन्होंने, नदी-किनारे की, लकड़हारों की रोती हुई स्त्रियों से चिल्ला-कर कहा—"सखियो ! मेरे स्वामी से कह देना कि दुष्ट सौदागर मुझे क़ैद करके हाथ-पैर बाँधे लिये जाता है। वे जल्दी आकर मेरा उद्धार करें।" नाव तेज़ी से जाने लगी। अब किनारे खड़ी स्त्रियों को न देखकर वे नाव पर सिर पटकने लगीं।

प्रकृति के मामूली ढाढ़स से हृदय जब कुछ शान्त हुआ तब

चिन्ता ने सोचा कि रूप ही स्त्रियों के लिए काल है। इस रूप के मोह में अभागे पुरुष, दीपक पर मोहित होनेवाले पतङ्ग की तरह, जलकर प्राण दे देते हैं। यह अभागा बनिया भी उसी मोह में आत्महत्या करना चाहता है। संसार की व्यथा को हरनेवाले भगवान् सूर्यदेव! अगर मैं तन, मन से अपने पति-देवता के पवित्र चरणों का ध्यान करती होऊँ तो आप दया करके मुझे कुरूप कर दीजिए—मुझे कोढ़ी बना दीजिए। एक दिन रूप माँगा था, मनुष्यों में देवता-रूप अपने स्वामी का चित्त प्रसन्न करने के लिए; और आज रूप का विनाश चाहती हूँ, सतीत्व की लाज रखने के लिए। हे लज्जा की रक्षा करने वाले! नारी की मर्यादा रखिए—मुझे कोढ़ी बना दीजिए।

उसी दिन से चिन्ता का बदन फूट चला। उसकी देह गलने लगी। कोढ़िनी के शरीर की दुर्गन्ध से नाव के सब आदमी घबरा उठे, लेकिन स्वार्थी सौदागर ने किसी की बात पर कान नहीं दिया। सती की नेत्राग्नि उसकी छाती को जलाने लगी।

[१३]

इधर श्रीवत्स ने कुटी में आकर देखा कि चिन्ता नहीं है। वे चारों ओर चिन्ता को पुकारने लगे। उनके मुँह से चिन्ता के सिवा और कोई शब्द ही नहीं निकलता। उन्होंने एक बार सोचा कि चिन्ता कहीं पड़ोसिनों के यहाँ गई होगी, अभी आ जायगी। वे हृदय को समझाने की बड़ी कोशिश करते हैं पर हृदय किसी तरह नहीं समझता। आँखों से आँसू निकल कर उनको कुछ देखने नहीं देते। चिन्ता के विरह में व्याकुल होकर राजा विलाप कर रहे हैं। इतने में लकड़हारों की कई स्त्रियों ने वहाँ आकर चिन्ता के सौदागर द्वारा हरे जाने का समाचार सुनाया। चिन्ता के हरे जाने की बात सुनकर श्रीवत्स अधीर हो उठे। लकड़हारे और उनकी स्त्रियाँ

उन्हें समझाने लगीं, किन्तु किसी तरह उनको ढाढ़स नहीं हुआ। उन्होंने स्त्रियों से पूछा—"दुष्ट सौदागर चिन्ता को हरकर किधर ले गया ?" स्त्रियों ने कहा कि सौदागर धारा के रुख़ पर गया है। नदी-तीर के रास्ते पर राजा तेज़ी से जाने लगे। वे आगे-पीछे कुछ नहीं देखते। केवल ज़ोर-ज़ोर से 'चिन्ता-चिन्ता' पुकारते थे। उस निर्जन देश में मनुष्य का कहीं पता नहीं। राजा पुकारते हैं, चिन्ता—चिन्ता। झाड़ें बोलती है, चिन्ता—चिन्ता। राजा पागल की तरह नदी के किनारे-किनारे दूर तक दौड़े चले गये किन्तु कहीं सौदागर की नाव का पता नहीं लगा।

इस प्रकार श्रीवत्स कई दिन और कई रात चले। सौदागर की नावका कुछ पता न पाकर वे एक दिन एक पेड़ के नीचे बैठकर सोच रहे थे कि प्यारी के लिए इतना जी-तोड़ परिश्रम किया पर कुछ भी पता नहीं लग सका। प्यारी बिना यह पापी प्राण किस काम का ? यह सोचते सोचते वे सुन्न हो गये। अचानक उन्हें लक्ष्मी की बात की याद आ गई। उन्होंने सोचा, लक्ष्मी देवी बता चुकी हैं कि बारह वर्ष तक मुझे शनि की दृष्टि से तरह-तरह के कष्ट भोगने पड़ेंगे। तो क्या सौदागर द्वारा मेरी चिन्ता का हरा जाना शनि की कुदृष्टि का ही फल है ? यही बात है। तब जीवन से ऊबकर आत्म-हत्या नहीं करूँगा। वह एक मनोहर आश्रम दिखाई देता है, वहीं चलना चाहिए।

आश्रम में जाकर राजा श्रीवत्स उसके मनोहर दृश्य से प्रसन्न हुए। उन्होंने देखा कि आश्रम के चारों ओर तरह-तरह के जंगली वृक्ष लगे हैं। बीच-बीच में, भौंरों के गूँजने से शोभायमान पुष्प-लताओं से लिपटे हुए देवदार के वृक्ष जंगल की शोभा बढ़ाकर सिर उठाये खड़े हैं। उस आश्रम में कमल, कुमुद आदि पानी में उपजनेवाले फूलों से तालाब शोभा पा रहा है। प्रकृति के इस मनोहर

दृश्य को देखकर राजा श्रीवत्स सुध-बुध भूल गये। ऐसा जान पड़ता था, मानो छहों ऋतुएँ वहाँ एक साथ विराज रही हैं; अथवा विधाता ने अपनी सुन्दर कूँची से एक मनोहर चित्र खींचकर प्रकृति की गोद में रख दिया है। उस आश्रम में न रोग है, न शोक है, न ज्वाला है, न यंत्रणा है, न पाप है, न ताप है—है केवल शान्ति। ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है। हिंसा नहीं है, द्वेष नहीं है—सब जगह खूब गहरी शान्ति विराजती है। शेर और हिरन, बाघ और बकरी, साँप और नेवला तथा दूसरे भक्ष्य-भक्षक भाववाले जानवर आपस में मिलकर खेल रहे हैं। महाराजा श्रीवत्स ने, इस पवित्र आश्रम में पहुँचकर क्लेश के हाथ से बहुत कुछ छुटकारा पाया। उनका तपा हुआ प्राण शीतल हुआ। खेद के कारण उदास मुख पर प्रसन्नता की झलक दीख पड़ी।

श्रीवत्स ने जाना कि यह सुरभि का आश्रम है। यहाँ देवताओं की देवियाँ घूमती-फिरती हैं और सफ़ेद कामधेनु विचरती है। प्रसन्न होकर राजा कामधेनु का दर्शन करने चले। सामने कामधेनु को देखकर राजा ने प्रणाम कर कहा—माँ, देवताओं की जननी! सन्तान का कष्ट दूर करो। तुम्हारा दूध पीकर देवता लोग धन्य हुए हैं। माँ! मैं एक मतिहीन अभागा हूँ—अशान्ति की ज्वाला से जल रहा हूँ।

राजा की कातरता देख सुरभि ने प्रसन्न होकर कहा—श्रीवत्स! चिन्ता छोड़ो। तुम अपनी प्राणप्यारी चिन्ता को जल्दी ही फिर पाओगे। बेटा, विलाप मत करो। तुम्हारा सुखरूपी सूर्य्य जल्दी उगेगा। इस आश्रम पर शनि का कुछ अधिकार नहीं है। तुम यहाँ बेफ़िक्र होकर रहो। ग्रह-दशा के वर्ष बीत जाने पर, तुम इस आश्रम से निकलकर, चिन्ता को ढूँढ़ने जाना। वह पतिव्रता कुलवधू

अद्भुत उपाय से अपना बचाव किये हुए है। भगवान् सूर्य्यदेव की कृपा से सती का सती-धर्म और भी चमक उठा है। वत्स! सोच को छोड़ो। मैं तुम्हारी बुरी हालत को देख बहुत दुःखी हूँ। भूख या प्यास लगने पर मेरा दूध पी लेना।

राजा श्रीवत्स सुरभि के आश्रम में बेखटके दिन बिताने लगे। उन्होंने देखा कि कामधेनु के थन से निकली दूध की धार से आश्रम का एक अंश भीगकर अपूर्व सुन्दर हो गया है। राजा ने उस सोने के कणों से मिली और कामधेनु के दूध से भीगी मिट्टी को लेकर सोने की बहुतसी ईंटें बनाईं। फिर अपनी कारीगरी से उन ईंटों को एक अजीब ढँग से जोड़कर रख छोड़ा।

[१४]

एक दिन राजा, आश्रम के पास, नदी किनारे बैठे हैं। इतने में देखा कि एक सौदागर की नाव किनारे आ लगी। राजा ने सौदागर के पास जाकर कहा—"देखो सौदागर! मैंने कुछ सोने की ईंटें तैयार की हैं। मैं चाहता हूँ कि उन्हें तुम्हारी नाव पर रखकर बेच आऊँ।" सौदागर राज़ी हो गया।

राजा ने सब ईंटें सौदागर की नाव पर लाद दीं। फिर वे कामधेनु की आज्ञा लेकर, सौदागर की नाव पर चढ़कर, व्यापार करने निकले। रात होने पर लोभी सौदागर ने श्रीवत्स को हाथ-पैर बाँधकर नदी में गिरा दिया। राजा श्रीवत्स नदी में बहने और रोते-रोते कहने लगे—"चिन्ता! चिन्ता! मेरे जीवन-आकाश की पूर्णचन्द्र-सी चिन्ता कहाँ हो? मेरी इस अन्तिम दशा को तुमने नहीं देखा, इस विलाप-वाणी को सुनकर चिन्ता ने पहचाना कि यह तो मेरे प्राणनाथ की बोली है। अचानक यह स्वर कहाँ से आया? उन्होंने देखा कि हाथ-पैर बँधा हुआ

एक आदमी पानी में डूब रहा है। तब रानी ने दुःखित होकर एक तकिया जल में फेंक दिया। उस तकिये के सहारे श्रीवत्स तैरने लगे। सौदागर की नाव हवा का रुख़ पाकर धारा में, तीर की तरह, चली गई। सती के आँसुओं की धारा उस नाव का बोझ बढ़ाने लगी।

तकिये के सहारे तैरते-तैरते श्रीवत्स एक उजाड़ बाग़ के पास आ लगे। उनके हाथ-पैर बँधे हुए थे, इससे वे उठ-बैठ नहीं सके। उसी दशा में, फुलवाड़ी के पास पड़े-पड़े, वे मृत्यु की राह देखने लगे। राजा ने देखा कि सूखा हुआ बाग़ एकाएक हरा-भरा हो गया; तरह-तरह के फूल खिल उठे, भौंरे गूँजने लगे और कोयल कुहकने लगी।

सबेरे मालिन जब अपनी फुलवाड़ी में आई तब सूखी-साखी बग़ीचो को फल-फूलों से हरी-भरी देखकर बहुत ख़ुश हुई। वह सोचने लगी कि मैं हज़ार उपाय करके भी इसको सँभाल नहीं सकी थी, आज किस देवता की कृपा से इसकी यह शोभा हो गई। इसी ख़ुशी में वह इधर-उधर घूम रही थी कि उसने फुलवाड़ी के नज़दीक एक बहुत ही सुकुमार जवान को पड़ा देखा। उसके हाथ-पैर बँधे थे। मालिन सोचने लगी—यह कौन भाग्यवान् है। यह साक्षात् वसन्त है या कामदेव! इन्हीं महापुरुष के आने से मेरी सूखी फुलवाड़ी हरी-भरी हो गई है।

सोचते-सोचते मालिन ने उस अपरिचित पुरुष के पास जाकर विनती से पूछा—"तुम कौन हो? यहाँ, इस तरह क्यों पड़े हो?" राजा ने कहा—मैं एक अभागी बनिया हूँ। डाकुओं ने मेरा सब धन लूटकर, हाथ-पाँव बाँधकर मुझे नदी में ढकेल दिया था। बहते-बहते मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ। बन्धन के कष्ट से प्राण निकलना चाहता है। दया करके मेरा बन्धन खोल दो।

मालिन तुरन्त बन्धन खोलकर राजा को अपने घर ले गई। राजा मालिन के घर रहने लगे।

मालिन की फुलवाड़ी में वसन्त की हवा लगी। इससे वाटिका की शोभा अपार हो गई है। मालिन तरह-तरह के फूल चुनकर राजकुमारी के यहाँ पहुँचाती है।

एक दिन श्रीवत्स ने मालिन से पूछा—इस राज्य का और यहाँ के राजा का नाम क्या है?

मालिन ने कहा—इस राज्य का नाम सौतिपुर है। बाहुदेव यहाँ के राजा हैं जो साक्षात् इन्द्र के समान हैं।

राजा ने पूछा—तुम प्रतिदिन इतने फूल लेकर क्या करती हो?

मालिन ने कहा—राजकुमारी भद्रा को शिवजी की पूजा करने के लिए मैं राजमहल में फूल और माला दे आती हूँ।

श्रीवत्स ने कहा—"आज मैं तुमको एक माला गूँथकर देता हूँ।" मालिन ने ख़ुशी से उनके सामने फूलों की टोकरी और सुई-धागा आदि रख दिया। राजा ने नये ढँग की एक माला गूँथकर फूलों की डलिया में फूलों से ही एक पद्य लिख दिया—

"सरवर बसे सरोजिनी सूरज बसे अकास।
होत परस्पर मिलन सुख अद्भुत प्रेम-विकास॥"

राजकुमारी भद्रा ने आज माला की अनोखी सजावट देखकर अचरज से पूछा—"क्यों री मालिन! आज यह माला किसने गूँथी है, और किसने इस तरह फूलों को सजाया है? इसमें तो बड़ी कारीगरी की गई है।" मालिन ने मुसकुराकर कहा—क्यों राज-कुमारी! क्या हुआ? मैं क्या ऐसी माला नहीं बना सकती? आज सबेरे चित्त ज़रा ठिकाने था, इससे बैठे-बैठे मन लगाकर यह माला गूँथ लाई हूँ। क्यों, क्या अच्छी नहीं बनी?

राजकुमारी ने कहा—नहीं मालिन, यह माला तुम्हारी गूँथी नहीं है। यह तो किसी अच्छे कारीगर के हाथ की कारीगरी है।

मालिन उस दिन राजकुमारी को बातों में बहलाकर वहाँ से चली आई। घर आकर उसने श्रीवत्स से राजकुमारी की बात कही।

[१५]

सोतिपुर की राजकुमारी का स्वयंवर है। देश-देश से राजकुमार आये हैं। एक ओर स्वयंवर की तैयारी ने, और दूसरी ओर भद्रा को ब्याहने की इच्छा रखनेवाले राजकुमारों के ठाट-बाट ने, राजा बाहुदेव की राजधानी की शोभा अपार कर दी। चारों ओर आनन्द की लहरें उठने लगीं।

महाराज श्रीवत्स भी स्वयंवर-सभा का ठाट-बाट और भीड़ देखने के लिए चले, किन्तु अपने दीन वेष का ख़याल कर वे बहुत आगे नहीं बढ़ सके। स्वयंवर-सभा के बाहर एक कदम्ब के पेड़ के नीचे बैठ गये।

राजकुमारी भद्रा ने स्वयंवर-सभा में जाकर देखा कि राजकुमार लोग क़ीमती पोशाक पहने हुए बैठे हैं। राजकुमारी ने उन राजाओं को यथायोग्य प्रणाम करने के बाद, विनती कर कहा—"आप लोग आशीर्वाद दीजिए जिससे मैं अपने मनभावने देवता के गले में जय-माल डालूँ।" इतने में आकाशवाणी हुई—

"जाके हित तप कर दिये बारह वर्ष बिताय।
सो कदम्बतरु के तले बैठे हैं प्रिय आय॥"

यह आकाशवाणी राजकुमारी के सिवा और किसी को नहीं सुन पड़ी। आकाशवाणी सुनकर राजकुमारी बड़ी प्रसन्नता से, स्वयंवर-सभा के बाहर, कदम्ब के पेड़ की तरफ़ गई। राजकुमार उत्सुक होकर उधर देखने लगे। राजकुमारी ने पेड़ के नीचे जाकर देखा,

बादलों से ढके हुए चन्द्रमा की तरह, एक नौजवान दीन वेष में बैठा है। राजकुमारी ने हाथ जोड़े और उसी के गले में जयमाल डाल दी।

स्वयंवर-सभा में आये हुए राजकुमार लोग, राजकुमारी के इस काम की निन्दा करते-करते अपने-अपने घर गये। लड़की को ऐसा पति चुनते देखकर राजा बाहुदेव बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने वर और कन्या को राजधानी से निकाल दिया। बाहुदेव की रानी की दया से वे दोनों राजधानी के बाहर एक झोंपड़ी में रहने लगे।

[१६]

एक दिन श्रीवत्स ने हिसाब लगाकर देखा कि शनि की दृष्टि के बारह वर्ष बीत गये। तब उन्होंने शनि को प्रणाम करके कहा—भगवान् शनैश्चर! कृपा कीजिए। कष्ट तो बेहद भोगा। अब मेरी चिन्ता को लौटा दीजिए।

राजा की इस प्रार्थना पर शनि को दया आई।

राजकुमारी भद्रा की सेवा से भी श्रीवत्स के चित्त को सुख नहीं मिलता। भद्रा की वह बढ़िया सुघराई, बसन्ती बेल का वह मनोहर दिखावा—उस नवयौवना के अङ्गों की वह शोभा राजा को तृप्त नहीं कर पाती थी। राजकुमारी भद्रा ने एक दिन राजा श्रीवत्स से कहा—नाथ! आप इतने उदास क्यों रहते हैं? क्या मैं आपकी प्रेम-पूजा के योग्य नहीं? आप सदा चिन्ता में रहकर इस अधीन बालिका का जी क्यों दुखाते हैं?

भद्रा के इन वचनों से सन्तुष्ट होकर राजा ने कहा—देखो भद्रा, दरिद्रता के दोष से सब गुण फीके पड़ जाते हैं। मेरा भी यही हाल है। अब तुम एक काम करो। देखती तो हो कि धन बिना मैं कितना

कष्ट पा रहा हूँ। सो तुम एक बार राजधानी में जाओ, और अपने पिता से कहकर मेरी जीविका का कोई इन्तज़ाम कराओ।

भद्रा राजधानी में गई। उसने अपनी माता से सब हाल कहा। रानी के कहने से राजा ने श्रीवत्स को चुङ्गी वसूल करने के काम पर मुक़र्रर कर दिया।

राजा श्रीवत्स नदी-किनारे बैठे रहते हैं। जितनी नावें वहाँ से निकलती हैं, उनको कर वसूल करके जाने देते हैं।

एक दिन उसी सौदागर की नाव वहाँ आई, जिसने श्रीवत्स को नदी में पटक दिया था। राजा श्रीवत्स ने, अपनी सोने की ईंटों को नाव में उसी तरह रक्खी देखकर, अपने मातहतों को हुक्म दिया— ये सोने की ईंटें नाव से उतार लो।

अफ़सर का हुक्म पाकर नौकरों ने सोने की ईंटें झटपट उतार लीं। सौदागर ने राज-दरबार में नालिश की।

तब राजा श्रीवत्स बाहुदेव के दरबार में गये। उन्होंने यथायोग्य प्रणाम कर कहा—महाराज! ये सब ईंटें मेरी हैं। मैं इस सौदागर की नाव पर, इनको लादकर वाणिज्य करने निकला था। पर इस दुष्ट ने, क़ीमती ईंटों के लोभ से, हाथ-पैर बाँधकर मुझे नदी में डाल दिया। किसी तरह बचकर मैं आपकी राजधानी तक पहुँच सका। महाराज, ईंटों के बनाने में अजीब कारीगरी है और किसी भी सबूत की ज़रूरत नहीं। अगर ईंटें सौदागर की हैं तो वह इनको खोलकर अलग-अलग कर दे।

सौदागर खोल नहीं सका। राजा श्रीवत्स ने राज-सभा में सबके सामने उन ईंटों को अलग-अलग कर दिया। तब राजा ने अचरज के साथ सौदागर को डाँटकर खदेड़ दिया।

राजा के अचम्भे को देख श्रीवत्स ने विनती कर कहा—

महाराज ! 'अयोग्य कभी योग्य से नहीं मिल सकता', यही विधाता की आज्ञा है। मैं प्राग्देश का राजा श्रीवत्स हूँ, ग्रह-दशा के फेर में पड़कर यह दुर्गति भोग रहा हूँ।

अब राजा के अचरज की सीमा नहीं रही। वे गिड़गिड़ाकर अपने बुरे व्यवहार के लिए उनसे क्षमा माँगने लगे। फिर बोले—"महाराज ! मैं आपका सब हाल सुन चुका हूँ। दूत की ज़बानी मैंने सुना था कि आप ग्रह के फेर में पड़ने से राज्य छोड़कर चले गये। मेरा बड़ा भाग्य है कि मेरी सौभाग्यवती बेटी ने आपको जयमाल पहनाई।" श्रीवत्स ने कहा—राजन् ! दया करके अब एक काम और कीजिए। मेरी रानी चिन्ता इस दुष्ट सौदागर की नाव पर क़ैद है। कृपा करके उसका उद्धार कर उसे राजमहल में लाने का जल्दी उपाय कीजिए।

सैकड़ों नौकर-चाकरों के साथ राजा तुरन्त नदी-किनारे पहुँचे और बँधी हुई नाव के ऊपर चढ़ गये। उन्होंने देखा कि एक कोढ़ की रोगिनी उस नाव के एक कोने में बैठी है। उसकी आँखों से आँसू जारी हैं। उसका शरीर रह-रहकर काँप उठता है।

राजा ने कहा—बेटी ! उठो। तुम्हारी दुःख की रात बीत गई। महाराज श्रीवत्स से तुम बहुत जल्द मिलोगी।

रानी चिन्ता ने श्रीवत्स का नाम सुन, मारे ख़ुशी के पुलकित होकर पूछा—महाराज कहाँ हैं ? अगर इतने दुःख भोगकर भी महाराज के चरणों का दर्शन पाऊँ तो अपने को धन्य मानूँगी।

राजा बाहुदेव ने पहले ही से पालकी का प्रबन्ध कर रक्खा था, किन्तु रानी चिन्ता ने कहा—नहीं पिताजी ! मैं पालकी पर नहीं चढ़ूँगी। स्वामी परम गुरु हैं, उनके पास पैदल ही जाना ठीक है।

उस स्त्री के पतिव्रत-धर्म की यह बात सुनकर राजा बाहुदेव को

अचरज हुआ। वे सोचने लगे—इस पवित्र देव-तरु के पुष्प में यह रोग क्यों ?

चिन्ता देवी ने राजा श्रीवत्स के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया। श्रीवत्स ने उनको पहचाना नहीं। वे सोचते थे कि मेरी चिन्ता का वह मनोहर रूप कहाँ गया। बहुत देर तक सोचने-विचारने के बाद उन्होंने पूछा—चिन्ता, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई ?

चिन्ता—महाराज ! रूप ही स्त्रियों का सत्यानाश करता है। इसी से, मैंने इस दुष्ट की पाप-दृष्टि से बचने के लिए सूर्यदेव से गलित कुष्ठ रोग माँग लिया। महाराज ! मेरी साधना पूरी हो गई। मैं अभागिनी आपके पवित्र चरणों को छूकर धन्य हुई।

तब चिन्ता ने स्वामी के चरणों की रज को अपने शरीर भर में लपेटकर हाथ जोड़कर सूर्यदेव से कहा—"हे भगवन् ! इस डरी हुई के डर का दिन बीत गया। अब मेरा पहला रूप लौटा दीजिए।" देखते ही देखते चिन्ता का रूप पहले ही का ऐसा सुन्दर हो गया। सब लोगों को बड़ा अचरज हुआ।

इतने में शनि देवता हँसते हँसते वहाँ आ पहुँचे। आज उनकी वह भयंकर मूर्त्ति नहीं है। उन्होंने वर देनेवाली शुभमूर्त्ति के रूप में वहाँ आकर कहा—"महाराज श्रीवत्स और रानी चिन्ता देवी ! तुम लोग धन्य हो। इतने दुःख और आफ़तों को सहकर भी तुम कर्त्तव्य को नहीं भूले। तुम लोगों की यह पवित्र कीर्त्ति अभी होने-वाले लोगों को आदर्श स्वरूप होगी। महाराज ! आशीर्वाद देता हूँ कि लक्ष्मी तुम्हारे घर में सदा वास करे। धर्म में तुम्हारी अचल श्रद्धा हो। महाराज ! और एक बात है। कर्मों के फल से ही भाग्य बनता है। तुम लोगों ने बारह वर्ष तक जो दुःख भोगा है उस दुःख का देनेवाला देवता मैं हूँ। कर्म-फल से मैं भी निन्दित काम करने

पर नियत हुआ हूँ। आशा करता हूँ कि तुम लोग मुझ पर नाराज़ न होगे। बेटी चिन्ता देवी! तुमने ग्रह के फेर में पड़कर बहुत कष्ट पाया है, इसका कुछ ख़याल मत करना।" चिन्ता देवी ने नम्रता से कहा—देव! आग में तपाकर ही सोना परखा जाता है। तो क्या इसे सोने के ऊपर अन्याय कह सकते हैं?

यह अनहोनी अपूर्व घटना देखकर सब लोग चित्र की तरह अचल होकर सोच रहे हैं। इतने में राजा और रानी ने एक-स्वर से नीचे लिखा श्लोक पढ़कर शनि देवता को प्रणाम किया—

नीलाञ्जनचयप्रख्यं सूर्यपुत्रं महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं त्वां नमामि शनैश्चरम्॥

राजा-रानी को आशीर्वाद देकर शनैश्चर चले गये।

राजा बाहुदेव ने अनजाने में अनुचित व्यवहार हो जाने के लिए श्रीवत्स से बारम्बार क्षमा माँगी। श्रीवत्स ने कहा—राजन्! इसमें आपका कुछ अपराध नहीं। वह व्यवहार भी मेरे ग्रह के फेर के कारण ही हुआ। उसके लिए मैंने मन में कुछ बुरा नहीं माना है।

राजा ने प्रेम से चिन्ता का शृङ्गार कराया, फिर भद्रा को बुला लाने के लिए दासी भेजी।

भद्रा वहाँ आकर सब समाचार सुनते ही हक्का-बक्का हो गई। फिर चिन्ता के पास जाकर उसने हाथ जोड़कर कहा—"बहन! दासी का प्रणाम लीजिए।" चिन्ता ने बड़े आदर से भद्रा को छाती से लगाया। राजा श्रीवत्स के सौभाग्यरूपी आकाश में दो चन्द्रमा उग आये।

इतने में लक्ष्मी ने वहाँ प्रकट होकर कहा—श्रीवत्स! तुम जल्द अपने राज्य को जाओ। तुम्हारा राज्य फिर जैसे का तैसा हो गया है। प्रजा तुम्हारे विरह से व्याकुल है, देर मत करो।

बाहुदेव से विदा होकर, चिन्ता और भद्रा को साथ ले, श्रीवत्स अपने राज्य में लौट आये। प्रजा के उदास चेहरे पर हर्ष छा गया। एक दिन प्रजा ने आँसू ढालकर राजा को विदा किया था, और आज फिर प्रेम के आँसू बहाकर उसने राजा-रानी का स्वागत किया। राजधानी में जहाँ-तहाँ आनन्द-मङ्गल होने लगा।

॥ इति ॥